ज्ञापन

- प्रेरक

  मुनिराज श्री जयानन्दमुनि जी महाराज

- चरित्र लेखिका व शब्दार्थ कारिका

  साध्वजी हेमप्रभाश्री जी महाराज एम. ए.

- सग्राहक

  पुरातत्वविद् श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर

- भूमिका लेखक

  ईश्वरलाल चुन्नीलाल लूणिया

- सपादक

  सोहनराज भंसाली, जोधपुर.

- प्रकाशक

  श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान भण्डार बम्बई

- द्रव्य सहायक

  खरतर गच्छ जैन संघ, जोधपुर
  खरतर गच्छ जैन सघ बम्बई

- आवरण पृष्ठ

  ऋषभ आर्टस्, जोधपुर।

- मुद्रक

  इण्डिया प्रिण्टर्स, जोधपुर

- मूल्य

  २ रु. ५० पैसे

प्रतियाँ १०००



गणि बुद्धिमुनिजी महाराज

समर्पण

जिन्हें श्रीमद् के प्रति अगाध श्रद्धा थी, जिन्हें श्रीमद् के सैकड़ों
पद, स्तवन, सज्झाएँ कंठस्थ थीं, जिनकी प्रेरणा से श्रीमद् की
कई रचनाओं का गुजराती में प्रकाशन हुआ, ऐसे परम-
पूज्य संयमशील गुरुवर्य, स्वर्गीय गणि बुद्धि
मुनिजी महाराज साहब को परम
पुनीत आत्मा को यह पुस्तक
सादर समर्पित
है।

आपके बाल
जयानन्द

भूमिका

स्वानुभव जैन धर्म का गुण है। यह दर्शन संकल्प का है फिर भी उसमें भक्ति का स्थान है। जैन धर्म विश्व धर्म बनने का सर्व गुणों से विभूषित है। जगत् के समस्त जीवों में मानव प्रधान है। इसी कारण मानव देह की प्रतिष्ठा है। केवल आत्म तत्व पर निर्भर धर्म देह की महत्ता को स्वीकार करता है। फिर भी महापुरुषों ने आत्मा और देह की भिन्नता को अभेद माना है। स्व संवेदन द्वारा स्वयं की बाह्य प्रवृतियों से परे होकर महापुरुषों ने अन्तर आनन्द को ढूँढ कर, जानकर और संसार के कल्याण के लिए शुद्ध स्वरूप से विश्व में प्रचारित किया था।

आत्मा की पुष्टि के लिए परम पुरुषो ने अभिव्यक्त की वाणी अनन्त धर्मों ने स्याद्वाद द्वारा समझाई है। अनन्त धर्म से व्याप्त भावो से भरी हुई व्यक्ति के जीवन में वात्सल्य, करूणा आदि सहज भाव से प्रकट होती है। अन्य जीवों को स्व-स्वरूप समझ सकते है, इसलिए इसके आचरण में अहिंसा का दर्शन सरलता से देखने को मिलता है। इस कारण से उच्च पुरुषो के सानिध्य मे स्व-ज्योति को प्रकट कर आत्मिक उत्थान मे गति करते हैं और अन्त में मोक्ष गामी बनते है।

आत्म तत्व परमार्थिक दृष्टि से समान है। कर्म-जन्य न्यूनाधिक दृष्टि गोचर होती है। ज्ञान आदि रत्नत्रय की रमणता का मुख्य लक्ष्य वहाँ तक रहता है जहाँ तक आत्म निष्पत्ति की प्राप्ति न हो। इन्द्रिय भोगो का रोध प्रभु की मूर्ति से होता है इसलिए जिनेश्वर भगवान् की पूजा स्व की पूजा है। इसी कारण आगम और मूर्त्ति को परम आलबन माना है। अविद्या को दूर करने का यह एक अमोघ उपाय है।

इसीलिए दर्शन कारों ने भगवान् को स्वामी माना है। स्वामी और सेवक के भाव को स्थान दिया है। आत्म तत्त्व समान होने के कारण सुन्दर और श्रेष्ठ होने से आत्मा मे उन्ही गुणो का प्रकटिकरण होना है।

विश्व के प्रत्येक धर्म मे प्रभु और गुरु उच्च स्थान मे है। जहाँ तक सत्य की प्राप्ति न हो वहाँ तक उनको छोड़ना नही चाहिए। परम वात्सल्य प्रभु की धर्म सरिता निर्मल होती है। सर्व की निर्मलता मान ही उसका हेतु है। भौतिकता के उच्च शिखर पर चाहे विश्व आज आनन्द मानता हो परन्तु अन्तर का जो आनन्द है वह बाह्य खोज करने से नही मिलता। सम्पन्न पुरुष भी विश्व में शान्ति के लिए भटकता है। इसमें ज्ञान होता है कि भौतिक पदार्थों में सच्ची शान्ति उपलब्ध नही होती। कारण शान्ति देना उनके स्वभाव मे ही नही है। अत. सच्ची आत्मिक शान्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। कर्म प्रवेश द्वारा समान इन्द्रियों को बाह्य योग से निकाल कर अन्तर मे स्थिर करनी चाहिए। राग, द्वेष, मोह एवं विषय कषाय से दूर होकर मन को जीतकर केवल द्रष्टा भाव मे कर्मो के फल का आस्वादन लेना चाहिए। जिससे उदासीन वृत्ति के कारण आत्मा पर कर्म के वर्गणा नही लगती। संवर और निर्जरा निरन्तर चालू रहती है, परिणाम स्वरूप पुराने कर्म उदय को प्राप्त होते ही बिखर जाते हैं। इसी प्रक्रिया से आत्मा को आनन्द का अनुभव होता है। निरन्तर इस प्रक्रिया मे आत्मा का निस्तार सहज भाव से स्वयं होता है।

सर्वज्ञ कथित वाणी यद्यपि ज्ञान भण्डारो मे पुस्तक रूप मे दिखाई देती है और इन पवित्र ग्रन्थो का रक्षण करने वाले सब यश के भागी हैं। स्व ज्ञान का उपयोग सुन्दर ग्रंथो की रचना द्वारा अपनी विशाल शक्ति का परिचय अल्प आत्माओ को ज्ञानी जन दे गये हैं। इस अमूल्य लाभ को प्राप्त करने वाले हम उन ज्ञानी पुरुषों के

प्रति नत मस्तक होते है। आगमों के रहस्यों को सर्व साधारण जन लाभ उठा सके व उन्हें समझ सके इस हेतु ज्ञानी पुरुष उसे सरल साहित्य में रचना कर गए हैं।

आगमिक साहित्य में धर्म भिन्न–भिन्न स्वरूप में वर्णन किया गया है जो चार विभागों मे विभाजित है। ये अनुयोग के नाम से सर्व विदित है। चार प्रकार के अनुयोग में तत्व की पहिचान द्रव्यानुयोग में सविशेष और विस्तार से है। ये तत्वो का विशाल भण्डार है। तत्वालम्बन से आत्मा शुद्ध मार्ग का धारक बनता है। भक्ति व कृति अन्य जीवों का एवं स्वात्मा का कल्याण करती है। निर्मल बुद्धि से और उद्दात भावना से लिखी गई रचनाएँ आनन्द सागर के हिलौरे मारती है। स्वानन्द की मस्ती से वातावरण परम शुद्ध बनता है। उन महापुरुषों के उपकार को याद करते हुए अपना मस्तक सहज भाव से उनके समक्ष झुक जाता है।

गुजराती साहित्य में अनेक आध्यात्मिक पुरुष हुए जिन्होने स्व के प्रकाश में पथिक को मोक्ष मार्ग बताया है। इस आनन्द को व्यक्त करते हुए उन्हे आनन्द की अनुभूति होती है। मन को तन्मय करने के लिए काव्य कृति सविशेष उपयोगी है। काव्य के रसास्वादन के साथ ज्ञान की गंगोतरी की तेजस्विता प्रत्यक्ष होती है। विद्वान और ज्ञानी के काव्य समाज की महान धरोहर होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ एक महान् योगी द्रव्यानुयोग के परम धारक कविवर्य, कर्म साहित्य के पण्डित श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज की परम काव्य सरिता का सागर है। इसमें कुछ पहले प्रकट हो चुके हैं और कुछ नए प्रकट हो रहे है। तत्कालीन महापुरुषो ने उनकी कृतियो की भूरि भूरि प्रशसा की है। आगमिक ज्ञान सागर के कुछ अश काव्य रूप मे गुन्थनकर के एक पुष्प हार भव्य जीवों को अर्पण किया है। उसकी सुवास निर्दोषता और तेजस्विता आत्मा का द्योतक है।

साहित्य वृत्ति मे विहरमान जिन स्तवन, वर्त्तमान जिन स्तवन, अतीत जिन-स्तवन, आध्यात्मिक गीता, आगमसार, ज्ञान मंजरी टीका, कर्म साहित्य आदि

श्रीमद् की कृतियाँ हैं। आगमसार लघु पुस्तक होते हुए भी विशाल है। इसमें अल्प में अधिक अर्थात् गागर मे सागर भर दिया गया है। जगत में गीता प्रसिद्ध है। उसमें भी अध्यात्म गीता श्रेष्ट है। आत्मा के निस्तार के लिए अध्यात्म गीता का स्वाध्याय परमावश्यक है। इस गीता मे प्रभावित होकर परम पूज्य उपाध्याय श्रीमद् लब्धिमुनिजी महाराज साहब ने जीवन के अन्तिम वर्षों मे इस गीता को कंठस्थ की थी और नित्य उसका स्वाध्याय करते थे। इस अनुपम कृति का स्वाद तो अध्यात्म प्रेमी, भक्त हृदय ही अनुभव कर सकता है।

श्रीमद् गच्छ के कदाग्रही नही थे। सत्य अन्वेषक सर्व को समान मानता है। इस महापुरुष ने न्याय विशारद श्रीमद् यशोविजयजी महाराज साहब की रचना ज्ञान सार के ऊपर ज्ञान मंजरी नामक टीका की रचना की। यह उनके उदार दृष्टिकोण का ही प्रतीक है। आचार्य बुद्धिसागर सूरिजी ने भी सत्य के साथी बनकर देवचन्द्रजी महाराज साहब का साहित्य प्रकाशित किया है। नाना भाँति के पुष्पो से बनी माला अलग-अलग सौरभ को सकलित करके श्रेष्ट सुगन्ध को प्रसारित करती है। प्रस्तुत पुस्तक में संकलित विविध प्रकार के पुष्पो की महक सर्वत्र व्याप्त होगी ऐसी आशा की जाती है। आध्यात्मिक साहित्य की कृति जब प्रकाशित होती है तब आत्मार्थी व्यक्तियो को आनन्द की अनुभूति होती है। इनके ज्ञान को समझने मे यदि अल्पज्ञ व्यक्ति प्रयत्न करे तो विद्वान जगत मे उपहास का कारण ही बनेगा। फिर भी भाव की वृद्धि में सर्व गौण बन जाता है।

प्रिय वाचक वृन्द—

यह पुस्तक जिनकी प्रेरणा और मार्ग-दर्शन मे प्रकाशित हो रही है वह परम पूज्य गुरु देव श्री जयानन्द मुनिजी महाराज साहब की गुरु कृपा से प्राप्त हुई ज्ञान की भेट है। इस उपहार से हम सब आनन्द के साथ ज्ञान प्राप्त करके मानव जीवन को सफल करे। अनन्त जन्म की अपेक्षा से मानव जीवन की कल्पना अंश मात्र ही है। सर्व कोई ज्ञान के सागर को प्राप्त करके भव सागर तैर कर निजानन्द के सागर को प्राप्त हो यही भव्य अभिलाषा है।

माडवी कच्छ दि० १-५-७७ (गुजरात) **ईश्वरलाल चुन्नीलाल लूणिया**

वक्तव्य

महान अध्यात्मयोगी द्रव्यानुयोग के महान ज्ञाता एव अपनी अनेक सुन्दर व विद्वता पूर्ण रचनाओं द्वारा स्व और पर का महान् उपकार करने वाले श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज रचित प्रकट–अप्रकट स्तवन, सज्झाय, पद आदि प्रकाशित करके अध्यात्म प्रेमी महानुभावो के कर कमलो मे रखते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

आज से पैंतीस वर्ष पूर्व परम पूज्य गुरुदेव श्री बुद्धिमुनिजी महाराज साहब की प्रेरणा से एक पुस्तिका गुजराती भाषा मे प्रकट की गई थी परन्तु हिन्दी भाषी क्षेत्रो के लोग जो गुजराती भाषा पढने मे असमर्थ है, वे इस पुस्तक से लाभ उठाने में सर्वथा वचित रहे। अत. मेरी दीर्घ काल से यह इच्छा थी कि हिन्दी भाषा मे श्रीमद् देवचन्द्रजी के प्रकट–अप्रकट स्तवन, सज्झाय पद आदि संग्रहकर एक बडी पुस्तक प्रकाशित की जाय।

वीर सवत् २५०० में जब मेरा चतुर्मास जयपुर में था, उस समय बीकानेर निवासी विद्वान व पुरातत्वविद सुश्रावक श्री अगरचंदजी नाहटा दर्शनार्थ वहाँ आए थे। उन्होने मुझे बताया कि श्रीमद् देवचन्द्रजो के अप्रकट स्तवन सज्झाय मुझे और भी मिली है, जो अभो तक मुद्रित नही हुई हैं। उसी समय मेरे मन मे विचार आया कि श्रीमद की इन अप्रकट रचनाओ के साथ साथ उनकी अन्य लोक प्रिय रचनाओ का संग्रहकर हिन्दी भाषा मे एक पुस्तक प्रकट करवानी चाहिए। मैंने नाहटा साहब से इन रचनाओ का संग्रहकर मेरे पास भेजने का प्रस्ताव किया।

वीर सवत् २५०१ मे जब मेरा चतुर्मास जोधपुर मे हुआ तब यहाँ के श्री संघ को प्रस्तुत पुस्तक को मुद्रित कराने के लिए कहा। तत्कालीन खरतरगच्छ जैन सघ के अध्यक्ष श्री जवरमलजी चोरड़िया, सचिव प्रकाशमलजी पारख तथा श्री गुमानमलजी पारख, श्री उगमराजजी भसाली एडवोकेट आदि सज्जनों ने इस पुस्तक के प्रकाशन मे पूरा सहयोग देने की स्वीकृति प्रदान की।

श्रीमान अगरचदजी नाहटा ने प्रस्तुत रचनाओ को सग्रह कर मेरे पास भेज दी।

विदुषी साध्वीजी श्री अनुभव श्री जी की विद्वान शिष्या साध्वीजी हेम प्रभा-श्री जी ने संग्रहीत रचनाओ मे प्रयुक्त कठिन शब्दो का सरल अर्थ कर तथा कुछ टिप्पणिया लिखकर पाठको को अर्थ समझने मे सरल कर दिया है।

प्रुफ संशोधन और संपादन का कार्य श्रीमान् सोहनराजजी भंसाली ने अत्यन्त रुचि एवं लगन पूर्वक किया है जो अत्यन्त सराहनीय है।

अन्त मे, मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि प्रस्तुत पुस्तक इतनी जल्दी प्रकाशित होने का मुख्य श्रेय साध्वीजी श्री हेम प्रभा श्री जी, श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा एवं श्रीमान् सोहनराजजी भंसाली को है। यदि इन महानुभावो का सहयोग न मिला होता तो यह पुस्तक अब तक प्रकाशित न हो पाती।

महान् उपकारी श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज कृत स्तवन, सज्झाय, पद आदि का अध्ययन चिन्तन मनन करके भव्य आत्मा कल्याण करे, यही मनोकामना करता हूँ मैं आशा करता हूँ कि इसी तरह श्रीमद् देवचन्द्र कृत ध्यान चतुष्पदी दीपिका भी शीघ्र प्रकाशित होकर भक्तजनो के हाथो मे पहुँचेगी।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में द्रव्य सहायता जोधपुर खरतर गच्छ जैन सघ ने दी है अत. इसके लिए जोधपुर सघ धन्यवाद का पात्र है।

जैन मन्दिर
गान्धी नगर,
जोधपुर

गणि श्री बुद्धिमुनिजी महाराज
साहब के शिष्य
जयानन्द मुनि



अठारहवीं शताब्दी के महान् संत, आदर्श विभूति, जैन-आगम साहित्य के प्रकांड पंडित तथा जैन–द्रव्यानुयोग के प्रखर अध्येता एवं व्याख्याता श्रीमद् देवचन्द्र जी की कुछ प्रकट–अप्रकट रचनाओ का संग्रह "श्रीमद् देवचन्द्र पद्यपीयूष" पुस्तक का सम्पादन श्रीमद् के चरणो मे श्रद्धांजलि अर्पण करने का मेरे लिए एक अपूर्व एवं सुन्दर अवसर है।

परम पूज्य गुरूदेव मुनिराज श्री जयानन्दमुनिजी महाराज साहब पाली चतुर्मास के बाद नागौर जाते हुए जब जोधपुर पधारे तब मैं कुशल भवन मे आप श्री के दर्शनार्थ गया। उस समय महाराज श्री ने प्रस्तुत पुस्तक की प्रेस कॉपी मुझे दी और बोले इसे देखिए, छपवाना है।

प्रेस कॉपी का अवलोकन कर मैंने कुछ सुझाव महाराज श्री के सम्मुख रखे। मेरे सुझावो को सुनकर महाराज श्री ने कहा "आप जैसा चाहें" उस तरह के सुधार करें, इसके संपादन की जिम्मेदारी आपको ही उठाना है।

मैं संकोच मे पड़ गया। मेरे पास न तो आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि है न ही जैन तत्व ज्ञान का गहरा अध्ययन है, और न प्राचीन भाषाओ का परिपक्व ज्ञान ही। ऐसी वस्तु-स्थिति मे किस आधार पर इस पुस्तक के सम्पादन की जिम्मेदारी स्वीकार करता। पर महाराज श्री की आज्ञा को अस्वीकार करना भी मेरे लिए संभव नहीं था। अतः गुरूदेव के आशीर्वाद व मार्ग दर्शन का सबल प्राप्त कर मैंने इस जिम्मेदारी को स्वीकार कर लिया।

प्रस्तुत पुस्तक "श्रीमद् देवचन्द्र पद्य-पीयूष" में सग्रहीत रचनाओ में कुछ एक को छोड कर सभी स्तवन, सज्झाएँ, पद आदि का संग्रह जैन समाज के जाने माने पुरातत्व विद्, प्राचीन जैन साहित्य के उद्धारक तथा जैन शास्त्र भडारो के अन्वेषक श्रीमान् अगरचदजी नाहटा वीकानेर ने किया है।

इन सग्रहीत रचनाओ मे कुछ एक तो ऐसी हैं जो नाहटा जी ने स्वयं शोधकर शास्त्र भडारों से बाहर निकाली है, जो अभी तक कही प्रकाशित नही हुई हैं। कुछ रचनाए ऐसी भी सकलित की गई है जो इस के पूर्व छप तो चुकी है परन्तु वे गुजराती मे छपी हैं। अतः हिन्दी भाषी लोगों के लिए तो प्रस्तुत पुस्तक मे प्रकट रचनाएँ अधिकतर नई और पहली बार ही छपी हैं।

पाठको की सुविधा के लिए प्रस्तुत पुस्तक की रचनाओ को पाच खण्डों मे विभाजित किया गया हैं, जो निम्न प्रकार है—

१. जिनेश्वर देवो की स्तवन–स्तुतियां

२. तीर्थ स्थल व विविध स्थानो के मन्दिरों से सबंधित स्तवन–स्तुतियां

३ तप, पर्व, महोत्सव संबधी रचनाएं

४ जिनराज आंगिक वर्णन

५ सज्झाय व गहूँली

श्रीमद् जैसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व आदर्श सत की रचनाओ का रसास्वादन करने के पूर्व ऐसे असाधारण संत कवि के जीवन के संबंध मे उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विषय मे भी जानकारी की जिज्ञासा एवं उत्सुकता रहना स्वाभाविक ही है। अतः श्रीमद् का जीवन चरित्र भी प्रस्तुत पुस्तक में विस्तार से दे दिया गया है।

वक्तव्य

महान अध्यात्मयोगी द्रव्यानुयोग के महान ज्ञाता एव अपनी अनेक सुन्दर व विद्वता पूर्ण रचनाओं द्वारा स्व और पर का महान् उपकार करने वाले श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज रचित प्रकट–अप्रकट स्तवन, सज्झाय, पद आदि प्रकाशित करके अध्यात्म प्रेमी महानुभावों के कर कमलो में रखते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

आज से पैंतीस वर्ष पूर्व परम पूज्य गुरुदेव श्री बुद्धिमुनिजी महाराज साहब की प्रेरणा से एक पुस्तिका गुजराती भाषा में प्रकट की गई थी परन्तु हिन्दी भाषी क्षेत्रो के लोग जो गुजराती भाषा पढने में असमर्थ है, वे इस पुस्तक मे लाभ उठाने में सर्वथा वचित रहे। अत मेरी दीर्घ काल से यह इच्छा थी कि हिन्दी भाषा मे श्रीमद् देवचन्द्रजी के प्रकट–अप्रकट स्तवन, सज्झाय पद आदि संग्रहकर एक बड़ी पुस्तक प्रकाशित की जाय।

वीर सवत् २५०० मे जब मेरा चतुर्मास जयपुर मे था, उस समय बीकानेर निवासी विद्वान व पुरातत्वविद सुश्रावक श्री अगरचदजी नाहटा दर्शनार्थ वहाँ आए थे। उन्होने मुझे बताया कि श्रीमद् देवचन्द्रजी के अप्रकट स्तवन सज्झाय मुझे और भी मिली है, जो अभी तक मुद्रित नही हुई हैं। उसी समय मेरे मन मे विचार आया कि श्रीमद् की इन अप्रकट रचनाओ के साथ साथ उनकी अन्य लोक प्रिय रचनाओं का संग्रहकर हिन्दी भाषा मे एक पुस्तक प्रकट करवानी चाहिए। मैंने नाहटा साहब से इन रचनाओ का संग्रहकर मेरे पास भेजने का प्रस्ताव किया।

वीर सवत् २५०१ मे जब मेरा चतुर्मास जोधपुर मे हुआ तब यहाँ के श्री संघ को प्रस्तुत पुस्तक को मुद्रित कराने के लिए कहा। तत्कालीन खरतरगच्छ जैन सघ के अध्यक्ष श्री जवरमलजी चोरड़िया, सचिव प्रकाशमलजी पारख तथा श्री गुमानमलजी पारख, श्री उगमराजजी भंसाली एडवोकेट आदि सज्जनों ने इस पुस्तक के प्रकाशन मे पूरा सहयोग देने की स्वीकृति प्रदान की।

श्रीमान अगरचदजी नाहटा ने प्रस्तुत रचनाओ को सग्रह कर मेरे पास भेज दी।

विदुषी साध्वीजी श्री अनुभव श्री जी की विद्वान शिष्या साध्वीजी हेम प्रभा-श्री जी ने संग्रहीत रचनाओ मे प्रयुक्त कठिन शब्दो का सरल अर्थ कर तथा कुछ टिप्पणियां लिखकर पाठको को अर्थ समझने में सरल कर दिया है।

प्रुफ संशोधन और सपादन का कार्य श्रीमान् सोहनराजजी भंसाली ने अत्यन्त रुचि एवं लगन पूर्वक किया है जो अत्यन्त सराहनीय है।

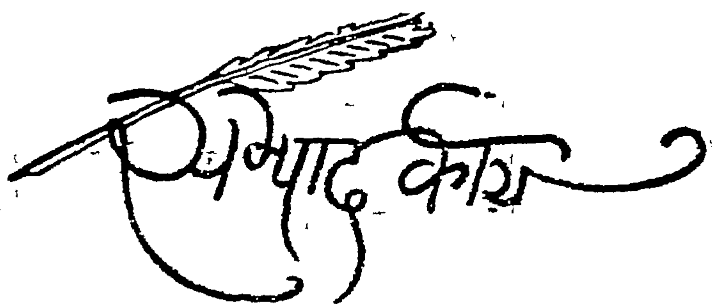
अन्त मे, मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि प्रस्तुत पुस्तक इतनी जल्दी प्रकाशित होने का मुख्य श्रेय साध्वीजी श्री हेम प्रभा श्री जी, श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा एवं श्रीमान् सोहनराजजी भंसाली को है। यदि इन महानुभावो का सहयोग न मिला होता तो यह पुस्तक अब तक प्रकाशित न हो पाती।

महान् उपकारी श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज कृत स्तवन, सज्झाय, पद आदि का अध्ययन चिन्तन मनन करके भव्य आत्मा कल्याण करे, यही मनोकामना करता हूँ मैं आशा करता हूँ कि इसी तरह श्रीमद् देवचन्द्र कृत ध्यान चतुष्पदी दीपिका भी शीघ्र प्रकाशित होकर भक्तजनो के हाथो मे पहुँचेगी।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन मे द्रव्य सहायता जोधपुर खरतर गच्छ जैन सघ ने दी है अत इसके लिए जोधपुर सघ धन्यवाद का पात्र है।

जैन मन्दिर
शास्त्री नगर,
जोधपुर

गणि श्री बुद्धिमुनिजी महाराज
साहब के शिष्य
जयानन्द मुनि



अठारहवी शताब्दी के महान् संत, आदर्श विभूति, जैन-आगम साहित्य के प्रकांड पडित तथा जैन–द्रव्यानुयोग के प्रखर अध्येता एव व्याख्याता श्रीमद् देवचन्द्र जी की कुछ प्रकट–अप्रकट रचनाओं का सग्रह "श्रीमद् देवचन्द्र पद्यपीयूष" पुस्तक का सम्पादन श्रीमद् के चरणो मे श्रद्धांजलि अर्पण करने का मेरे लिए एक अपूर्व एवं सुन्दर अवसर है।

परम पूज्य गुरूदेव मुनिराज श्री जयानन्दमुनिजी महाराज साहब पाली चतुर्मास के बाद नागौर जाते हुए जब जोधपुर पधारे तब मैं कुशल भवन मे आप श्री के दर्शनार्थ गया। उस समय महाराज श्री ने प्रस्तुत पुस्तक की प्रेस कॉपी मुझे दी और बोले इसे देखिए, छपवाना है।

प्रेस कॉपी का अवलोकन कर मैंने कुछ सुझाव महाराज श्री के सम्मुख रखे। मेरे सुझावो को सुनकर महाराज श्री ने कहा "आप जैसा चाहे" उस तरह के सुधार करे, इसके संपादन की जिम्मेदारी आपको ही उठाना है।

मैं संकोच मे पड गया। मेरे पास न तो आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि है न ही जैन तत्व ज्ञान का गहरा अध्ययन है, और न प्राचीन भाषाओ का परिपक्व ज्ञान ही। ऐसी वस्तु-स्थिति मे किस आधार पर इस पुस्तक के सम्पादन की जिम्मेदारी स्वीकार करता। पर महाराज श्री की आज्ञा को अस्वीकार करना भी मेरे लिए सभव नही था। अत: गुरूदेव के आशीर्वाद व मार्ग दर्शन का संबल प्राप्त कर मैंने इस जिम्मेदारी को स्वीकार कर लिया।

प्रस्तुत पुस्तक "श्रीमद् देवचन्द्र पद्य-पीयूप" मे संग्रहीत रचनाओ मे कुछ एक को छोड कर सभी स्तवन, सज्झाएँ, पद आदि का संग्रह जैन समाज के जाने माने पुरातत्व विद्, प्राचीन जैन साहित्य के उद्धारक तथा जैन शास्त्र भंडारो के अन्वेपक श्रीमान् अगरचदजी नाहटा बीकानेर ने किया है।

इन सग्रहीत रचनाओं मे कुछ एक तो ऐसी हैं जो नाहटा जी ने स्वय शोधकर शास्त्र भडारों से बाहर निकाली है, जो अभी तक कही प्रकाशित नहीं हुई है। कुछ रचनाएं ऐसी भी सकलित की गई है जो इस के पूर्व छप तो चुकी है परन्तु वे गुजराती में छपी है। अत. हिन्दी भाषी लोगों के लिए तो प्रस्तुत पुस्तक में प्रकट रचनाएँ अधिकतर नई और पहली बार ही छपी हैं।

पाठको की सुविधा के लिए प्रस्तुत पुस्तक की रचनाओ को पाच खण्डो मे विभाजित किया गया हैं, जो निम्न प्रकार है—

१. जिनेश्वर देवों की स्तवन–स्तुतियाँ

२. तीर्थ स्थल व विविध स्थानो के मन्दिरो से सबंधित स्तवन–स्तुतिया

३. तप, पर्व, महोत्सव सबंधी रचनाएं

४. जिनराज आगिक वर्णन

५. सज्झाय व गहूँली

श्रीमद् जैसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व आदर्श सत की रचनाओं का रसास्वादन करने के पूर्व ऐसे असाधारण संत कवि के जीवन के सबध मे उनके व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व के विपय मे भी जानकारी की जिज्ञासा एव उत्सुकता रहना स्वाभाविक ही है। अत. श्रीमद् का जीवन चरित्र भी प्रस्तुत पुस्तक में विस्तार से दे दिया गया है।

श्रीमद् की रचनाओं में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ व आवश्यक टिप्पणियां भी दे दी गई है। इससे पाठकों को अर्थागम व कवि के भावों को समझने में कुछ सरलता व सुविधा होगी, साथ ही अर्थ समझ कर पाठ करने से विशेष आनन्द की अनुभूति हागी ।

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज की प्रत्येक रचना आध्यात्मिक भावों से ओत-प्रोत है। प्रत्येक पद में आध्यात्मिकता स्पष्ट रुप से परिलक्षित होती है। दूसरी विशेषता जो भक्ति की अतिशयता है वह अध्यात्मिक्ता के साथ स्वर्ण मणिवत् संयोग है। यद्यपि वे स्वयं जैन दर्शन के कर्त्ता स्वतत्र पद का प्रतिपादन करते है कि आत्मा स्वयं, स्वयं के ही पुरुषार्थं द्वारा अनादिय रंक दशा से मुक्त वनेगी किन्तु निमित कारण का भी कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं। अतएव अतिशय भक्ति को व्यक्त करने वाले भावों को व्यक्त करते समय प्रभु वीतरागदेव जो कि उपादान शुद्धि के लिए निमित्त कारण है, उनमें हा कहीं कही कर्त्ता पद का आरोप कर देते हैं। प्रभु से अनुनय-विनय करते हैं। आत्म शुद्धि के लिए, आत्म मुक्ति के लिए बार-बार प्रार्थना करते हैं। अतिशय भक्ति के क्षणों में ऐसे उद्‌गार निकले हैं जैसे कि—

तार हो तार प्रभु मुझ सेवक भणी
जगत में एटलु सुजश लीजे
दास अव गुण भर्यो जागी पोतातणो
दया निधि दीन पर दया कीजे ॥

जैन दर्शन मे ऐसे ईश्वर को कोई स्थान नही है जो इस जगत का कर्त्ता, धर्ता या हर्ता हो। जैन मतानुसार ईश्वर का परवाना किसी एक व्यक्ति को प्राप्त नही है। संसार का कोई भी व्यक्ति स्वात्मा का विकास और उत्क्राति कर परमपद प्राप्त कर सकता है। नर से नारायण वन सकता है, ईश्वरत्व की प्राप्ति कर सकता है।

श्रीमद् ने अपनी कविताओं में भगवान् का गुण गान कर अपने गुणों को उभारा है, उनके दर्शन कर अपने स्वरूप का दर्शन करना चाहा है। भगवान् के जीवन की याद कर अपने जीवन का निर्माण करने का प्रयास किया है। उनके साधना मार्ग को स्मरण कर अपना साधना मार्ग प्रशस्त किया है। उनके त्याग और तप से प्रेरणा लेकर स्वयं को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया है। श्रीमद् ने अपनी रचनाओं में जैसा इस जैन सिद्धान्त का निर्वाह किया है, वैसा शायद कोई कवि नही कर सका।

श्रीमद् एक उच्च कोटि के कवि ही नही वे एक आदर्श संत भी थे उनकी प्रत्येक कविता मे संत वाणी उजागर होती है। उनके हर पद में जैन दर्शन प्रस्फुटित होता है। सचमुच उन्होने अपनी कविताओं मे जैन सिद्धान्त रूपी सागर को गागर में भर दिया है। श्रीमद् के स्तवन, स्तुतिया, पद, सज्झाएँ जब भक्त लोग मधुर लय में गाते हैं, तब श्रोता जन भी झूमने लग जाते हैं और उस समय सब के हृदय में एक अपूर्व आत्मानुभूति जागरित होती है। स्वर्गीय पं० चैनसुखदासजी ने ठीक ही कहा है—"संत जब कवि की भाषा मे बोलता है तब उसका माधुर्य इतना आकर्षक बन जाता है कि भक्ति साकार होकर हमारे सामने आ जाती है।"

जीवन चरित्र का आलेखन—

हमारे अनुरोध को स्वीकार कर श्रीमद् के जीवन चरित्र का आलेखन तथा शब्दार्थ का कार्य परम पूजनीय साध्वीजी श्री अनुभवश्रीजी की विदुषी शिष्या साध्वीजी श्री हेमप्रभाश्रीजी एम० ए० (दर्शन शास्त्र) ने किया है जिसके लिए मैं उनका हार्दिक आभार प्रकट करता हू। श्रीमद् के जीवन चरित्र में आवश्यक सशोधन या परिवर्द्धन आपकी स्वीकृति से किया गया है।

विदुषी साध्वीजी श्री मणिप्रभाश्रीजी एम० ए० ने समय समय पर बड़ी लगन एवं तत्परता से मार्ग दर्शन दिया है अत. उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

भूमिका—

श्रीमद् के परम भक्त एवं जैन विद्वान माडवी, कच्छ (गुजरात) निवासी श्री ईश्वरलाल चुन्नीलाल लूणिया ने प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका लिख भेजी है जिसके

रहा ज्ञानता। अगरनजोनततांदिरे।।१मे०।।महिरत्न खारी चाहीये। मेचूमहीमावसनेदा।।आ
नंदके वन्नपासमनोदच। अरडादमारीएद।।३मे०।।इतिश्रीपार्श्वनाथगीतं।।२३।।डाल।।
सीमंधरकरडेयामनपादेशु।।कंमनमान्योरेवीरर्जी।।त्रिसलानंदनदेव।।लवरसाहिबतं
कडंग।।कउफसारूसेव।।२उ०।।वज्रामम नारूजनादश।।वाधइधर्मसनेदा।।हीया
रूकपजयालदे।।सकुजिनपावेदहा।।१ तु०।।जोउफववनेदाजीया।।तोदोवइ
इमीरीति।।उरवअनंतापामीयश।। ।।जोकीजेउस्मरसुप्रीति।।२उ०।।
आठिनकुलगिरिवंदमा।।संवतपरनव वाणि।।दोवीसजिनदीनवा।।आतम
दिनमतिआणि।।४उ०।।जिनवर्दतेजीमुख ।करो।।चोवीसमाजिनराया।।लवउपमे
देवापडी।।आणंदमुनिगुणमाया।।५उ०।।इतिश्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरराणालंदनाली
मसूरणोति।।संवत१७७०वर्षेमितीजेष्ठवदि७दिनेपंपदेदवेणलिपिकृत।।श्राविको
उत्तमश्राविकआदकाबाईफमांलावत्तार्थ।। ।।श्री:।। ।।श्री:।। ।।श्री:।।

श्रीमद् देवचन्द्रजी के हस्ताक्षरों में आनन्द वर्द्धन कृत चौबीसी का अंतिम पत्र (सं० १७७०)

लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। भूमिका की भाषा गुजराती होने से उसका हिन्दी अनुवाद कर दिया गया है। अनुवाद करने मे कोई भूल रह गई हो तो लेखक महोदय क्षमा करें।

श्रीमद् के हस्त लिखित अक्षर—

श्रीमद् का कोई चित्र उपलब्ध नहीं है, अत: उनकी हस्त लिखित अक्षर-देह की एक प्रति जो सं० १७७९ की है, उसका ब्लॉक बनवाकर प्रस्तुत पुस्तक मे समाविष्ट किया गया है।

श्रीमद् की चरणपादुका के देरी का चित्र भी देने का विचार था पर खेद है वह उपलब्ध नही हो सका।

पुस्तक मे प्रकाशित रचनाओ प्रयुक्त भाषा के विषय मे निवेदन यह है कि इसकी भाषा तात्कालिक प्रयोग का समन्वित रूप है जिसमे अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि सबका सम्मिश्रण है इसमे प्रयुक्त शब्दावली उस युग के बोल चाल व भाषा का मानक, प्रमाणिक रूप है जिसे आधुनिक काल के परिपेक्ष्य मे अशुद्ध न माना जाय।

पुस्तक को सुन्दर, सरस और बडे टाइप मे सर्व जन ग्राह्य बनाने का अपनी क्षमतानुसार प्रयास किया है। प्रूफ आदि के देखने में यथा सभव सावधानी रखी गई है, फिर भी दृष्टि-दोष व मतिभ्रम से जो भूले या कमिया रह गई है, उनकी ओर पाठक ध्यान दिलाएंगे तो अगले सस्करण में उनका परिष्कार किया जा सकेगा।

भक्त लोग प्रस्तुत प्रकाशन से आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त कर इस से लाभ उठाएंगे तो, हम (प्रेरक, संग्राहक, सपादक शब्दार्थ कारिका आदि) अपने प्रयास को सार्थक समझेगे।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन मे जिन्होंने आर्थिक या बौद्धिक सहयोग प्रदान किया है उन सबका हार्दिक अभिवादन करता हू।

कुशलम्

सोहनराज भंसाली

१६२ डी, शास्त्री नगर, जोधपुर.
वैशाख पूर्णिमा, वीर स० २५०३.

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

श्रीमद् देवचन्द्र

सन्त सदा ही देश और समाज के पथ-प्रदर्शक रहे है क्योंकि वे आत्म सौन्दर्य की खोज में समस्त सांसारिक इच्छाओं के विजेता होते हैं। वे वैराग्य की मस्ती में अपने समग्र जीवन को समर्पित कर देते हैं। जैसे जैसे आत्मा की अनन्त गहराई में उतरते हैं वैसे वैसे उसमे "आत्मवत् सर्व भूतेषू" की भावना बढती जाती है। मैत्री भाव का पावन स्रोत उसकी अन्तरात्मा से फूट पडता है। यही कारण है कि उनकी साधना 'स्वान्तसुखाय' होते हुए भी 'परजनहिताय' बन जाती है। उनकी वाणी देश काल की सीमा को लांघकर मानव मात्रा की उपकारक होती है उनकी कृतियो मानव-जीवन की समस्त गुत्थियों का ठोस आध्यात्मिक हल देने के साथ आत्मविकास की सर्वांगीण मीमासा करती हैं, अत एव वे मानव-जाति की अमूल्य धरोहर बन जाती है।

जब कभी धरती का पुण्य जगता है, समय का भाग पलटता है तब ऐसी विभूतियां अवतीर्ण होती है। श्रीमद् देवचन्द्र १८ वी शताब्दी की ऐसी ही एक विरल विभूति थे, जिन्होंने अपनी ज्ञान और संयम की साधना से एक ऐसी ज्योति दी जो प्रकाश स्तम्भ (Search Light) की तरह अज्ञान के अंधेरे मे भटकती हुई मानव जाति को दिशा निर्देश करती रहेगी।

श्रीमद् प्रकाण्ड विद्वान, समर्थ लेखक, भक्त-कवि ही नही किन्तु अध्यात्मयोगी महापुरुष थे।

जन्म और दीक्षा—

पुण्यभूमि भारत के इतिहास मे राजस्थान का स्थान महत्वपूर्ण है। इस महिमा शाली धरा ने जहां आन पर प्राण न्यौछावर करने वाले वीरो को जन्म दिया वहा भक्तिरस की सरिता बहाकर जन मानस के विकारों को धो डालने वाले भक्तो और नैतिक-जीवन की पावन प्रेरणा देने वाले सन्तो को भी जन्म दिया।

उसी राजस्थान में धवल-धोरो से घिरा हुआ बीकानेर शहर हैं, जिसकी अपनी निराली प्राकृतिक शोभा है।

"उनाले में तपे तावड़ो लूं आँरा लपका। रातडली इमरत वरसावे नीदा रा गुटका॥

कठोर जलवायु में पलने के कारण यहा के निवासी स्वभाव से ही बड़े परिश्रमी, सहिष्णु और साहसी होते है। बीकानेर राज्य के राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक निर्माण में यहा के जैनों का बडा योगदान रहा है। मन्त्री कर्मचन्द वच्छावत की राज्य और राज्य की जनता के लिए की गई सेवाएं भारतीय इतिहास मे सदा अमर रहेगी। उन्होंने अनेक लडाइयाँ लडकर युद्ध के मैदान मे विजय श्री प्राप्त की। यहा के जैनो ने समय आने पर राज्य और प्रजा की तन, मन, धन से सेवा की है। ये जितने कौशल से धन कमाना जानते है उससे कई अधिक गुणा औदार्य मे उसका सदुपयोग करना भी उन्हें आता है। "शत हस्त समाहरेत" और सहस्त्र हस्त संकिरेत' उनका सच्चा जीवन सूत्र रहा है।

इसी बीकानेर के समीपवर्ती एक गांव में, ओसवंश के लूणियां गौत्र मे संवत् १७४६ में श्रीमद् का जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम तुलसीदास जी एवं माता का नाम धनाबाई था। जब श्रीमद् गर्भ मे थे तभी इन भाग्यशाली दम्पति ने खरतरगच्छीय विद्वान वाचक वर्य श्री राजसागर जी के सम्मुख यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि पुत्र हुआ तो वे उसे जैन शासन को सेवा हेतु उन्हे अर्पण कर देंगे।

कहा जाता है कि जब श्रीमद् गर्भ मे थे तब धना बाई ने एक स्वप्न देखा था कवियण ने उस स्वप्न का वर्णन अपने शब्दो मे इस प्रकार किया है—

शय्या में सुतांथकाँ किंचित जागृत निंद।
मेरु पर्वत उपरे मिली चौसठ इन्द्र॥
जिन पडिमानो ओछव करे मिलिया देव महान।
ऐरावण पर वेसी ने देता सहुने दान॥

एहवूं सुपनते देखी ने थया जागृत तत्काल ।
अरूणोदय थयो तत् क्षिण, मन मे थयो उजमाल ।।

स्वप्न में सुमेरू पर्वत पर इन्द्रों द्वारा प्रभु के जन्म महोत्सव का दृश्य देखकर देवी धन्ना का रोम–रोम पुलकित हो उठा । इस स्वप्न का क्या फल होगा यह जानने की तीव्र उत्कंठा पैदा हुई । सौभाग्य से गच्छनायक श्री जिनचन्द्रसूरिजी का कुछ दिनों के बाद ही वहां शुभागमन हुआ । पुण्यवान दम्पत्ति ने उनके समक्ष अपने स्वप्न की चर्चा की । यह सुनकर आचार्य श्री अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले कि देवी ! तुम्हे एक महान भाग्यशाली पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी । यह पुत्र या तो छत्रपति होगा या सर्व विद्यानिधान पत्रपति होगा । यह सुन माता को बडा हर्ष हुआ ।

आचार्य श्री के कथनानुसार सं. १७४६ मे बालक का जन्म हुआ । नवजात बालक का नाम देवचन्द्र रखा गया । जब बालक ८ वर्ष का हुआ तब वाचकवर्य राज सागरजी विहार करते हुए पुन. वहा पधारे । माता–पिता ने अपनी भावना और प्रतिज्ञा को स्मरण कर उस पुत्ररत्न को गुरुदेव के चरणों में समर्पित कर दिया । दो वर्ष तक बालक देवचन्द को राजसागरजी ने अपने पास मुमुक्षु के रूप मे रखा । बालक की तीव्र बुद्धि, आलौकिक प्रतिभा एव विशिष्ट गुणो को देखकर गुरु श्री ने शुभ मूहुर्त में सं. १७५६ में सकल संघ की उपस्थिति मे मुनिधर्म की दीक्षा दी । अब आप का नाम राज विमल रखा गया । दो वर्ष के पश्चात् आपकी बड़ी दीक्षा आचार्य श्री जिन चन्द्रसूरि[1] के सानिध्य मे सम्पन्न हुई यद्यपि आपका नाम राज विमल जी रखा गया किन्तु वे श्रीमद् देवचन्द्र के नाम से ही प्रसिद्ध हुए । केवल उनकी दो एक कृतियों में राज विमल नाम मिलता है ।

१–खरतर–गच्छ मे प्रत्येक चौथे पट्टधर का नाम जिनचन्द्रसूरि रखने की प्राचीन परंपरा है । ये जिन चन्द्र सूरि ६५ वें पट्टधर थे । इनका शासनकाल १७११ से १७६२ तक रहा ।।

ज्ञानोपासना और संयमसाधना—

सद्गुरु और शिल्पी दोनो एक समान होते हैं। शिल्पी एक अनघड पत्थर को काट-छीलकर उसे सुन्दर मूर्ति का रूप प्रदान कर देता है। वैसे सद्गुरु भी ज्ञान-ध्यान, तप और त्याग की छैनी मे तराश कर शिष्य के जीवन का नव निर्माण कर देता है। यहि कारण है कि गुरु की महिमा प्रभु से भी अधिक बताई है। कबीर के शब्दो मे—

'गुरु गोविन्द दोनो खडे का के लागूं पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय'॥

केवल दीक्षा देने मात्र से कुछ नही होता, उसके साथ आवश्यक है शिक्षा देना। श्रीमद् के गुरु इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे। श्रीमद् के रूप मे तो उन्हे एक कोह-ए-नूर मिला था। आवश्यकता थी उसे निखारने की, उनकी अनंत आभा को उजागर करने की।

श्रीमद् कुशाग्र बुद्धि वाले तो थे ही साथ ही बडे अध्ययनशील थे। अपने गुरु-जनो के प्रति भी उनके हृदय मे अनन्य श्रद्धा, अगाधभक्ति एवं सहज विनयभाव था। अत. वाचक राजसागर जी, पाठक ज्ञानधर्म जी एव दीपचन्द्रजी ने प्रसन्न हो मुक्त हृदय से आपको ज्ञानदान दिया। मा भारती की असीमकृपा, ज्ञानदाता गुरुजनो की लगन, अपनी तीव्र बुद्धि एव अध्ययननिष्ठा के कारण अल्प समय मे ही आप व्याकरण: काव्य-कोष, छन्द अलंकार, न्याय-दर्शन, ज्योतिष कर्म साहित्य एव आगमसाहित्य के तलस्पर्शी अध्येता एवं व्याख्याता बन गये। ज्ञानोपासना की तीव्रता मे आपने दिगम्बर ग्रन्थो को भी अछूता नही छोडा था। आपकी विद्वत्ता का वर्णन करते हुए कवियण कहते हैं—

" सकल शास्त्र लायक थया हो,
जहने थयु मंड सुइ ज्ञान रे ॥

इसके अतिरिक्त स स्कृत, प्राकृत, अपभ्र स, गुजराती एव राजस्थानी भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपकी ज्ञानोपासना के सही प्रभाव को खोजने के लिए आपके द्वारा निर्मित कृतियों का पारायण करना ही अधिक उपयुक्त होगा।

ज्ञान का फल है विरति "ज्ञानस्य फलं विरति" जैसे-जैसे उनकी ज्ञानोपासना दृढ वनती गई वैसे-वैसे उनकी स यम साधना कठोर वनती गयी। त्याग और वैराग्य दिन प्रतिदिन वढता गया। यही कारण था कि वहुत छोटी उम्र मे ही श्रीमद् का झुकाव आध्यात्मिक और योग की ओर हुआ। आज का विद्यार्थी जिस आयु में अनुभव हीन, शुष्क ज्ञान का बोझ ढोता हुआ कालेजों की खाक छानता है वहा श्रीमद् ने केवल १६ वर्ष की अल्प आयु मे संवत् १७६६ में पजाव के मुलतान नगर के प्रतिष्ठित श्रावक मिठूमल भ साली आदि योग साधना प्रेमी श्रावकों के अनुरोध पर ध्यान के गूढ रहस्यों से भरी ध्यान दीपिका चतुष्पदी नामक ग्रन्थ की रचना कर डाली।

प्रवास और उपदेश—

श्रीमद् द्वारा रचित ग्रन्थो की प्रशस्तियां, चैत्यपरिपाटिया, तीर्थस्तव एव देव विलास से स्पष्ट है कि आपका प्रवास राजस्थान, सिंध, प जाव, गुजरात, एव सौराष्ट्र के प्रदेशो मे अत्यधिक हुआ। दीक्षा के वाद २० वर्ष तक तो आप राजस्थान सिंध, प जाब में विचरण करते रहे। इन वीस वर्षो में मुलतान, बीकानेर, जैसलमेर, मरोठ आदि शहरो को छोड़कर आपके चातुर्मास कहाँ-कहाँ हुए, आपके द्वारा शासन प्रभावना के क्या क्या कार्य हुए, इसका कोई विवरण उपलब्ध नही होता। श्रीमद् जैसे समर्थ विद्वान, स यम निष्ठ और वहुमुखी-प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति (ग्रन्थ-रचना के अतिरिक्त) इतना लम्बा काल यों ही व्यतीत कर दे, यह वुद्धिगम्य नही होता। अतः इस सम्बन्ध मे विद्वानो द्वारा समुचित खोज अपेक्षणीय है।

गुजरात की ओर—

विद्वत्वं च नृपत्वं च, नैव तुल्य कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते ।।

विद्वत्ता, सयमनिष्ठा अध्यात्मरसिकता एव प्रवचनपटुता के कारण आपकी कीर्ति दूर दूर तक फैल गई थी, अत. स्थान-स्थान के श्री सघ आकर, अपने गांवो और नगरो मे पधारने की आपसे सविनय प्रार्थना करने लगे । गुजरात भी उस ज्ञान-गंगा से अपनी आध्यात्मिक प्यास वुझाने मे, कैसे पीछे रहता ? अत' वहां का भी अत्याग्रह रहा । श्रीमद् के गुजरात प्रवास के पीछे एक खास बात यह भी रही कि संघ के आग्रह के साथ एक गुणानुरागी सह्रदय–साधु पुरुष का भी नम्र आग्रह था । वे साधु पुरुष थे तपागच्छीय मुनि श्री क्षमाविजय जी ।

संवत १७७७ मे श्रीमद् ने गुजरात की ओर विहार किया । इस प्रवास को आप ने तीर्थ यात्रा एवं धर्म प्रचार का माध्यम वनाकर अनेक धर्म प्रभावना के कार्य किए । जहां जहा वे तीर्थो मे गये वहा वहां नवीन स्तव–स्तुतियो द्वारा मुक्त हृदय से भक्ति करते हुए उसे चिरस्मरणीय बनाया । विचरण करते हुए अपने समाज मे तो ज्ञान का प्रचार किया ही, साथ ही राजकोय अधिकारियो में भी मुक्त रूप से अहिंसा धर्म का प्रचार किया । उनमें से कई तो आपके परम भक्त वन गये थे ।

सर्व प्रथम श्रीमद् गुजरात के पाटनगर पाटण मे पधारे । पुण्य पुरुष कही भी पधारे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा जाता है "पदे पदे निधानानि" । इस राजस्थानी सन्त की प्रवचन पटुता एव मधुरवाणी ने पाटणवासियो को मन्त्र मुग्ध कर दिया । उनके जीवन और उपदेशो मे न तो अहंभाव था, न ममत्व, किन्तु समभाव का ही अमृत झरता था । अत, उसका पान करने के लिए लोग हजारो की तादाद मे उनके व्याख्यानो में आते थे और जीवन की समस्याओ का सही समाधान पाते थे ।

ज्ञानविमलसूरि और श्रीमद्—

(सहस्त्रकूट जिन नाम प्रसिद्धि)

वडा बडाई ना करे, बडो न बोले वोल ।
हीरा मुख से कब कहे, लाख हमारा मोल ॥

तथापि जैसे हीरे का पानी हीरे का मूल्य बता देता है, वैसे आचरण व्यक्ति की महानता का परिचय करा देता है। उस समय पाटण के नगर सेठ श्रीमाली दोसी तेजसी जैतसी थे। उन्होने वहां सहस्त्रकूट जिनालय बनवाया था जिसका वर्णन श्रीमद् ने स्वयं सहस्त्रकूट स्तवन में किया है।

"श्रीमाली कुलदीपक जेतसी, सेठ सुगुण भण्डार ।
तस सुत सेठ शिरोमणी तेजसी पाटण नगर मे दातार ॥
तणे ए बिंब भराव्या भावशु, सहस अधिक चौबीस ।
कीधी प्रतिष्ठा पूनमगच्छधरू भाव प्रभ सूरीश ॥

एक दिन श्रीमद् ने सेठ जी से पूछा कि आपने 'सहस्त्रकूट' के नाम तो गुरु मुख से सुने ही होंगे ? सेठजी ने अपनी अज्ञानता प्रकट की। किन्तु इससे उनके हृदय मे सहस्त्रकूट के नाम को जानने की प्रबल जिज्ञासा पैदा हो गई। उन्होने अपनी यह जिज्ञासा उस समय के जाने माने विद्वान ज्ञानविमलसूरि के समक्ष रखी। ज्ञान विमल सूरि ने इन्हे फिर कभी वताने को कहा। एक दिन साही पोल स्थित श्री पार्श्वनाथ मन्दिर मे सत्तरभेदी पूजा के प्रसंग को लेकर सूरिजी और श्रीमद् दोनों ही वहा पधारे। सेठजी भी वहाँ आए हुए थे। सूरिजी को देख कर उनकी जिज्ञासा फिर जगी और उन्होने अपना प्रश्न पुन. दोहराया। उत्तर देते हुए सूरिजी ने कहा कि उपलब्ध शास्त्रो मे प्राय. इन नामो का उल्लेख नही मिलता। एक अधिकारी आचार्य के मुह मे यह वात सुनकर श्रीमद् से नही रहा गया और उन्होने इसका नम्र

प्रतिवाद किया। इस पर आचार्य श्री जराक्रुद्ध होकर बोले यदि तुम्हें विदित हो तो तुम ही बतला दो। श्रीमद् ने उस समय विनय पूर्वक सूरिजी को शास्त्र पाठ सहित सहस्त्र जिन नाम[1] बतलाये।

इससे सूरिजी बडे प्रभावित हुए। विद्वता के साथ स्वभाव की नम्रता और साधुता के सुमेल ने तो सूरिजो को ऐसा आकर्षित किया कि दोनो में गाढ मैत्री हो गई। यह जानकर तो सूरिजी को बडा हर्ष हुआ कि वे खरतर गच्छीय विद्वान परम्पर के वाचक राज सागर जी के सुयोग्य शिष्य हैं—

मौन रही ने पूछे ज्ञान, तुमे केहना शिष्य निधान रे
उपाध्याय राजसागरजी ना शिष्य मीठी वाणी जेहनी इक्षु रे ।।
नम्रता गुण करी बोले ज्ञान, देवचन्द्र ने आप्या मान रे
तुम वाचक तो जैन ना काजी, तुमे जैनना थंभ छो गाजीरे
आदि घर छे तमारु भव्य तुमे पण किमन होय कव्य रे ।।

धन्य है ऐसे गुणानुरागी महात्माओं को जो गच्छ व समुदाय के भेद से ऊपर उठ कर गुणो के ग्राहक और साधुता के पूजक होते हैं।

क्रियोद्धार—

संसार परिवर्तनशील है। कोई यह दावा नही कर सकता कि-अमुक समाज, राष्ट्र, धर्म, जाति या पन्थ अपने उद्गम से लेकर आज तक एक सा रहा हो सामयिक-परिवर्तनो से कोई अछूता नही रहा। प्रत्येक चीज उत्थान और पतन के दो बिन्दुओ के बीच लुढ़कती रहती है।

१—इन नामो का वर्णन श्री मद रचित सहस्त्रकूट जिन स्तवन मे है।

जैन धर्म भी इसका अपवाद नही रहा। समय-समय पर उसे भी आचारिक और वैचारिक उत्थान-पतन का शिकार होना पड़ा। 'चैत्यवासी-परम्परा' एक ऐसे ही पतन का नमूना था।

जैन धर्म में इसके बीज कब से बोये गए थे, यह स्पष्ट नही कहा जा सकता, किन्तु इतना स्पष्ट है कि आचार्य हरिभद्रसूरि जी के समय चैत्यवासियो का सूर्य मध्यान्ह में था। यह उनके द्वारा रचित सम्बोध-प्रकरण से स्पष्ट है।

चैत्य का अर्थ है मन्दिर, वासी यानि उसमे रहने वाले। अर्थात् उस समय साधुओं का बहुत बडा वर्ग शास्त्र-मर्यादाओं को तोड कर मन्दिर मे ही बस गया था। उनका खान-पान, धर्मोपदेश, पठन-पाठनादि वही होते थे। मन्दिर ही उनके मठ थे। इसके साथ धीरे-धीरे उनमें और भी शिथिलता आ गई थी। शास्त्रवर्णित आचारों से उनके आचार में बड़ी विसंगति थी। धार्मिक क्षेत्र के अतिरिक्त राजनैतिक, सामाजिक और व्यापारिक क्षेत्रों में भी उनकी धाक थी। मंत्र, तन्त्र, के सफल प्रयोग के कारण उन्होंने तत्कालीन राजा और प्रजा को अपने वश कर रखा था। यहा तक कि वे राज्य निर्माता (King Makers) भी थे। शीलगुणसूरि, देवेन्द्र सूरि आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

यद्यपि हरिभद्रसूरि जी ने इसके विरुद्ध आवाज तो उठाई थी तथापि उस परंपरा को खत्म करने के लिये इतना ही पर्याप्त नही था। उसके लिये तो आवश्यकता थी एक ऐसे व्यक्तित्व की जो ज्ञानबल और क्रियाबल दोनों से वरिष्ठ होने के साथ-साथ चैत्यवास के विरुद्ध संप्रदायव्यापी और देशव्यापी आन्दोलन बुलन्द कर सके तथा उसकी भावना को प्रचण्डता के साथ अपने शिष्यों, प्रशिष्यो तक पहुँचा सके। ऐसा प्रखर और तेजस्वी व्यक्तित्व वर्धमान सूरि की छत्रछाया में पनपा। वह व्यक्तित्व था जिनेश्वरसूरि का।

यद्यपि वर्धमान सूरि स्वय किसी समय चैत्यवासियों के प्रमुख आचार्य थे, किन्तु जैन शास्त्रो का विशेष अध्ययन करने पर उन्हे अपना तत्कालीन आचार-विचार मिथ्या और अनुचित लगने लगा। फलत उन्होने इस अवस्था का त्यागकर विशिष्ट त्यागमय जीवन अपना लिया। उनके शिष्य जिनेश्वरसूरि आदि ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। वे क्रियापत्र ही नही उच्चकोटि के आगमज्ञ भी थे। उन्होने चैत्य वास के विरुद्ध संप्रदाय व्यापी और देश व्यापी आंदोलन छेडने का कार्य अपने हाथ मे लिया। इसके लिये उन्होने सुविहित मार्ग प्रचारक नया गण स्थापित किया। इसके उन्मूलन के लिये यथाशक्य सभी उपाय किए शास्त्रार्थ भी किया। आपने पाटण मे दुर्लभ राज की सभा मे चैत्यवास के प्रबल समर्थक सुराचार्य के साथ शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त की। इसी विजय के फलस्वरूप दुर्लभराज ने उन्हे 'खरतर-विरुद्ध' दिया। इस तरह खरतर गच्छ का प्रादुर्भाव अपने मे एक महासाहसिक कदम था। इस प्रसग से जिनेश्वरसूरि की पाटण में ही नही किन्तु मारवाड मेवाड़, गुजरात, सिंध, मालवा आदि प्रदेशो मे भी खूब ख्याति बढी। आपकी निश्रा मे चतुर्विध संघ का अच्छा स गठन तैयार हुआ था। इनके प्रभाव के कारण अनेक समर्थ यतिजन चैत्याधिकार का और शिथिलाचार का त्यागकर क्रियोद्धार करके अच्छे स ंयमी बने। मन्दिरो की व्यवस्था और देवपूजा की पद्धतियो मे शास्त्रानुकूल सर्वत्र परिवर्तन हुए।

यद्यपि जिनेश्वरसूरि ने इस परपरा को मिटाने का आजीवन पुरुषार्थ किया, तथापि इतने थोडे समय मे उसके मूल को उखाड फैकना आसान नही था। उसके लिये तो परपरा का प्रचण्ड प्रयास अपेक्षित था। अतः सूरिजी ने अपने शिष्य-प्रशिष्यो मे भी उस भावना को बडे वेग से फैलाया। अत. उनके पीछे आने वाले उनके कई उत्तराधिकारियो-नवागी टीकाकार अभयदेवसूरि-जिनवल्लभसूरि-जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि आदि ने उनके विचार का बडे विस्तार से प्रचार किया। किन्तु उसके बीज को उन्मूलन कर देना सहज काम नही था। कभी वह पुनः जोर पकड लेता फिर

उसे खत्म करने का प्रयत्न किया जाता । इस प्रयास मे महान आचार्यों[1] ने शिष्यों तक का मोह त्याग दिया था । श्रीमद् के समय साधु–जीवन में पुन शिथिलता व्याप्त हो गई थी । सुविहित–परपरा के सस्कारो को विरासत मे पाने वाले श्रीमद् की त्यागी-वैरागी आत्मा मे इसका बडा दुख था । अत. आपने शैथिल्य का सर्वथा परिहार कर उत्कृष्ट-त्यागमय जीवन अपना लिया । फलत उस समय आपके पास केवल ८-१० शिष्य प्रशिष्य ही टिक सके, जो आपकी तरह ही कठोर साधु-जीवन के पालन मे रूचि रखते थे ।

१–इस दृष्टि से अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि का नाम उल्लेखनीय है । सवत्-१६१४ मे चैत्रकृष्णा ७ को जब सूरिजी ने क्रियोद्धार की उद्घोषणा की तब २०० शिष्यो मे से आपके—पास कुल १६ ही शिष्य रहे । अवशिष्ट, जो विशुद्ध सयम का पालन करने में असमर्थ थे, उन्हें गृहस्थ के कपडे पहिनाकर अलग कर दिया । इन्ही से 'मत्थेरण' (महात्मा) जाति का उद्भव हुआ । यह जैन जाति आज भी मारवाड, मेवाड में विद्यमान है ।

२–यह मन्दिर हाजा पटेल की पोल मे स्थित शाँतिनाथजी की पोल मे है । श्री सहस्त्रफरण के नीचे निम्न लेख दिया हुआ है—

"संवत् १७८४ वर्षे मागशीर वदि ५ दिन सहस्त्रफरणाथी मंडित श्री पार्श्वनाथ परमेश्वर बिंब कारित उपकेशवंशे साह प्रतापशा भार्या प्रतमदे पुत्र शा. ठाकरशी के आणदबाई भगनी झवरयुतेन बृहत्खरतरगच्छे भट्टारक श्री युग प्रधान, श्री जिनचन्द्रसूरि, शिष्याणाँ महोपाध्याय श्री ......शिष्य उपाध्याय श्री देवचन्द्र गणि शिष्य-युतै."

(श्री पादराकरजी द्वारा लिखित श्रीमद् का जीवन–चरित्र पृ ३१)

शासन – प्रभावना :—

इसी वर्ष आप अहमदाबाद पधारे और नागौरी सराय मे विराजे। वहाँ भगवती सूत्र पर आपके बडे ही तर्क और तत्त्व से पूर्ण मधुर व्याख्यान होते थे। वहाँ माणकलालजी नामक एक सम्पन्न सद् गृहस्थ रहते थे। स्थानकवासियो के संसर्ग मे उनकी मूर्तिपूजा की श्रद्धा क्षीण हो गई थी। किन्तु श्रीमद् के उपदेश से वे पुन. मूर्तिपूजक बन गये और उन्होने एक जिन चैत्यालय[2] बनाया, जिसकी प्रतिष्ठा संवत् १७८४ मे श्रीमद् के वरद–हस्तो से हुई थी।

खंभात चातुर्मास एवं सिद्धाचल पर पेढ़ी स्थापनः—

खभात श्रीसघ के अत्याग्रह से सवत् १७७९ का आपका चातुर्मास खभात मे हुआ। वहाँ आपके व्याख्यानों से अनेको लोग प्रभावित हुए। श्रीमद् के स्तुति–स्तवों, गिरिराज पर निर्माण–कार्य, एव बार–बार वहां जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी सिद्धाचल के प्रति अगाध भक्ति एव अनन्यश्रद्धा थी। अतः, इस चातुर्मास मे आपने तीर्थराज की महिमा का अपूर्व वर्णन किया।

सिद्धाचल इतना प्राचीन एव पवित्र तीर्थ होते हुए भी इस तीर्थ की सुचारू व्यवस्था के लिये कोई सुसगठित सस्था या पेढी नही थी। तीर्थ के पंडे, पुजारी तीर्थ पर एकाधिकार जमाए बैठे थे। तीर्थ की सारी आय वे ही हड़प कर जाते थे। व्यवस्था की दृष्टि से वास्तव में तीर्थ की दशा वडी दयनीय व हृदय विदारक थी। श्रीमद् को इस बात का गहरा दु ख था और वे इसके लिये समुचित उपाय करना चाहते थे। अत, खभात चातुर्मास में उन्होने तीर्थ की समुचित व्यवस्था हेतु एक सस्था स्थापित करने का मार्मिक उपदेश दिया। आपकी प्रेरणा के फलस्वरूप उसी वर्ष एक पेढ़ी[1] की स्थापना हुई। अनेक सामयिक परिवर्तनो से गुजरती हुई उस पेढी का विकसित रूप वर्तमान की इस आनदजी, कल्याणजी पेढी को कह दिया जाय तो कोई अनुचित नहीं होगा। पेढी की स्थापना के बारे में कवियण कहते हैं—

"तीर्थ महात्म्यनी प्ररूपणा गुरुतणी, सांभले श्रावक जन्न।
सिद्धाचल उपर नवनवा चैत्यनो, जीर्णोद्धार करे सुदिन्न।

कारखानोतिहाँ सिद्धाचल उपरे मंडाव्यो महाजन्न।
द्रव्य खरचाये अगणित गिरीउपरे, उल्लसित थयोरे तन्न।

संवत् १७८१-८२ एव ८३ में आपके सदुपदेश से गिरी राज पर विशाल पैमाने में 'जीर्णोद्धार एवं चित्रकारी का काम हुआ' कवियण के शब्दों में

"संवत सतर एकासीये व्यासीये त्रयासीये कारीगरे काम"

चित्रकार सुधागा काम ते, दृषद् उज्वलतारे नाम।"

यह निर्माण कार्य सिद्धाचल पर कहाँ चला था, कवियण ने इसका कुछ भी उल्लेख नही किया। किन्तु श्री तीर्थराज पर के शिलालेख से मालूम होता है कि यह कार्य 'खरतरवसही' मे चला था।

१-वर्तमान में जो आनन्दजी कल्याणजी की पेढी है उसका इतिहास इस प्रकार है। शान्तिदास सेठ के वश मे हेमा भाई हुए। इन्होने सवा तीन लाख रुपये खर्च करके उजमबाई व नंदीश्वर टूंक बनवाई और सं १८८६ मे प्रतिष्ठा कराई। उनके पुत्र प्रेमाभाई हुए। उन्होने १६०५ मे शत्रुजय का सघ निकाला और वहा मन्दिर बनवाया (जैन सा र पृ. ६७२) इन्ही प्रेमा भाई के समय मे आनन्दजी कल्याणजी नाम पडा तथा उसका विधान बना। सं १८७४ मे अहमदाबाद अग्रेजों के शासन मे आया इसलिये नामकरण व विधान की जरुरत पडी होगी। उसके पहले से पेढी तो थी जिसकी स्थापना श्रीमद् के उपदेश से हुई थी। पेढी की स्थापना का उल्लेख कवियण ने अपनी पुस्तक मे किया है।

'खरतरवसही' मे दाहिनी ओर की खुली जगह मे रही हुई सिद्धचक्र शिला पर इस भॉति का लेख है।

"संवत् १७८३ माघ सुजी ५ सिद्धचक्र" धणपुर के रहने वाले श्रीमाली लघु शाखा के खेता की स्त्री आणंदबाई ने अर्पण की (बनाई) बृहत् खरतरगच्छ की मुख्य शाखा मे श्री जिनचन्द्रसूरिजी हुए जिनको अकबर बादशाह ने युगप्रधान पद दिया था। उनके शिष्य महोपाध्याय राजसागरजी हुए, उनके शिष्य महोपाध्याय ज्ञानधर्मजी, उनके शिष्य उपाध्याय दीपचन्द्रजी, उनके शिष्य पडितवर देवचन्द्रजी ने प्रतिष्ठा की।"[१]

(डॉ. बूल्हर कृत ले. सं. ३४)

पालीताणा से आप राजनगर पधारे सूरतसंध का अत्याग्रह होने से १७८४ का[२] चातुर्मास आपने सूरत मे किया। उपदेश द्वारा वहॉ कई आत्माओं को धर्मप्रेमी बनाया।

वहॉ से विहार कर, विभिन्न गाँव, नगरो को पावन करते हुए आप पालीताणा पधारे। वहॉ १७८५-८६ और ८७ मे वधुशाह कारित चैत्यो की बडे महोत्सव पूर्वक प्रतिष्ठा की।

डॉ. बूल्हर द्वारा सगृहीत लेख न ३५ और ३६ से तत्कालीन प्रतिष्ठा की पुष्टि होती है।

गुरु वियोग :—

पालीताणा से विहारकर आप राजनगर पधारे। यहाँ आपके गुरुदेव उपाध्याय

१-जिनविजयजी ने प्रा ले. सं. भा. २ मे तथा मोहनलाल दलीचन्द्र देसाई ने श्रीमद् के जीवन चरित्र के वक्तव्य पृ ६ मे लिखा है।

जी श्री दीपचन्द्रजी अस्वस्थ हो गए। श्रीमद् के प्रति आपका महान् उपकार था। श्रीमद् का भी आपके प्रति अपूर्व प्रेम था। श्रीमद् ने गुरूदेव की तन-मन से खूब सेवा की। किन्तु, "परिवर्तिनी ससारे, मृत. को वा न जायते।"

जहाँ जन्म है, वहाँ मृत्यु है। जन्म और मृत्यु का यह अविनाभावी सम्बन्ध मोक्ष मे ही विच्छिन्न होता है। यद्यपि श्रीमद् ने गुरूदेव की सेवा में कोई कसर नही रखी किन्तु मृत्यु ! अप्रतिक्रिय तत्त्व है। उसके आगे किसी का वंश नही तथा सन्त पुरुष का तो जीना और मरना दोनो समान ही हैं, क्योकि वे मरकर भी अपनी गुण-देह से सदा अमर रहते है। उपाध्यायजी भी सयम की समाराधना करते हुए संवत् १७८८ की आषाढ सुदी २ के दिन समाधिपूर्वक स्वर्गवासी हो गए।

आपकी अपने गुरूजनो के प्रति अगाध श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति थी। गुरू चरणो मे आपका समर्पण अद्भुत था। अपनी समस्त रचनाओ मे महोपाध्याय राजसागरजी एवं उपाध्याय दीपचन्द्रजी का नाम अंकित कर उनके नाम को भी अमर कर दिया। इस तरह अपने गुरू के ऋण को यथा शक्ति चुकाने का जो विनम्र प्रयत्न आप श्री ने किया वह श्लाघनोय एव अनुकरणीय है।

भण्डारी जी को प्रतिबोध :—

अहमदाबाद के तत्कालीन सूबेदार जोधपुर निवासी श्री रत्नसिंहजी भण्डारी थे। भण्डारीजी के घनिष्ठ मित्र श्री आणदरामजी श्रीमद् के पास आया-जाया करते थे एवं उनकी ज्ञानगरिमा से अत्यधिक प्रभावित थे। आणदरामजी ने भण्डारजी के समक्ष श्रीमद् के गुणो की भूरि-भूरि प्रशसा की। उनके गुणो से आकर्षित हो भण्डारीजी भी गुरूदेव के सत्सग का लाभ उठाने लगे। सन्तों की वाणी मे सदाचार का ओज होता हैं। सत्य का जादू होता है, जिससे प्रेरित हो व्यक्ति आत्म-समुन्नति के पथ पर अग्रसर हो जाता है। सन्तो के सत्संग का वडा भारी महत्त्व है। तुलसीदास जी के शब्दो मे—

"एक घड़ी आधी घडी, आधी मे भी आध।
तुलसी सगत साधु की, कटै कोटि अपराध ॥"

श्रीमद् के सत्संग से भण्डारीजी में धर्म की जागृति हुई। नित्य जिन-पूजनादि करने लगे तथा धार्मिक कार्यो मे सेवा सहयोग करते हुए सोत्साह भाग लेने लगे। शासक वर्ग को धर्म प्रेमी बनाना धार्मिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण बात है।

चातुर्मास बाद विहारकर आप धोलका पधारे। वहाँ के निवासी सेठ श्री जयचन्द्रजी ने पुरुषोत्तम नामक योगी से आपका परिचय कराया। श्रीमद् ने भी उसे धर्म का सही स्वरूप बताकर जैन धर्मानुरागी बनाया।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि श्रीमद् की शत्रुजय तीर्थ के प्रति अपूर्व भक्ति थी। वहाँ अपने उपदेश देकर, मन्दिर निर्माण, जीर्णोद्धार एवं प्रतिष्ठादि के महान् कार्य किए थे। संवत् १७९५ में आप पालीताणा पधारे। इस बात को पुष्टि वहाँ के एक शिलालेख से भी होती है। "१७९४ (गुजराती) शक १६५८ असाढ सुदी १० रविवार (राजस्थानी संवत् १७८५) ओसवश[1] वृद्र शाखा नाडूल गोत्र के भण्डारी भीनाजी के पुत्र भण्डारी नारायणजी के पुत्र भण्डारी ताराचन्दजी के पुत्र भण्डारी [illegible] के पुत्र भण्डारी शिवचन्द के पुत्र हरखचन्द ने इस देवालय का जीर्णोद्धार कराया और पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा अर्पण करी। बृहत् खरतरगच्छ के जिनचन्दसूरि के विजयराज्य में महोपाध्याय राजसागरजी के शिष्य उपाध्याय दीपचन्द्रजी के शिष्य पण्डित देवचन्द्र ने प्रतिष्ठा करी।"

१-छीपावसी के एक देवालय के बाहर यह लेख है। डॉ बूल्हर ने इसका न ३९ दिया है।

नवानगर में नया काम :—

संवत् १७९६-९७ में आप नवानगर बिराजे। यहाँ पर आपने प्राकृत में 'विचार-सार' एव 'ज्ञानसार' पर 'ज्ञानमजरी' टीका लिखी। इसके अलावा नवानगर मे धर्म प्रभावना का नया काम यह किया कि—स्थानकवासियों के प्रभाव से वहाँ के लोगो की मूर्ति पूजा के प्रति एकदम अश्रद्धा हो गई थी। फलत मन्दिरो और मूर्तियों की हालत बडी खराब थी। घोर आशातना हो रही थी। यह देखकर सत्यप्रेमी श्रीमद् को बडा दुख हुआ। उन्होसे आगम और युक्तियों के द्वारा स्थानकवासियो के समक्ष मूर्तिपूजा की सत्यता सिद्ध की। लोगो की मूर्ति-पूजा मे श्रद्धा स्थिर हुई। और वहाँ के मन्दिरो मे पुन: दर्शन पूजन आदि शुरू हुए। यहाँ परछरी के ठाकुर साहब आपके परिचय में आए और उनको प्रतिवोध देकर आपने धर्मप्रेमी वनाया।

तत्पश्चात् १७९८ से १८०१ तक आप नवानगर और पालीताणा के बीच विचरण करते रहे। १८०२-३ में आप नवानगर के पास स्थित 'राणाबाव' में विराजे। अन्य लोगो से साथ गाँव का ठाकुर भी आपके प्रवचन मे आने लगा। आपके त्याग का ही प्रभाव समझो कि आपके सत्सग से ठाकुर का सारा जीवन ही बदल गया। दुर्गुणो की दुर्गन्ध से भरापूरा जीवन सयम की सुगन्ध से महक उठा और वे आध्यात्मिक जीवन जीने लगे। संवत् १८०४ मे आप भावनगर पधारे थे और वहाँ के महाराजा भावसिंहजी भी इसी तरह आप मे प्रभावित हो आपके परमभक्त बन गये थे।

१८०५-६ में आप लीबडी विराजे। इस बीच लीवड़ी–चूडा एव ध्रागध्रा मे आपके सान्निध्य में वडे महोत्सव पूर्वक जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा हुई थी। लीबड़ी प्रतिष्ठा के विषय मे श्रीमद् स्वय स्तवन मे कहते है—

"संवत् अठारसे साते वरषे, फागुण सुदी, बीज दिवसे रे।
श्री शांति जिणेसर हरषे थाप्या, बहुमुनि शिवसुख बरसे रे॥"[1]

ध्रांगध्रा में आपका सुखानंदजी के साथ सौहार्द-पूर्ण मिलन हुआ। सुखानंद जी भी महान् आध्यात्मिक पुरुष थे, अत. श्रीमद् का उनके प्रति अच्छा आदरभाव था।

संवत् १८०८ मे आप पुन पालीताणा पधारे। तत्पश्चात् दो साल तक गुजरात के विभिन्न गांवो में विचरण करते रहे। १८१० मे पुन पालीताणा। १८११ मे लींबडी में प्रतिष्ठा कराई। १८१२ का चातुर्मास राजनगर मे किया।

संघ यात्रा—

आपके सान्निध्य मे तीर्थराज शत्रुंजय के तीन संघ निकलने का उल्लेख मिलता है।

१. संवत् १८०४ मे सूरत के संघवी शाह कचरा कीका ने शत्रुंजय का संघ निकाला था, जिसका वर्णन स्वयं श्रीमद् ने अपने सिद्धाचल स्तवन मे किया है।

"संवत् अढार चिडोतर वरसे सित मृगसर तेरसीये
श्री सूरत थी भक्ति हरख श्री संघ सहित उल्लसीये ॥६॥
कचरा कीका जिनवर भक्ति (गुणवंत) रूपचंद जीइए
श्री संघ ने प्रभुजी भेटाव्या, जगपति प्रथम जिणंद ॥७॥

२. आपके उपदेश से १८०८ मे गुजरात से संघ निकला था।

सवत् अठारने आठ में गुजराती थी काढयो संघ ।
श्री गुरूना गुरू उपदेश थी, शत्रुंजय नो अभग ।। 'देवविलास'

३. संवत् १८१० में कचरा कीका ने पुनः संघ निकाला था ।

सवत् दश अष्टादशे, कचरा साहजीइ संघ ।
श्री शत्रुंजयतीर्थ नो, साथे पधार्या देवचन्द ।। 'देवविलास'

इस संघ की पुष्टि निम्न शिलालेख से भी होती है ।

"सवत् १८१० माघसुदी १३ मगलवार संघवी कचरा कीका वगैरह समस्त परिवार ने सुमतिनाथ प्रतिमा अर्पण करी, सर्व सूरियो ने प्रतिष्ठा करी । विमल-वसही मे हाथी पोल की ओर जाते हुए दाहिनी ओर के एक देवालय मे यह लेख है ।

सच्चे ज्ञानदाता—

श्रीमद् वस्तुत श्रुतदेवी के सच्चे उपासक थे । उन्होने स्वयं ज्ञानार्जन मे कोई कमी न रखी तो उदारतापूर्वक ज्ञानदान देने मे भी कोई कसर नही रखी । जैसे मेघ जल बरसाने में किसी तरह का भेद-भाव नही रखता वैसे श्रीमद् ने भी सम्यग्ज्ञान के दान मे साधु श्रावक, समुदाय या गच्छ का कुछ भी भेद नही रखा था । यही कारण था कि तपागच्छ के महास्तभ गिनेजानेवाले मुनिवरो ने अपने सुयोग्य शिष्यो को सैद्धान्तिक अध्ययन कराने के लिये आपसे सविनय विज्ञप्ति की थी । उनकी भावनाओ का आदर करते हुए आपने भी बडे वात्सल्य-पूर्वक उन्हे महान् आगमिक ग्रन्थो का गभीर अध्ययन करवाया था । देखिये कवियण के शब्दो मे—

"गच्छ चौरासी मुनिवरूरे, लेवा आवे विद्यादान ।
नाकारो नही मुख थकी रे, नय उपनय विधान रे ।।

अपर मिथ्यात्वी जीवडा रे, तेहनी विद्यानो पोस ।
अपूर्व शास्त्रनी वाचना रे, देता न करे सोस रे ।
विद्यादान थी अधिकता रे, नहिं कोई अवरते दान ।
न करे प्रमाद भणावता रे, व्यसननो नही तोफान ॥"

कवियण के इस कथन की सत्यता अध्येता मुनिवर स्वय अपनी कृतियो में सिद्ध करते हैं ।

तपागच्छ के प्रखर विद्वान् गिने जाने वाले पण्डित जिनविजयजी, उत्तम-विजयजी एवं विवेक विजयजी ने आपके पास अनन्य श्रद्धा और भक्तिपूर्वक अध्ययन किया था ।

पण्डित जिनविजयजी ने आपके पास महाभाष्य का पारायण किया था, जिसका वर्णन श्री उत्तमविजयजी ने 'श्री जिनविजय निर्वाण रास' में वडे आदर-पूर्वक किया है—

'खिमाविजय गुरू कहण थी, पाटण मा गुरू पास ।
स्व. पर समय अवलोकता, कीधा बहु चौमास ॥
श्री ठाकुरशी कने पढया, शब्द शास्त्र सुखवास ।
'ज्ञानविमलसूरि' कने, वाची 'भगवती' खास ॥
'महाभाष्य' अमृत लह्यो, 'देवचद' गणि पास ।
(जैन रासमाला पृष्ठ १४९ तथा दे० गी० पृ० (२३)

श्री उत्तमविजयजी ने आपके पास अध्ययन किया, उसका वर्णन पद्मविजयजी कृत श्री उत्तम विजय निर्माण रास मे इस भाति है—

खरतर गच्छ मां ही थया रे लोल, नामे श्री देवचद रे सौभागी
जैन सिद्धान्त शिरोमणी रे लोल, धैर्यादिक गुणवृन्द रे सौभागी

ते गुरुनी वाणी सुणी हरख्यो चित कुमार ।
ज्ञान अभ्यास करु हवे, तुम पासे निरधार ॥
इंगित आकारे करी, जाणी ते सु पात्र ।
ज्ञान अभ्यास कराववा कीधो तेनो छात्र ॥

श्री उत्तम विजयजी ने श्रीमद् के पास भगवती सूत्र का अध्ययन किया तथा सर्व आगमो की अनुज्ञा भी उनसे प्राप्त की थी । देखिये इसे पद्म विजयजी के शब्दो मे

भावनगर आदेशे रह्या, भविहित करे मारालाल ।
तेडाव्या देवचन्द्रजी ने, हवे आदरे मारालाल ।
वांचे श्री देवचन्द्रजी पासे, भगवती मारा लाल ।
सर्व आगमनी आज्ञा दीधी, देवचन्द्रजी मारालाल ।
जाणी योग्य तथा गुण गणना वृन्दजी मारा लाल ।
(जै. रा. मा श्री उत्तम विजयजी निर्वाण रास पृ० १६३)

श्रीमद् और उनके विद्यार्थियो के बीच वात्सल्यमूर्ति गुरु और कृपाकांक्षी शिष्य के संबंध थे । विवेकविजय जी ने श्रीमद् के पास अध्ययन किया था, इसका वर्णन करते हुए कवियण कहते हैं ।

'तपगच्छ माहे विनीत विचक्षण श्री विवेकविजय मुनीद्र ।
भणवा उद्यम करता विनयी घणु, उद्यमे भणावे देवचन्द्र ॥
गुरुसदृश मन जाणे 'विवेकजी' खिदमत मे निसदिन्न ।
विनयादिक गुण श्री गुरु देखीने, विवेकजी उपर मन्न ॥

धन्य है, उन विद्यादाता गुरु को और धन्य है उन भाग्यशाली मुनिवरो को जिन्होने गच्छ भेद को नगण्यकर श्रुतदेवी के सच्चे उपासक होने का परिचय दिया । श्रीमद् का यह अपूर्व विद्यादान यदि इतिहास में स्वर्णाक्षरो से लिखा जाये तो ज्ञानसमर्पित उन मुनिवरों का नामोल्लेख भी उतने ही आदरपूर्वक होना चाहिये,

जिन्होने धर्मसागरजी द्वारा फैलाये हुए विद्वेष के वातावरण मे भी निर्भय होकर आपके पास अध्ययन किया। इतना ही नही उस प्रसग को अविस्मरणीय बनाने के लिये बडे आदरपूर्वक अपनी कृतियो मे उसका उल्लेखकर एक महान् आदर्श प्रस्तुत किया।

आपका ज्ञानदान साधुओ तक ही सीमित नही था। वे आत्मार्थी गृहस्थो को भी ज्ञानदान देने मे सदा तत्पर रहते थे। अहमदाबाद मे पूजाशा नामक एक सद्गृहस्थ थे। श्रीमद् उन्हे बडे प्रेमपूर्वक शास्त्राभ्यास करवाते थे। बाद मे इन्ही पूजाशा ने जिनविजयजी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। धन्य है, उन निस्पृह शिरोमणि सन्त को जिन्होने प्रेम से विद्यादान तो दिया किन्तु कभी भी किसी को अपना शिष्य बनने की प्रेरणा नही दी। यह कोई सामान्यबात नही है। शिष्य परिवार बढाने के लिये क्या नही किया जाता है। किन्तु सच्चे आत्मार्थी तो पुत्र-पुत्री की तरह उनका भी मोह त्यागते है। सच्चा मार्ग अवश्य दिखा देते हैं। श्रीमद् की निस्पृहता आज के लिये महान् आदर्शरूप है।

इसके अलावा लीबडी निवासी शाह डोसा बोहरा, शाह धारसी जयचन्दजी को भी आपने अध्ययन करवाया था। इतना ही नही ज्ञानाभिलाषियो की सुविधा के लिये तत्वज्ञान की गूढबातो को बडी सरल भाषा और शैली मे रचकर सर्वयोग्य बनाने का प्रयत्न किया था। आगमसार, विचाररत्नसार, ध्यानदीपिका चतुष्पदी, अष्टप्रवचनमाता, पचभावना आदि की सज्झाये इसी का उदाहरण है।

उदार एवं समभावी श्रीमद्—

जैन धर्म के अनेकान्त सिद्धान्त के अनुसार आपकी दृष्टि बहुमुखी एव विशाल थी। सकीर्णता एव हठाग्रह से आप सदा दूर ही रहे। आप बड़े उदारचेता

और गुणग्राही थे। आपने श्वेताम्बर ग्रन्थो के साथ साथ दिगम्बर ग्रथो का भी अध्ययन किया। विद्वान दिगम्बर आचार्यों की स्तुतियाँ की। अन्य गच्छ के आचार्यों व मुनियो के भी स्वरचित ग्रथो मे गुणगान गाए, उनकी स्तुतिया बनाई।

श्रीमद् खरतरगच्छ के थे। वे खरतर गच्छ की समाचारी की पालना करते थे पर आप सभी गच्छवालो का आदर और सम्मान करते थे। आपने अपने रचित ग्रथों में कभी भी अन्य गच्छो का निंदा या आलोचना नही की। यद्यपि उस समय तपगच्छ के मुनि धर्म सागरजी [1] द्वारा लिखित ग्रथ (जिसमे सभी गच्छो की कटु आलोचना व निन्दा की गई थी) के कारण सभी गच्छों मे रोप व आक्रोप का उभार

१–पाटन मे तपगच्छ के महान् आचार्य विजयदान सूरिजी व आचार्य श्री विजय हीरसूरि सहित सभी गच्छ के आचार्यो ने मिल कर मुनि धर्म सागरजी को उनके इस मिथ्या प्रलापी, कलहपूर्ण घासलेटी रचना के कारण संघ से बाहर कर दिया था। साथ ही उनके इस ग्रथ को सर्व सम्मति से जल शरण करने का ठहराव किया और भविष्य मे इस ग्रथ को कोई प्रकाश मे न लाए ऐसा स्पष्ट निर्देश दिया।

हमें लिखते हुए अत्यन्त खेद होता है कि जिन समयज्ञ व गीतार्थ महापुरूषो ने सर्व सम्मति से धर्म सागरजी रचित ग्रन्थ को जल शरण किया था। आज उस समय कही छिपाकर रखे गये उसी ग्रथ का सहारा लेकर कुछ कलह प्रिय नाम धारी साधु उसके कुछ अशो का यदा–कदा प्रकाशित करने की कुचेष्टा करते है। निस्सदेह यह उन गीतार्थ पुरूषो का अपमान व अनादर है। साथ ही यह उनके सकुचित व ओछे विचारो का परिचायक है।

आया हुआ था, घर घर मे विद्वेष पूर्ण एव कटुता युक्त वातावरण छाया हुआ था तथापि इतना सब कुछ होते हुए भी श्रीमद् ने अपने रचित ग्रथो मे एक भी शब्द किसी भी गच्छ के विरुद्ध नही लिखा और नही कुछ बोले जबकि स्वय तपगच्छ के ही यशोविजयजी उपाध्याय ने धर्म सागराश्रित आगम विरुद्ध अष्टोत्तर शत बोल संग्रह, धर्म परीक्षा व उसकी टीका तथा प्रतिमा शतक मे धर्म सागरजी की मान्यताओ का खुलकर खडन किया है।

जहाँ धर्मसागरजी अन्यगच्छो द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओ को अपूज्य ठहराते थे, वहा ये आत्मज्ञानी महापुरुष अन्यगच्छो के आचार्यों एवं मुनिवरों की स्तवना करते हुए उनकी रचनाओं का अनुवाद करते है। उपाध्याय यशोविजयजी कृत 'ज्ञानसार ग्रन्थ' पर आपकी 'ज्ञानमजरी' टीका एवं देवेन्द्रसूरिकृत कर्मग्रन्थों पर आपका टव्वा इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

गच्छवाद तो दूर रहा, किन्तु वे श्वेताम्बर-दिगम्बर के भेदभाव से भी दूर थे। जैसे उन्होने हरिभद्रसूरिजी एव यशोविजयजी आदि श्वेताम्बर आचार्यों के ग्रन्थो का अध्ययन किया, वैसे गोम्मटसारादि दिगम्बरीय ग्रन्थो का भी आदरपूर्वक अध्ययन किया।

इतना ही नही आपने दिगम्बरीय शुभचन्द्रजीकृत ज्ञानार्णव के आधार पर 'ध्यानदीपिकाचतुष्पदी' ग्रन्थ की महत्वपूर्ण रचना की। इस ग्रन्थ मे आपने कई दिगम्बराचार्यो की भाव-पूर्वक स्तुतियाँ की हैं। वस्तुतः इसी उदारदृष्टि के कारण आप सभी गच्छवालो के पूज्य हैं।

इन सब बातो से सिद्ध होता है कि श्रीमद् उच्चकोटि के आध्यात्मिक महापुरुष थे। 'खरतरगच्छजिनआणारंगी' इत्यादि शब्दो से अपने गच्छ की समाचारी को आगमानुसारी कहते हुए भी आपने दूसरो की कभी निन्दा नही की।

आपके ग्रन्थ समभाव, सम्यकत्व, श्रद्धा को मजबूत करते हुए शुद्ध आत्मदशा का भान कराते है। यही कारण है कि श्रीमद् अपने सद् विचारो के कारण सर्वत्र व्याप्त है।

श्रीमद् की महान् आध्यात्मिकता का एक प्रमाण यह भी है कि तथाकथित अध्यात्मवादियो की तरह उन्होने अमुक क्रिया या मान्यता में ही मुक्ति नही मानी। मुक्ति के लिये हमेशा 'समभाव' की आवश्यकता पर बल दिया। ऐसे महात्मा यदि सभी जैनों के प्रिय बने, तो कोई आश्चर्य नही है।

उनके ग्रन्थ का एक एक शब्द उनकी आध्यात्मिकता, उदारता, उच्चआत्म-दशा एव योगनिष्ठा का साक्षी है। शुद्ध आत्मज्ञान के विषय मे इतने सारे ग्रन्थो के रूप मे जैनसमाज को जो अमूल्य भेट आपने दी, उसके लिये समाज सदा-सर्वदा आपका ऋणी रहेगा।

पुण्य प्रभाव—

धम्मो मगल मुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो।
देवावि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो॥

जिस के हृदय में अहिंसा सयम और तप रूप धर्म की वास्तविक प्रतिष्ठा हो जाती है उनके सामने स्वय देवता झुक जाते है। उनकी वाणी मे, उनके वर्त्तन में स्वय चमत्कार (Miracles) प्रगट हो जाते हैं। सतत आत्म साधना के फलस्वरूप उनके जीवन मे स्वत कुछ अलौकिक शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं। श्रीमद् के जीवन में भी उनके उत्कृष्ट त्याग, सयम, ब्रह्मचर्य एवं सतत आत्म-साधना के पुण्य प्रभाव से कुछ अलौकिक शक्तियाँ, असाधारण साहस एवं अपूर्व वैराग्यभाव प्रकट हो गया था। साधारण लोगो की भाषा मे भले उन्हे चमत्कार मानले, किन्तु वास्तव मे वे उनकी उच्च आत्मदशा के ही पुण्यप्रभाव सूचक हैं।

१–सयम लेने के बाद लघुवय मे ही आपके उच्च आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ हो गया था। एक दिन का प्रसग है कि श्रीमद् कायोत्सर्ग-ध्यान मे लीन थे और एक साँप आपके शरीर पर चढने लगा। साथी मुनिराज घबराने लगे किन्तु आप जरा भी विचलित नही हुए। जब काउस्सग्ग पूर्ण हुआ, सर्प शरीर पर से उतरकर सामने बैठ गया। आपने उसे बडे मधुर शब्दो मे 'समभाव' का उपदेश दिया। साँप ने भी अपने फणो का इस प्रकार हिलाया कि मानो समतारस के पान से झूम उठा हो। यह घटना श्रीमद् की सच्ची निर्भयदशा की सूचक है।

२–आप पजाब मे विचरण कर रहे थे। एक दिन की बात है कि आपको पर्वत के निकटवर्ती रास्ते से गुजरना था। किन्तु उस रास्ते पर सिंह का बडा आतंक था, अतः लोगो ने आपको उधर जाने से रोका। किन्तु आप कब रुकने वाले थे। आप तो सर्व मैत्री की मगलभावना को लेकर निर्भयतापूर्वक आगे बढते ही गये। जैसे ही आप सिंह के नजदीक पहुँचे कि वह गुर्रा कर उठा किन्तु श्रीमद् की नजर से नजर मिलते ही एकदम शान्त हो गया। लोगो के समझ मे आ गया कि 'अहिंसाया प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' यह सत्य है।

३–सवत् १७८८ मे राजनगर (अहमदाबाद) मे, महामारी का भयकर उपद्रव हुआ था। प्रतिदिन सैकड़ो लोग मर रहे थे। सूबेदार रत्नसिहजी भण्डारी एव महाजनो से नही रहा गया उन्होने उसे शान्त करने की आपसे वीनती की। आपने भी लाभ जानकर अपनी आत्मिक शक्ति से उस उपद्रव को शान्त किया।

४–संवत् १७९३ में मराठा सरदार दामजी के सेनापति रणकूजी ने विशाल-सैन्य के साथ अचानक गुजरात पर आक्रमण कर दिया। इससे भण्डारीजी को बडी चिन्ता हुई। उन्होने अपनी चिन्ता श्रीमद् के सामने व्यक्त की। श्रीमद् ने मन्त्रपूत वासक्षेप पूर्वक भण्डारी जी को शुभाशीर्वाद दिया। फलत अल्पसैन्य होते हुए भी भडारीजी युद्ध मे विजयी बने।

५–जामनगर में एक जैन मन्दिर को मुसलमानो ने जबर्दस्ती से मस्जिद बना लिया था। मूर्तियो को अवसरज्ञ श्रावकों ने समयसर भूमिस्थ कर दिया था। मुसलमानो का जोर हटने पर श्रावको ने राजा से मन्दिर पुन उन्हे दिलवाने की प्रार्थना की किन्तु कोई परिणाम नही निकला। सौभाग्य से आप वहाँ पधार गये। श्रावको ने श्रीमद् के सामने यह चर्चा की। श्रीमद् ने वहाँ के राजा से कहा किन्तु बिना चमत्कार कोई नमस्कार नही करता। राजा ने शर्त रखी कि मन्दिर के ताला लगा दिया जायगा। जिसके इष्ट के नाम के प्रभाव से ताला खुल जायगा, उसी को यह मिल जायगा। पहिला मौका मुसलमान फकीरो को दिया गया, किन्तु ताला नही खुला। अन्त मे जब श्रीमद् की बारी आई और उन्होने ज्यो ही परमात्मा की स्तुति बोली कि ताला झट मे टूट कर गिर गया। सर्वत्र जैनधर्म एव श्रीमद् की महती प्रशंसा हुई। आत्मा की अनतशक्ति को जागृत करने वाले महापुरुष क्या नही कर सकते ?

६–योगनिष्ठ आचार्य श्री बुद्धिसागर सूरिजी ने 'श्रीमद् देवचन्द्र भाग–२ की प्रस्तावना में लिखा है कि एकदा राजस्थान मे सघ-जीमरण के प्रसग मे, गौतमस्वामी के ध्यान के प्रभाव से आपने एक हजार व्यक्तियो की रसाई मे आठ हजार व्यक्तियो को खाना खिलाया था।

वस्तुतः सयमी महात्मा जादूगरो की तरह अपनी शक्तियो का जहाँ तहा प्रदर्शन नही करते न उन्हे उन शक्तियो का कोई मोह ही होता है। शुद्धात्मदशा के सिवाय जगत् की सारी वस्तुये उनके लिये तुच्छ है। करुणा भावना से प्रेरित हो सघ शासन के लाभ के लिये कभी कभी वे अपनी शक्तियो का परिचय दे देते है। अन्यथा नही।

उपाध्यायपद और स्वर्गवास

सवत् १८१२ (गुजराती म० १८१२) मे आप राजनगर पधारे। आपकी विद्वता, सयमशीलता एव प्रभावकता आदि गुणो से आकर्षित हो गच्छनायक श्री जिनलाभसुरिजी ने आपको वहुमानपूर्वक 'उपाध्यायपद' दिया।

वस्तुत श्रीमद् जैसे ज्ञान-सर्मपित, ज्ञानरसलीन महापुरुषो के कारण ही उपाध्यायपद की गरिमा अक्षुण्ण है। वहां के श्रावकों ने बडे ठाट से आपका पद महोत्सव किया। इस वर्ष का आपका चातुर्मास संघ के आग्रह से अहमदावाद में ही हुआ। आप दोसीवाड़ा की पोल मे विराजे थे। आपकी भव्य देशना सुनकर सैकडो लोग धर्मप्रेमी एव अध्यात्मप्रेमी वने थे।

श्रीमद् केवल वाचिक आत्मज्ञानी नही थे, किन्तु शास्त्राध्ययन, परमात्म-भक्ति, गुरुसेवा एव उत्कृष्ट संयमपालन द्वारा उनमे आत्मज्ञान की परिणति हुई थी। विषयराग विल्कुल खत्म हो गया था। फलत. उन्हे साधुदशा के सच्चे आनन्द का अनुभव हुआ था। वे केवल शुष्कज्ञानी ही नही थे किन्तु ज्ञान और क्रिया के अद्भुत सगम थे। शुद्धज्ञान और निश्चयानुलक्षी व्यवहार द्वारा अन्तर और वाह्यजीवन दोनो का पूर्ण विकास करते हुए उन्होने अपने आपको कृतकृत्य बनाया था। उनके जीवन मे किसी भी प्रकार का कदाग्रह नही था, बस 'सच्चा सो मेरा' यही आपका जीवन-सूत्र था। यही कारण था कि स्वगच्छ और परगच्छ दोनो मे आपका असीम आदर और सम्मान था। आज भी आपके ग्रंथों को अध्यात्मप्रेमी आत्मा बडे आदर और प्रेम से पढते है, उनका चिन्तन और मनन करते है। ऐसे महापुरुषो की सघ, शासन और समाज को सदा ही आवश्यकता हैं।

एक दिन अचानक आपके शरीर में वायु का प्रकोप हो गया। वमन वगैरह होने लगे। धीरे धीरे व्याधि बढती गई। किन्तु शुद्धोपयोग मे रमण करने वाले उन महापुरुष को मानसिक कोई असमाधि नही थी। 'सर्वअनित्यम्' का निरन्तर चिन्तन करने वाले उन आत्मज्ञानी सन्त को शरीर का मोह या मृत्यु का भय लेशमात्र भी नही था। जिसने अपने जीवन के पचपन पचपन वर्ष, ज्ञानोपयोग, आत्मध्यान, चारित्रपालन देव-गुरु की भक्ति एव आत्मसमाधि मे विताये हों उनका समाधिमरण हो इसमे कोई आश्चर्य नही। श्रीमद् को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था अतः सर्व संग-परिग्रह एव वाह्य प्रवृत्तिओं का सर्वथा त्यागकर आत्मध्यान में मग्न हो गये—

अरिहते शरण पवज्जामि ... .
सिद्धे शरण पवज्जामि ....
साहू शरण पवज्जामि . .. ...
केवलोपन्नत्त धम्म शरणं पवज्जामि.. ....

इन चार-शरण को स्वीकार करते हुए जगत् जीवो के साथ भावपूर्वक क्षमा-याचना करते हुए सवत् १८१२ (गुजराती संवत् १८११) की भादवा वदी ३० की रात मे समाधिपूर्वक इस नश्वर शरीर का त्याग कर सद्गति के भागी बने। आपके स्वर्गवास के समाचार सुनकर देशभर की जैन समाज को वडा दुख हुआ किन्तु "जन्म के साथ मृत्यु लगी हुई है" यह सोचकर सभी को शान्ति रखनी पडी।

सभी गच्छ के श्रावको ने मिलकर बड उत्सवपूर्वक किन्तु दुखी हृदय से आपके पवित्र देह का अग्नि सस्कार किया जैसा कि कवियण ने कहा है—

मोटे आडम्बरे मांडवी, चौरासी गच्छ ना हो श्रावक मल्या वृन्द।
अगरचद ने काष्ठेभलो, चिता रचिता हो महाजन मुखक्रंद॥

श्रीमद् के प्रत्यक्ष दर्शन एव उनके पवित्र चरणो के स्पर्श का सौभाग्य क्रूरकाल ने छीन लिया था अत श्रावक सघ ने अपनी सान्त्वना एवं गुरुभक्ति के लिये एक स्तूप बनाकर प्रतीकरूप आपकी चरणपादुकाओ की उसमें स्थापना की थी।

अभी यह चरण पादुका अहमदाबाद के हरीपुरे के मन्दिर के सामने उपाश्रय के मकान में है। उस पर यह लेख है।

'श्री जिनचन्द्रसूरिशाखायां खरतरगच्छे सवत् १८१२ वर्षे माह वदी ६ दिने उपाध्याय श्री दीपचन्द्रजी शिष्य उपाध्याय श्री देवचन्द्रजीनां पादुके प्रतिष्ठिते।"

श्रीमद् ने अन्तिम समय अपने शिष्यों को जो उपदेश दिया वह मार्मिक होने के साथ ही इस बात का परिचायक है कि—वे निरे अध्यात्मिक ही नही थे किन्तु अपने आश्रितों के प्रति उन्हें अपने गुरुपद का पूर्ण कर्त्तव्यबोध भी था।

'पग प्रमाणे सोडि ताणज्यो, श्री संघनी हो धरज्यो तमे आण।
वहिज्यो सूरिजी नी आज्ञा, सूत्र शास्त्रे हो तुमे धरज्यो ज्ञान॥

अपने आश्रितो के भावी के प्रति वे कितने जागरूक थे। इन पक्तियो के चिन्तन और मनन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आप संघ और गुरु दोनो की आज्ञा को बडा महत्व देते थे। जहाँ आपने शिष्यो को शास्त्राज्ञा के वफादार रहने की बात कही वहाँ देश, काल और भाव को भी महत्व देने की शिक्षा दी।

अपने शिष्य प्रशिष्य परिवार के संयम जीवन के निर्वाह का उत्तरदायित्व अपने बडे एवं सुयोग्य शिष्य मनरूपजी को सौंपते हुए आपने जो हृदयस्पर्शी वात्सल्यपूर्ण उद्गार निकाले वे अत्यन्त श्लाघनीय हैं—

"तुम समरथ छो मुझ पूठे, मुझ चिंता हो नास्ति लवलेश।
सपरिवार ए ताहरे खोले छे, हो मूक्या सुविशेष ।।

सकल शिष्य भेला करी, गुरुजीये हो सहुने थाप्यो हाथ।
प्रयाण अवस्था अम तणी, वाणी केहवी हो जेहवो गंगापाथ ।।

यदि आज का साधु समुदाय श्रीमद् के अन्तिम उपदेश की ओर जरा भी ध्यान दे तो आज सघ व शासन में अहंभाव और ममत्वभाव का जो विप घुल रहा है, वह घुलना बन्द हो जाय और सवत्र समभाव प्रतिष्ठित हो जाय।

श्रीमद् का शिष्य–परिवार :—

आत्मज्ञानी सतो को शिष्यो का भी मोह नही होता। उनको दशा के योग्य कोई आत्मा मिल जाय तो वे उसकी संयम-साधना मे अवश्य सहायक बन जाते है।

श्रीमद् के मनरूपजी और विजयचन्दजी नामक दो शिष्य थे। दोनों ही सुयोग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य थे। मनरूपजी वड़े ही विद्वान विचक्षण एवं सयमी थे। विजयचन्द्रजो तार्किक एव वादीविजेता थे।

मनरूपजी के वक्तुजा और गमचन्द्रजी तथा विजयचन्द्रजी के रूपचन्द्रजो एवं सभाचन्दजी नामक दो-दो शिष्य थे।

मनरूपजी तो श्रीमद् के स्वर्गवास के थोडे दिन बाद ही स्वर्गवासी हो गये थे। मानो गुरुभक्त शिष्य अपने गुरु के वियोग को अधिक दिन तक सह न पाये हों, और शीघ्र ही गुरु से मिलने चले गये हो। मनरूपजी के पीछे उनके द्वितीय शिष्य रायचन्द्रजी भी अच्छे वक्ता और संयमो थे इससे अधिक आपके शिष्य–परिवार के विपय में कोई वर्णन नही मिलता।

हाँ, श्रीमद् के द्वारा प्रतिबोधित श्रावक-शिष्यो की सख्या अवश्य विपुल रही होगी, यह उनके ग्रन्थो के निर्माण, प्रचार, सरक्षण, सघ प्रतिष्ठादि कार्यों से स्पष्ट है। आपके भक्त श्रावको ने आपके द्वारा रचित 'अध्यात्मगीता' को 'स्वर्णाक्षरो' में लिखाया था। आपके भक्त श्रावको में कई श्रावक सिद्धातो के ज्ञाता श्रोता एव अध्यात्मप्रेमी थे।

+ + +

साहित्य-सृजन :—

श्रीमद् केवल विद्वान ही नही थे, किन्तु सफल साहित्य सृष्टा भी थे अनेक विषयो का पहिले उन्होंने स्वय गम्भीर अध्ययन किया, बाद मे स्वतत्र-चिन्तन-मनन द्वारा उन विचारो को चिरजीवी अक्षर देह देकर सवभोग्य बनाया। आपके द्वारा रचित प्रसिद्ध एव अप्रसिद्ध कृतियो की सख्या विशाल है। आपने गद्य और पद्य दोनो में लिखा। भाषा की दृष्टि से सस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी एवं गुजराती मे लिखा। कही कही व्रजभाषा व मराठी का पुट भी उल्लेखनीय है। गद्य और पद्य विभाजन के अनुसार आपकी कृतियां निम्न हैं।

गद्य-कृतियाँ

१. आगमसार—

यह ग्रन्थ जैनागमो का दोहन रूप (निचोड) है। जैन दशन के मुख्य मुख्य तत्वो को चुनकर इस ग्रन्थ मे उनका सरल एव स्पष्टभाषा मे रहस्योद्घाटन किया है। षड्द्रव्य, आठपक्ष, सातनय, चारनिक्षेप, चार प्रमाण, सप्तभंगी, गुणस्थानक इत्यादि १७ विषयो पर बड़ी गभीरता से इसमे विचार किया है। यह ग्रन्थ जैन

समाज में अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध है। इसकी महत्ता को जानने के लिये इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि—स्वर्गीय योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरि जी ने दीक्षा लेने से पहिले सौबार इस ग्रन्थ का अध्ययन किया था।

प्राचीन प्रतियो के अनुसार प्रतिमा-पूजा, पुष्पपूजासिद्धि, गुणस्थानक स्वरूप और पापस्थानकस्वरूप ये चार विषय आगमसार के ही अन्तर्गत है। प्रतिमापूजा और पुष्पपूजा को आगमों के पाठ देकर सिद्ध किया है।

इस ग्रन्थ की रचना सवत १७७६ की फा०सु० ३ के दिन 'मरोट शहर' में की थी।

२. नयचक्रसार.—

किसी वचन को समझने के लिये प्रथम यह जानना आवश्यक है कि 'वह किस अपेक्षा से कहा गया है।' अपेक्षा को जानने के बाद ही हम उस कथन को सही रूप मे समझ सकते हैं। यह कार्य नय का है। नयज्ञान के द्वारा षड्दर्शन के परस्पर विरोधी मन्तव्यो को भी अपेक्षाभेद मे सत्य समझने की दृष्टि प्राप्त होती हैं। दार्शनिक भूमिका पर विरोधी विचारों के बीच समन्वय और समभाव रखते हुए सत्य की सर्वोच्च भूमिका पर बुद्धि को पहुचाने का कार्य नयों का है। अतः नयो का ज्ञान अत्यावश्यक है। इस ग्रन्थ मे श्रीमद् ने नयो के स्वरूप को यथाशक्य सरलता से समझाने का प्रयत्न किया है। इस ग्रन्थ की रचना आपने श्री मल्लवादीकृत 'द्वादशसारनयचक्र' के आधार पर की है। जैसा कि 'नयचक्र सार' के उपसंहार मे आपने स्वय कहा है।

"द्वादशसारनयचक्र' छे, मल्लवादीकृत वृद्ध,
सप्तशती नयवाचना, कीधी तिहा प्रसिद्ध।

अल्पमतिना चित्त में, नावे ते विस्तार ।
मुख्य स्थूल नयभेदनो, भाख्यो अल्प विचार ।।"

श्रीमद् के ग्रन्थों का अध्ययन करने मे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका ध्येय 'पांडित्य प्रदर्शन' का कभी नही रहा, किन्तु साधारण व्यक्ति भी तत्वज्ञानद्वारा अपना आत्म कल्याण कर सके यही एक तमन्ना रही। अत मल्लवादी कृत 'द्वादशमारनयचक्र' में विस्तारपूर्वक सात सौ नयो का वर्णन होते हुए भी श्रीमद् ने अपने 'नयचक्र' में अल्प बुद्धि वाले भी सरलता मे समझ सके इसके लिये नय के मुख्य मुख्य भेदों पर ही विचार किया है। इसके अलावा इस ग्रन्थ मे गुणस्थानगत जीवो के भेद, द्रव्यगुण पर्यायलक्षण, पंचास्तिकाय का स्वरूप, सप्तभगी, सामान्य-विशेष स्वभाव के लक्षण आदि विषयो का भी अच्छा वर्णन है।

३. विचारसार-टीका:--

'विचारसार' मूल ग्रंथ प्राकृत गाथा बद्ध है। इस ग्रन्थ के दो भाग हैं–

(१) गुणस्थानाधिकार और (२) मार्गणाधिकार।

(१) गुणस्थानाधिकार--यह एक सौ सात श्लोक में पूर्ण होता है। इस अधिकार में गुणस्थानो के सम्बध में छियानवे (९६) द्वारों की अवतारणा करते हुए, बंधस्थान, उदयस्थान, उदीरणास्थान, मूलबंध, उत्तर-बध, योग, उपयोग, लेश्या, भाव, समुद्घात ध्यान, जीवयोनि, कुलकोटि, आश्रव, संवर, निर्जरा आदि का सचोट शास्त्रीय एवं विशद वर्णन किया है।

मार्गणाधिकार—यह दो सौ तेरह श्लोको मे पूर्ण है। इस अधिकार मे बासठ मार्गणास्थानों का वर्णन करते हुए उनमे बध उदय उदीरणा आदि द्वारों की

सांगोपांग रचना की है। साथ ही कर्मप्रकृतियों के बधादि-भागो की विधि एवं भागों का विस्तृत वर्णन है।

पूरे ग्रन्थ पर उन्होने स्वयं संस्कृत मे सुन्दर एव सुबोध टीका लिखी है। यह ग्रन्थ भगवती, प्रज्ञापना, कम्मपयडी, भाष्य, जिनवल्लभ सूरि कृत कर्मग्रन्थ एवं देवेन्द्रसूरिकृत कर्मग्रन्थ मे आये हुए तत् तत् संबंधी सभी विषयो का एक स्थानीय संग्रह है। टीका में स्थान स्थान पर दिये गये आगम पाठ एवं भाष्य की गाथाये आपके विशद आगमज्ञान की परिचायक है। व्यावहारिक दृष्टान्त एवं यन्त्रादि देकर इस ग्रन्थ को सरल से सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। मार्गणाधिकार के २०६ श्लोक की टीका मे श्रीमद् ने भगवान् महावीर मे लेकर अपने गुरू तक की परम्परा का सक्षेप में वर्णन दिया है। इस ग्रन्थ की पूर्णता स वत् १७६६ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को जामनगर मे हुई। इस ग्रन्थ का निर्माण राधनपुरवासी श्राद्धवर्य शातिदास की प्रार्थना से हुआ। कर्मसाहित्य के अभ्यासियो को सटीक इस ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिये। क्योंकि इससे सरलता मे विशद बोध हो सकता है जैसा कि श्रीमद् ने स्वयं इसके अन्त में कहा है।

जिणसामणसमयन्नू, भवति गुणगाहिणो य सव्वंमि
ते अ पढति सुणंति अ, लंभति नाणलद्धीओ ॥२११॥

अन्त मे स्वाध्याय से परंपरया मोक्ष फल की सिद्धि बताते हुए 'तत्त्वज्ञान का बार बार अभ्यास करना चाहिये इस प्रेरणा के साथ आपने ग्रन्थ–टीका का समापन किया है।

यद्यपि श्रीमद् के सभी ग्रन्थ तत्त्वज्ञान मे भरपूर हैं तथापि आगमसार नयचक्रसार और विचारसार–ये तीन ग्रन्थ तो तत्त्वज्ञान के उत्कृष्ट नमूने हैं। इन ग्रन्थों का गभीरता से अध्ययन करने वाला सुगमता से आगमो मे प्रवेश कर सकता

है। वैसे तो ज्ञानसागर का कोई पार नहीं है, किन्तु उसमें प्रवेश पाने के लिये ये तीन ग्रन्थ अति उपयोगी है।

४. विचाररत्नसार.–

यह ग्रन्थ "यथानाम तथा गुण" है। इस ग्रन्थ में ३२२ प्रश्नोत्तरों के रूप मे अमूल्य विचार-रत्नो का सग्रह है। प्रश्नों के उत्तर यथाशक्य सरल, शास्त्रीय एव अनुभव ज्ञान से भरपूर हैं। खडन–मडन के उस युग मे गच्छीय मान्यताओं के विवाद–ग्रस्त प्रश्नोत्तरों से दूर रहकर विशुद्ध आत्मज्ञान और तत्व ज्ञान संबंधी साहित्य की रचना, श्रीमद् की महान् अध्यात्मनिष्ठा एव उच्च मनोवृति की सूचक है।

प्राकृत-संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी इस ग्रन्थ की भाषा मे रचना, जन साधारण के लिये आपकी हितदृष्टि की परिचायक है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का अध्ययन करने वाला तत्वज्ञानी महासागर के अमूल्य रत्नो का कुछ भागी अवश्य बनता है।

५. छूटक प्रश्नोत्तर––

विचार रत्नसार मे तो श्रीमद् ने स्वय ही प्रश्न उठाकर उसका उत्तर दिया है। किन्तु इस ग्रन्थ में, राधनपुर, थराद् एवं जामनगर के भसाली आदि तत्वजिज्ञासु श्रावको द्वारा पूछे गये प्रश्नो के उत्तर हैं। ये प्रश्नोत्तर विस्तृत एव स्थान स्थान पर शास्त्रीय पाठों और साक्षियो से भरपूर है।

दोनो ही 'प्रश्नोत्तर' आगम ज्योतिष, परपरा, एवं विधि, आदि अनेक विषयो से संबधित हैं।

६. ज्ञान मंजरी––

यह सत्तरहवी सदी के प्रकाण्ड विद्वान् उपाध्याय श्री यशोविजयजी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ पर ज्ञानसार पर श्रीमद् द्वारा रचित संस्कृत भाषामय अपूर्व टीका है।

यदि ज्ञानसार उपाध्याय यशोविजयजी के प्रौढ आध्यात्मिक ज्ञानरस का अमृतकुण्ड है तो ज्ञानमंजरी उपाध्याय देवचन्द्रजी के परिपक्व आध्यात्मिक जीवनरस की वहती हुई सरिता है। ज्ञानसार और ज्ञानमंजरी का सुमेल वस्तुत सोने मे सुगन्ध जैसा है ज्ञानसार पर टीका रचकर श्रीमद् ने वास्तव में ग्रन्थ की महत्ता एव उपयोगिता को बढ़ाया है। टीका सर्वत्र उपाध्यायजी के भावों का अनुगमन करती हैं। कही कही श्रीमद् ने अपने स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा उनके भावो को पुष्ट करने का भी प्रयास किया है। जहाँ, तहाँ प्रयुक्त विषयसबंध सूक्तियाँ एवं दृष्टान्त विषय को और अधिक स्पष्ट कर देते हैं। ज्ञानसार और ज्ञनमंजरी को पढ़ते पढ़ते जो आत्मिक आनन्द का अनुभव होता है वह अवर्णनीय है। शाब्दिक अलंकरण की अपेक्षा इसका भाव बडा गंभीर है। अत: ज्ञानसारग्रन्थ की गहराई तक पहुँचने के लिये इसका अभ्यास, अवश्य करना चाहिये। इसका रचना जामनगर में संवत् १७९६ की का० सु० ५ को हुई थी।

७. कर्मग्रन्थ-स्तबक--

कर्म के सबंध में जिस सूक्ष्मता से जैन दर्शन में विचार किया गया वैसा अन्य किसी भी दर्शन में नही हुआ। श्वेतांबर और दिगम्बर दानो ही परम्परा में इस विषय पर विपुल साहित्य लिखा गया है। साधारण लोग भी कर्म फिलोसॉफी के विषय मे कुछ समझे इसके लिये सरल से सरल तरीके अपनाये गए। श्रीमद् ने भी यह बात ध्यान मे रखते हुए श्री देवेन्द्रसूरिकृत पांचों कर्मग्रन्थ (प्राकृत में हैं) पर भाषा में एक सरल टबा लिखा है।

८. गुरुगुणषट्त्रिंशिका स्तबक--

गुरु अर्थात् आचार्य, वे सामान्यतया छत्तीसगुण युक्त होते है। इन्ही छत्तीस गुणो को छत्तीस तरह से इस ग्रन्थ में बताया है। मूलग्रन्थ (प्राकृतगाथाबद्ध) श्री वज्रस्वामी के प्रशिष्य एवं वज्रसेनसूरि के शिष्य द्वारा निर्मित है। इस पर

श्रीमद् ने वर्णनात्मक सुन्दर टबा लिखा है। गुरु के लिये कितनी योग्यता आवश्यक है, इसका पूरा-पूरा खयाल इस छोटे से ग्रन्थ से हो जाता है। अत. गुरुपद लेने से पहिले जिज्ञासु आत्मा को एकबार यह ग्रन्थ अवश्य पढना चाहिये।

९. तीनपत्र–

ये तीनो पत्र सूरत की भाग्यशाली श्राविकाये जानकीबाई तथा हरखबाई को लिखे गये हैं। उस समय की स्त्रियां भी द्रव्यानुयोग जैसे गहन विषय में कितना रस लेती थी—ये पत्र उसकी साक्षी हैं। आज जैन समाज तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में कितना पिछड़ा है यह दो सदी पूर्व श्रीमद् द्वारा लिखे गये इन पत्रों को पढने से मालूम होता है।

१०. चौबीसी बालावबोध–

श्रीमद् की अपनी चौबीसी पर ही यह बालावबोध है। इसमे स्तनो की मूल-भावनाओ को विस्तृत रूप से विवेचित किया है। श्रीमद् ने चौबीसी पर स्वयं बालावबोध लिखकर अनुवादकर्त्ताओ के लिये सुगमता कर दी है।

११. बाहुजिनस्तवन टबा--

'विहरमान-जिन स्तवन' मे से तृतीय बाहुजिनस्तवन पर श्रीमद् का स्वकृत टबा है। वीसी के एक ही स्तवन पर आपने टबा लिखा या सब पर लिखा इस विषय की कोई निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं है।

श्रीमद् के प्रसिद्ध गद्य-ग्रन्थों पर चर्चा करने के पश्चात् अब उनके कुछ मुख्य मुख्य पद्य ग्रन्थों पर भी थोड़ा विचार करले।

श्रीमद् की पद्य कृतियाँ--

गद्यकृतियों की अपेक्षा श्रीमद् की पद्य कृतियाँ विशाल संख्या मे है। आपने पद्य मे लम्बे काव्यों से लेकर संख्यावद्ध छोटे-छोटे गीतिकाव्यो तक की रचना भी की है।

अध्यात्म गीता--

'आत्मा' और 'उसकी मुक्ति'--ये जैन दर्शन के तात्त्विक विवेचन के दो मुख्य मुद्दे है। सारा विवेचन इन्ही दो के स्वरूप, साधन, शुद्धता एव अशुद्धता के इर्द-गिर्द घूमता है। प्रस्तुत 'अध्यात्मगीता' ऐसी ही एक आध्यात्मिक रचना है। इसकी शैली दार्शनिक है। इसमे नय, निक्षेप, और प्रमाणो के द्वारा आत्मस्वरूप की विवेचना की गई है। साथ ही धर्म-अधर्म की चर्चा के साथ सत्संगप्रेरणा कर्मबन्ध क्यो और कैसे होता है का विवेचन है। कर्मवध से मुक्त होने के क्या उपाय है। इत्यादि विषयों पर भी इस ग्रन्थ मे सुन्दर विचारणा हुई है।

धर्म-अधर्म की व्याख्या करते हुए श्रीमद् ने सचमुच 'गागर में सागर' समा दिया है। 'आतमगुण-रक्षणा तेह धर्म, स्वगुण विध्वसणा ते अधर्म' जैनधर्म की साधना आत्मकेन्द्रित है। आत्मा के उपयोग के बिना चाहे कितनी भी क्रिया क्यों न की जाय, जन्म-मरण के दुखो से छुटकारा नही हो सकता। श्रीमद् के शब्दो मे—

"एम उपयोग वीर्यादि लब्धि, परभावरगी करे कर्मवृद्धि।
परदयादिक यदा सुह विकल्पे, तदा पुण्य कर्म तणो बध कल्पे।।

'आध्यात्मगीता' के भावो का उपदेशक कौन हो सकता है? इसका उत्तर देते हुए तीसरे पद्य मे आपने कहा है कि—

'जेणे आतमा शुद्धताइ पिछाण्यो, तिणे लोक अलोक नो भाव जाण्यो।
आतम-रमणी मुनि जग विदिता, उपदीसु तेण अध्यात्म गीता।।

[चौअन]

साधक को सिद्धि है कि बुज्जवै कु वुद्धि हैं की,
रजिवै को रिद्धि ज्ञान-भान को विलास है।
सजन सुहाय दुज चन्द ज्यु चढाव है कि,
उपसम भाव यामे अधिक उल्लास है।
अन्यमत सौ अफन्द वन्दत है 'देवचन्द्र',
ऐसे जैन आगम मे द्रव्य को प्रकाश है।

४. स्नात्र पूजा—

आपकी स्नात्रपूजा अखिल भारत में प्रसिद्ध है। जब आप गर्भ मे थे तब आपकी मातुश्री ने स्वप्न में देखा था कि चौसठइन्द्र मेरुपर्वत पर तीर्थंकर भगवान् का जन्माभिषेक कर रहे हैं। मानों उस दृश्य को चिरजीवी बनाने के लिये ही आंपने 'स्नात्रपूजा' की रचना नही की हो ? वस्तुत आपकी 'स्नात्रपूजा' इतनी भावपूर्ण, प्रभावोत्पादक एवं चित्रोपम है कि गाते-गाते एक के बाद एक सारा दृश्य आँखो के सामने सजीव हो उठता है और करनेवालो को लगता है कि वे साक्षात् जन्माभिषेक मे सम्मिलित हो रहे हैं।

यद्यपि श्रीमद् से पहिले भी कवि 'देपाल' ने स्नात्रपूजा (जिसमे रत्नाकरसूरि कृत आदिनाथ कलश और वच्छभण्डारी कृत पार्श्वनाथकलश सम्मिलित हैं) जयमंगलसूरि ने महावीर जन्माभिषेक कलश आदि बनाये थे, तथापि जो उच्च एव मधुर भाव-प्रवणता, श्रीमद् की पूजा मे है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

पूरण-कलश शुचि उदकनी धारा,
जिनवर अगे न्हामे।
आत्तम-निरमल भाव करंता,
वधते शुभ परिणामे।

बोलते-बोलते कर्त्ता की शुभ परिणाम धारा सचमुच बढने लगती है,

पुत्र तुम्हारो धणीय हमारो।

तारण-तरण जहाज,

मात जतन करी राखज्यो एहने।

तुम सुत अम आधार,

यह कड़ी बोलते तो रोमाच हो जाता है। हृदय ऐसे पवित्र एवं मधुर भावो से भर जाता है जो वाचातीत है। स्नात्रपूजा के अन्त में श्रीमद् ने जो कहा कि—

'बोधि-बीज अकूरो उलस्यो ..''अर्थात् इस जन्ममहोत्सव के छन्द को जो भव्यात्मा आदरेगा, उसके हृदय में बोधिबीज (समकित) प्रकट होगा। इसकी सत्यता अर्थ के विवेकसहित स्नात्रपूजा करने वाले भक्त प्रतिदिन प्रमाणित कर रहे है।

वस्तुत: श्रीमद् की स्नात्रपूजा अजोड़ और बेजोड है। इसमे भक्ति का जो अखण्डप्रवाह प्रवाहित हुआ वह इतना सघन है कि इसके बाद आज तक जो स्नात्र-पूजाएँ बनी वे आपकी पूजा की आनुवादमात्र ही प्रतीत होती है।

५. नवपदपूजा—

भक्ति के क्षेत्र मे यह तीन महापुरुषो की एक मधुर प्रसादी है। उपाध्याय यशोविजयजी द्वारा रचित श्रीपालरास के चौथे खण्ड से कुछ ढाले लेकर श्रीमद् ने उन पर उल्लाले लिखे और ज्ञानविमलसूरिजी ने काव्य लिखे इस भाँति इसका निर्माण हुआ। इस पूजा को जैन समाज मे बडा आदर मिला। महोत्सवो आदि मांगलिक प्रसगो मे इस पूजा को प्रथम स्थान दिया जाता है और बडी रुचिपूर्वक

पढाई जाती है। धर्मसागर जी की गलत प्ररूपणाओ के द्वारा श्वेताम्बर समाज में वैमनस्य की जो दरार पड़ गई थी उसे सॉधने का यह एक स्तुत्य प्रयत्न था।

६. कर्मसंवेध--

यह ग्रन्थ कर्मग्रन्थ की पूर्तिरूप है। यह मागधी भाषा मे है। यह एक सो चुमोत्तर गाथामय ग्रन्थ है।

७. चौबीसी--

मस्तयोगी आनन्दघनजी की चौबीसी के बाद, तत्त्वज्ञान और भक्ति रस से पूर्ण आपकी ही चौबीसी मानी जाती है। निसन्देह आपकी चौबीसी में भक्तिरस तो खूब छलका ही है, किन्तु आपकी शैली अन्य कवियों से सर्वथा भिन्न है। मस्तयोगी आनन्दघनजी के स्तवनों में सहज भक्ति प्रवाहित हुई है। उपाध्याय यशोविजयजी की कविता में प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्राधान्य है। किन्तु आपने अपने स्तवनों मे परमात्मा के वीतराग भाव को अक्षुण्ण रखते हुए, भक्ति की दार्शनिक मीमासा की है। जैनदर्शन के अनुसार परमात्मा वीतराग है। तब उनकी भक्ति का क्या औचित्य हो सकता है। इसकी व्याख्या जिस सफलता के साथ श्रीमद् ने अपने स्तवनो मे को वह अन्यत्र दुर्लभ है। यही उनकी महान् विशेषता एव मौलिकता है।

एक-एक स्तवन एक-एक तीर्थंकर परमात्मा की स्तुतिरूप है। यह श्रीमद् की अत्यन्त लोकप्रिय कृति है। इस पर अनेक विद्वानो ने टीकाएँ लिखी हैं।

८. अतीत चौबीसी--

यह अतीत-कालीन केवल ज्ञानी आदि इकवीस तीर्थंकर भगवन्तो का स्तवना रूप इकवीस-भजनो का संग्रह है। इसमे भी भक्ति रस के साथ-साथ जैनतत्त्वज्ञान

कूट-कूट कर भरा है। चौबीस में तीन स्तबनो की कमी है। हो सकता है, इसकी पूर्णता के लिये श्रीमद् को समय न मिला हो।

६. विहरमान-जिन-वीसी–

यह सीमन्धर प्रभु आदि विहरमान बीस तीर्थंकर की स्तवना है। यह भी श्रीमद् की अत्यन्त लोकप्रिय कृति है।

श्रीमद् की ये रचनाये श्रद्धा, भक्ति एव तर्क का अपूर्व त्रिवेणी संगम है। ये स्तवन कल्पना की कोरी उड़ान मात्र ही नही हैं, किन्तु स्वानुभव की गहराई से निकले हुए लब्धि वाक्य हैं इसीलिये तो उनका एक एक शब्द हृदय पर सीधा असर करता है।

१०. वीर-निर्वाण-स्तवन–

इस स्तवन के लिये अपनी ओर से कुछ कहने के वजाय नागकुमार जी मकाती के कथन को उद्धृत कर देना ही अधिक उपयुक्त होगा "भव्य करूण रस थी टपकतु वीर विरहनु ब्यान करतु श्री वीरप्रभुनु स्तवन श्रीमद् ना सर्व काव्यों मां प्रथम उभे तेवु छे। एनी स्पर्धा करी शके तेवा बीजा काव्यो साराय गुर्जर-साहित्यमां गण्या गांठयां ज छे, ए एकज काव्य श्रीमद् ने अमरता वक्षे तेम छे।

'नाथ विहुणु सैन्य ज्यू रे, वीर विहुणो रे सघ।
साधे कुण आधारथी रे, परमानन्द अभग रे॥
वीर प्रभु सिद्ध थया॥

'मात विहुणो बाल ज्यू रे, अरहो परहो अथडाय।
वीर विहुणा जीवड़ा रे आकुल-व्याकुल थाय रे॥
वीर प्रभु सिद्ध थया॥

सुन्दर सरोदोथी गवातुं सांभली ने कोनी आखोमांथी आंसू नहि टपके ? शब्दे-शब्दे कारूण्य छवायुं छे।

११. अष्टप्रवचन माता की सज्झाय–

जैसे माता वडे प्यार से बच्चे का संरक्षण और संवर्धन करती है। वैसे पाच समिति और तीन गुप्ति के पालन से सयम का सरक्षण और सवर्धन होता है। अत ये प्रवचन-मातायें कहलाती है। इन सज्झायो में समिति-गुप्ति का स्वरूप वतलाते हुए, साधु जीवन के लिये उनका कितना महत्त्व हैं ? इसका आपने बहुत ही आकर्षक ढंग से वर्णन किया है। वर्णन इतना सटीक है कि इसको पढने से श्रीमद् के आत्मज्ञान एव चरित्र की परिपक्वता का सच्चा अनुभव हो जाता है। इन सज्झायों के रूप मे साधु-धर्म का सांगोपाग निरूपण प्रस्तुत कर दिया।

"जननी पुत्र शुभकरी, तेम ए पवयण माय।
चारित्र गुण-गण वर्द्धनी, निर्मल शिवसुख दाय।"

गुप्ति उत्सर्ग मार्ग है और समिति इसका अपवाद है। अपवाद मार्ग का सेवन किस स्थिति में और कहा तक उचित है, इसका इन सज्झायो में स्पष्ट वर्णन किया है। साधु-जीवन की शुद्धि के लिये इनका निरन्तर स्वाध्याय आवश्यक है।

१२. पंचभावना-सज्झाय—

श्रुत, सत्त्व, तप एकत्त्व और तत्त्व-ये पाचो भावनाये सयमभाव की प्रबल आधार भूमि है। श्रीमद् ने इन पांचों भावो पर सज्झाय बनाई है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सुप्त चिंतन को जगाने के लिये इसका एक-एक शब्द इन्जेक्शन का काम करता है।

श्रुत भावना का वर्णन करते हुए सर्व प्रथम "श्रुत अभ्यास करो मुनिवर सदा रे" कहकर निरन्तर ज्ञानाभ्यास की सुन्दर प्रेरणा दी है।

"पंचमकाले श्रुतबल पण घटयो रे,
तो पण ए आधार ।
'देवचन्द्रे' जिनमत नो तत्त्व ए रे,
श्रुत सूं धरज्यो प्यार ॥"

देखिये 'तप-भावना का भावपूर्ण वर्णन—

"जिण साहू तप तलवारथी, सूडयो छे हो अरि मोह गयंद ।
तिण साधु नो हूँ दास छुं, नित्य वदु रे तसपय अरविंद ॥"

"धन्य तेह जे धन गृह तजी, तन स्नेह नो करी छेह ।
निसंग वनवासे वसे, तपधारी हो ते अभिग्रह गेह ॥"

महान् साधक भी आपत्ति के समय (सत्त्वहीनता के कारण) धैर्य खो देते है। अतः उनके लिये श्रीमद् ने 'सत्त्वभावना' की सज्झाय के रूप में महान् उद्‌बोधन दिया है। यदि उसका नित्य मनन किया जाय तो रग....रग में सात्त्विक साहस का अवश्य संचार होता है।

रे जीव! साहस आदरो, मत थाओ दीन ।
सुख-दुख सपद आपदा पूरव कर्म अधीन ॥

स्वजन-परिजन, धन और शरीर के मोह में आत्मा का भान भूलनेवालो के लिये श्रीमद् ने बडा मार्मिक उपदेश दिया है—

'पंथी जेम सराय मां, नदी नाव नी रीति ।
तिम ए परियण तो मिल्यो, तिण थी शी प्रीति ॥

चक्री हरि वल प्रतिहरी, तस विभव अमान ।
ते पण काले संहर्या, तुज धनेश्ये मान ॥

तू अजरामर आत्तमा, अविचल गुण राण ।
क्षण-भगुर जड देहथी, तुज किहां पिछाण ॥

देह–गेह भाडा तणो, ए आपणो नाहि ।
तुज गृह आत्तम ज्ञान ए, तिण माहे समाहि ॥

वाह्य–संग–परिग्रह का त्याग कर देने पर भी "एगोऽहं नत्थि में कोई" –मैं अकेला हू, मेरा कोई नही है ।" इस भावना की वास्तविक परिणति हुए विना आन्तरिक ममत्त्व दूर नही होता । 'एकत्त्वभावना' को सज्झाय मे उसी ममत्त्व को दूर करने के लिये एक-एक गाथा के रूप मे एक-एक इन्जेक्शन लगाया है ।

"आव्यो पण तूं एकलो रे, जाइश पण तू एक ।
तो ए सर्व कुटुम्ब थी रे, प्रीत किसी अविवेक रे ॥

परसयोगथी वध छे रे, पर वियोग थी मोख ।
तेणे तजी पर मेलावडो रे, एक पणो निज पोख रे ॥

परिजन मरतो देखी ने रे, शोक करे जन मूढ ।
अवसर वारो आपणो रे, सहु जन नो ए रूढ रे ॥

अपनी एकता का सच्चा भान हो जाने पर आत्मस्वरूप को निखारने के लिये शुद्ध आत्मतत्त्व का चिन्तन करना आवश्यक है । तत्त्वभावना की सज्झाय मे आपने इसी बात पर जोर दिया है । इन भावनाओ का महात्म्य—श्रीमद् के शब्दो मे—

"कर्म कतरणी शिव निसरणी, ध्यान ठाण अनुसरणी जी ।
चेतनराम तणी ए धरणी, भव-समुद्र दुःख हरणी जी ॥

१३. गजसुकुमाल-सज्झाय—

इस सज्झाय की तीन ढालें है। प्रथम ढाल में श्री कृष्ण के छोटे भाई गजसुकुमाल का भगवान् नेमिनाथ का उपदेश सुनकर वैरागी बनने का वर्णन है। दूसरी ढाल में माता देवकी और गजसुकुमाल के राग-विराग का द्वन्द्व और अन्त में कुमार का विजय होना है। तीसरी ढाल में कुमार की दीक्षा और साधना का वर्णन है। भगवान् का उपदेश सुनकर गजसुकुमाल को वैराग्य हो जाता है, इसका वर्णन श्रीमद् के शब्दों में—

"नेमि वचन जाग्यो वडवीर धीर वचन भाषे गम्भीर।
देहादिक ए मुजगुण नाहि, तो केम रहेवुं मुज ए माहि ॥
जेह थी वधाये निजतत्त्व, तेह थी संग करे कुण सत्त्व।
प्रभुजी रहेवुं करी सुपसाय, हुँ आवुं माता समजाय ॥

गजसुकुमाल जिन शब्दों में माता से अनुमति मांगते हैं वे उनके तीव्र वैराग्य के सूचक है।

'माताजी अनुमति आपीये, हवे मुझ एम न रहाय रे।
एक खिण अविरत दोष नी, वातडी वचन न कहाय रे ॥

माता संयम की दुष्करता दिखाकर बालक को रोकना चाहती है, तब गजसुकुमाल ने जो कुछ कहा वह बड़ा मार्मिक है। उसके आगे माता के कुछ कहने का अवकाश ही नहीं रखा।

'मातजी निजघर आंगणे, वालक रमे निरवीह रे।
तेम भुज आतम धर्म में, रमण करता किसी वीह रे ॥
नेमथी कोई अधिको हुवे, मानीये तास वचन्न रे।
माताजी काई नवि भाखिये, माहरे संयमे मन्न रे ॥

अन्त में गजसुकुमाल दीक्षा ले लेते हैं और प्रभु से शीघ्र ही मोक्ष मिलने का उपाय पूछते हैं। तब भगवान् उन्हे एकरात्रि की प्रतिमा स्वीकारने को कहते हैं। भगवान् की आज्ञानुसार शिवरसिक बालमुनि श्मशान में जाकर कायोत्सर्ग, में लीन हो जाते है। उनके भावी ससुर 'सोमिल' को जब इस बात का पता पड़ा तो वह बड़ा क्रुद्ध होता है और प्रतिशोध की भावना से मुनि को ढूंढता हुआ वहां पहुँच जाता है। क्रोधावेश मे सोमिल भान भुला हुआ था अतः वह पास ही तालाब से गोली मिट्टी लाकर बालमुनि के सिर पर सिगड़ीनुमा बनाकर उसमे जलते हुए अगारे रख देता है। देह धर्म व आत्मधर्म को भलो-भाँति पहिचानने वाले महामुनि की उस असह्य पीड़ा में भी भावना देखिये--

दहनधर्म ते दाह जे अगनि थी रे,
हुँ तो परम अदाभ अगाह रे।
जे दाझे ते तो माहरो धन नथी रे
अक्षय चिन्मय तत्त्व प्रवाह रे॥

१४. प्रभंजना-सज्झाय—

इसमें विद्याधर कुमारी प्रभंजना के अचानक जीवन-परिवर्तन का रोचक वर्णन है। प्रभंजना के स्वयवर की तैयारी हो रही है। वह एक हजार सखियों के साथ घूमने जा रही है। रास्ते मे अचानक सुव्रता साध्वीजी सपरिवार उनको मिलती हैं। शिष्टाचार के नाते कन्याये उन्हे नमस्कार करती हैं।

कन्याओ का अपूर्व उल्लास देखकर साध्वीजी उन्हे उसका कारण पूछती हैं। तब कन्या कहती है कि—

"विनये कन्या वीनवे, वर वरवा इच्छे रे लो।"

त्यागी आर्या को इससे बड़ा आश्चर्य होता है और वे कहती है कि—

'एश्यो हित जाणो तुमे, एथी नवि सिद्धि रे लो।
विषय हलाहल विष जिहां, शी अमृत बुद्धि रे लो ॥'

प्रभजना की आत्मा आसन्नभावी है। अत वह साध्वीजी की बातों का मर्म बडी गम्भीरता से जानने में लीन है। यही कारण है कि सखी के यह कहने पर कि— "अभी तो जो सोचा है, वह करो। बाद में धर्म की बात सोचना।" प्रभजना झट से कह देती है कि—

'प्रभजना कहे हे सखी, ए कायर प्राणी रे लो।
धर्म प्रथम करवो सदा, 'देवचन्द्र' नी वाणी रे लो॥

चतुर साध्वीजी भी अपने कथन का प्रभंजना के दिल में असर होता देखकर उसे संसार की असारता, संबंधों की अनित्यता और आत्मा की नित्यता बताती हैं। इसमे प्रभजना की सुप्त चेतना एकदम जाग उठती है।

"आयो आयो रे अनुभव आत्तमचो आयो।"
शुद्धि निमित्त अवलंबन भजतां, आत्मालबन पायो रे॥

ज्ञानधारा में आगे बढते–बढते अन्त मे उसे केवल ज्ञान हो जाता है। हजार सखियां भी वहा ही दीक्षित हो जाती हैं। सारा वर्णन तत्त्वज्ञान से भरपूर होने के साथ-साथ बड़ा सजीव है। सज्झाय-पाठक अध्यात्म रस के आस्वादन के साथ दृश्य का साक्षात्कार भी करता जाता है।

१५. साधुपद स्वाध्याय—

इस शीर्षकवाली दो सज्झाये हैं। एक तो 'जगत् मे सदा सुखी मुनिराज और दूसरी 'साधक साधज्यो रे' है। इसमे श्रीमद् ने साधु को ऋजुता और समता की साधना से निस्पृह, निर्भय, निर्मम और पवित्र बनकर आत्म साम्राज्य (मोक्ष)

प्राप्त करने की सद्‌शिक्षा दी है। दोनो मे साधुजीवन के सुखो का अनुभव गम्य वर्णन किया है। उसमे से कुछ उद्‌गार ये हैं।

जगत् मे सदा सुखी मुनिराज ॥टेर॥

पर विभाव परिणति के त्यागी, जागे आतम समाज,
निजगुण अनुभव के उपयोगी, जोगी ध्यान जहाज।

निर्भय, निर्मल, चित्त निराकुल, विलगे ध्यान अभ्यास,
देहादिक ममता सवि वारी, विचरे सदा उदास ॥

हेय त्यागथी ग्रहण स्वधर्म नो रे, करे भोगवे साध्या,
स्वस्वभावरसिया ते अनुभवे रे, निजसुख अव्याबाध।

निस्पृह, निर्भय, निर्मम, निरमला रे, करता निज साम्राज्य,
देवचन्द्र आणाये विचरता रे, नमिये ते मुनिराज ॥

अन्य—उपलब्धकृतियाँ

(१) एकवीशप्रकारी पूजा (२) अष्ट प्रकारो पूजा (इसका स्वोपज्ञ टब्बा भी है) (३) सहस्त्रकूट जिनस्तवन (४) आनन्दघनचौबीसी मे 'ध्रुवपदगामी हो स्वामी माहरा' से प्रारभ होनेवाला पार्श्वनाथ प्रभु का स्तवन और (५) वीर जिणेसर चरणे लागु यह महावीर प्रभु का स्तवन ये दोनो ही श्रीमद् के ही बनाये हुए है। योगीराज ज्ञानसारजीकृत आनदघन चौबीसी के बालावबोध से यह स्पष्ट है।[1] इनके अति रिक्त प्रस्तुत संग्रह' की (......) रचनाये है। इस प्रकार श्रीमद् ने श्रुतज्ञान का खूब सेवा की है। कुछ आपकी अमुद्रित कृतियां भी यत्र तत्र भंडारों मे उपलब्ध होती हैं।

---

१. देखो नाहटाजीकृत ज्ञानसार ग्रन्थावली का जी० पृ० ९९ से १०२.

अमुद्रित कृतियाँ

(१) अध्यात्मप्रबोध (हितविजय पु०, घाणेराव), इसकी नकल नाहटा लाइब्रेरी, बीकानेर में है) (२) अध्यात्मशान्तरस वर्णन (३) उदय-स्वामित्त्व पचाशिका (खरतरगच्छ ज्ञानभंडार, जयपुर) (४) तत्त्वावबोध ('विचारसार' मे इसका उल्लेख है) (५) दण्डक बालावबोध (नाहटा भंडार, बीकानेर) (६) कुंभ-स्थापना भाषा (खरतरगच्छ ज्ञानभंडार, जयपुर) (७) सप्तस्मरण टब्बा (८) देशनासार (९) स्फुट प्रश्नोत्तर।

इनके अतिरिक्त श्रीमद् की अन्य कोई कृति किसी को कही उपलब्ध हुई हो तो अवश्य सूचित करे।

श्रीमद् की कृतियों पर अन्यकृत बालावबोध विवेचन आदि—

श्रीमद् की अध्यात्मगीता पर सर्वाधिक कार्य हुआ। इस पर एक भाषा टीका (बालावबोध) श्रीमद् आनंदघनजी की चौबीसी और पदों पर विवेचन लिखने वाले मस्तयोगी ज्ञानसारजी ने सं० १८८० की आषाढ सुदी १३ को बीकानेर में बनाई थी। ज्ञानसारजी अध्यात्म-मर्मज्ञ विद्वान् सन्त थे। बालावबोध के प्रारम्भ और अन्त में इस रचना का महत्त्व और गुण वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—

खरतर आचारज गणे दीपचन्द तसुसीस।
देवचन्द्र चन्द्रोदयी सवेगिक तनु सीस॥
जिन वचनामृत पानकर रचना रची रसाल।
क्यो न होहि जल सीचनां, हरी तरून की डाल॥
अध्यातम-गीताकरी करी विवरण नही कीन।
आग्रह ते विवरण करूं, पै मति ते अति छीन॥
आशय कवि को अति कठिन, अति गभीर उदार।
वज्र उदधि सुरमणि रमणि, उपमेयोपम धार॥

स्थान-स्थान पर ज्ञानसारजी ने अपनी लघुता बताते हुए, स्वतन्त्र समालोचना भी की है। अपनी समालोचना में उन्होने श्रीमद् को महापण्डित, महाकविराज आदि विशेषणो द्वारा संबोधित किया है और यहाँ तक लिखा है कि– 'ए वर्त्तमान बिस्से वरसो ना काल मा एहवा कविराजान ग्रन्थ थोडा गिणाय तेहवा थया नै जाणपणो पण अति विशेष हतूं नै हूं महामंद बुद्धि शास्त्र नो परिज्ञान किमपि नहि तेहथी छोटे मुंहे मोटाओनी बात किम लिखाय पण श्रावक ने अति आग्रह मे टब्बो करवा माडयो।" ज्ञानसारजी का यह बालावबोध मर्मस्पर्शी और बोधदायक है।

ज्ञानसारजी के बाद तपागच्छ के अमी कुंवर जी ने सं० १८८२ की आषाढ वदी २ को पाली नगर की श्राविका लाडूबाई के पठनार्थ बालावबोध की रचना की जो कि 'अध्यात्म ज्ञानप्रसारक मंडल' पादरा से सं० १९७८ मे श्रीमद् के 'आगमसार' के साथ प्रकाशित हो चुका है। तीसरा टब्बा सूरत मे श्री मोहनलालजी के ज्ञान भंडार में है। अज्ञातकर्तृक चौथा टब्बा "देवचन्द्र भाग–२" मे प्रकाशित है।

कुछ ही वर्षो पूर्व इस पर गुजराती विवेचन मुनि श्री कलापूर्ण विजयजी (अभी वागड सम्प्रदाय के आचार्य हैं) ने लिखा जो डा० उमरसी पूनसी देढिया ने अंजार से प्रकाशित किया है। हिन्दी भाषा मे इसका सरल और संक्षिप्त विवेचन श्री केशरीचन्दजी धूपिया का सं० २०२९ मे कलकत्ता से प्रकाशित हुआ जिसमे विद्वान् मनीषी श्री अगरचन्दजी नाहटा ने भूमिका लिखी है।

श्रीमद् की स्नात्रपूजा पर प्रथम हिन्दी अनुवाद श्री चन्दनमलजी नागौरी ने व दूसरा श्री उमरावचन्दजी जरगड ने किया। ये दोनों ही अनुवाद जिनदत्तसूरि सेवा संघ बम्बई से प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीमद् की 'वर्तमान चौवीसी' का भी संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद जरगड़ जी ने ही किया है। वह भी उक्त संस्था से ही प्रकाशित है।

श्रीमद् की अतीत चौबीसी पर श्रावकवर्य मनसुखलालजी ने सं० १९६५ में दाहोद मे गुजराती में बालावबोध बनाया। इसमें श्रीमद् द्वारा रचित २१ ही स्तवन हैं, मनसुखभाई ने तीन स्तवन स्वयं बनाकर चौबीस की पूर्ति की है। वीसी का अनुवाद मनसुखभाई के ही सहयोगी व शिष्य श्री सन्तोकचन्द्रजी ने सं० १९६६ में दाहोद मे किया। ये दोनों 'बालावबोध' स० १९६७ में 'सुमति प्रकाश' ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुके हैं। इसके बाद बीकानेर से अलग-अलग रूप में क्रम से सं० २००६ व २००७ मे प्रकाशित हुए।

श्रीमद् के आगमसार का हिन्दी अनुवाद बहुत वर्षों पूर्व योगीराज श्री चिदानन्दजी महाराज ने किया था, जिसे जमनालालजी कोठारी ने अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला से प्रकाशित करवाया था। इसके बाद विद्वद्वर्य आनंद सागर सूरीश्वरजी कृत हिन्दी विवेचन के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ सैलाना (म० प्र०) से प्रकाशित हुआ। नयचक्रसार का हिन्दी रूपान्तर फलोदी से प्रकाशित हुआ है।

'साधु पद स्वाध्याय' नामक दोनो सज्झायो पर योगीराज ज्ञानसारजी नें हिन्दी भाषा में विद्वत्तापूर्ण एवं समालोचनात्मक विस्तृत टव्वा लिखा है। इसके आधार पर संक्षिप्त हिन्दी भावार्थ केशरीचन्दजी धूपिया ने तैयार किया, जो श्रीमद् देवचन्द्र ग्रन्थमाला कलकत्ता से 'पंच भावनादि सज्झायसार्थ में प्रकाशित हुआ हैं। 'अष्टप्रवचनमाता सज्झाय' पर गुजराती अनुवाद एवं 'पंचभावना सज्झाय' पर 'अज्ञातकर्तृक टव्वा है। सं० २०२० में दोनों पर नेमिचन्द्रजी जैनकृत हिन्दी भावार्थ कलकत्ता से प्रकाशित हुआ हैं।

'बड़ी साधु-वदना' का स्थानकवासी समुदाय मे बहुत आदर हुआ हैं। वे लोग इसके ४-५ संस्करण निकाल चुके है। स० २००९ में श्री मधुकर मुनिजी के अनुवाद व कवि श्री अमरचन्द्रजी की भूमिका सहित एक संस्करण निकाला है।

श्रीमद् की 'बीसी' के एक स्तवन पर पंडित सुखलालजी ने अनुवाद लिखा है, जो काशी से प्रकाशित हुआ था।

इनके अतिरिक्त यदि किसी को श्रीमद् की किसी कृति पर, अनुवाद या विवेचन उपलब्ध हो तो कृपया, अवश्य सूचित करें।

श्रीमद् की भाषा-शैली—

राजस्थानी तो आपकी मातृ-भाषा ही थी। संस्कृत-प्राकृत में आपने पाण्डित्य हांसिल किया था। अन्य भाषाओं का ज्ञान तो जैसे-जैसे आपका भ्रमण क्षेत्र विस्तृत होता गया वैसे-वैसे बढ़ता गया तथा रचनाओं मे उन को स्थान मिलता गया।

श्रीमद् की रचनाओं को भाषा की कसौटी पर कसने से पहिले एक बात ध्यान में रखना अत्यावश्यक है, तभी उनके प्रति न्याय किया जा सकता है। श्रीमद् केवल लेखक या कवि ही नहीं थे, वे अध्यात्मज्ञानी सन्त थे। अतः रचना करने का उनका ध्येय पाण्डित्य-प्रदर्शन का या मात्र वाह...वाह लेने का नहीं था किन्तु साधारण लोग भी तत्त्वज्ञान मे रस ले सकें, इसलिये उसे सरल से सरल रूप में प्रस्तुत करने का था। यही कारण है कि संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी आपने कुछ रचनाओं को छोड़कर सभी रचनाये भाषा में की।

आपकी संस्कृत और प्राकृत छोटे-छोटे वाक्यों और प्रायः समास रहित छोटे २ पदों के कारण बड़ी सरल है। अनर्थक अलंकरण और पांडित्य प्रदर्शन के झूठे मोह मे भावों की गरिमा कम करने की कहीं भी कोशिश नहीं की गई।

भाषा-ग्रन्थों मे, आपकी पूर्ववर्ती रचनाये तो राजस्थानी या पुरानी हिन्दी मे हैं किन्तु परवर्ती रचनाये गुजराती मे या गुजराती-बहुल हैं। कारण १७७७ से अन्तिम समय तक अर्थात् ३३-३४ वर्ष के दीर्घकाल तक आप गुजरात में ही विचरते

रहे। अतः रचना में गुजराती का आना स्वाभाविक ही था। भ्रमणशील-जीवन होने के नाते अन्य भाषाये जैसे मराठी, अपभ्रंश, व्रज इत्यादि के शब्दों का भी प्रयोग होना स्वाभाविक ही था।

आपकी स्नात्रपूजा स्तवन-एवं सज्झायो में प्रयुक्त तुमचो, अमचो, अम इम अभिसेस 'उच्छम' इत्यादि शब्द मराठी और अपभ्रंश के हैं। 'द्रव्यप्रकाश' तो व्रजभाषा बहुल ही है। देखिये श्रीमद् की व्रजभाषा पटुता—

आपको न जाने, परभाव ही को आपा माने,
गहि के एकात-पक्ष माच्यो हे गहल मे ।
भरम मे पर्यो रहे, पुन्यकर्म ही को चेह,
वहे अहंवुद्धि भाव थंभ ज्यु महल में ।
कुगतिसु डरे सद्गति ही की इच्छा करे,
करनी में थिर हो के चाहे मोक्ष दिल में,
स्याद्वाद भाव विनु ऐसो जो मिथ्यात्त्व भाव।
हेयरूपी कह्यो ज्ञानभाव के अदल में,

इस प्रकार श्रीमद् का भाषा-ज्ञान विस्तृत है। कही कही तो एक ही गाथा में गुजराती, सस्कृत-तत्सम, प्राकृत एव राजस्थानी का सफल प्रयोग किया है। देखिये—

श्री तीर्थपत्तिनो कलस मज्जन, गाइये सुखकार।
नर-खित्त मंडण दुह विहडण, भविक मन आधार॥

'तीर्थपत्ति नो' मे गुजराती प्रत्यय है। 'मज्जन संस्कृत तत्सम शब्द है। 'खित्त' 'दुह' और 'विहंडन' प्राकृत है, शेप सव राजस्थानी है। संस्कृत प्राकृत के प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी हिन्दी, राजस्थानी एवं गुजराती मे लिखकर आपने

भाषा-साहित्य की विपुल सेवा की है तथा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। जन्मजात राजस्थानी होते हुए भी गुजराती भाषा में आपकी परिपक्वता आश्चर्यजनक हैं।

आपके गद्य और पद्य दोनो ही भाषा की क्लिष्टता और कृत्रिमता से दूर सरल और भाववाही हैं। आपकी शैली सरल, सुबोध टकसाली सोना हैं। जो कुछ कहना है, उसे अल्प और अनुरूप शब्दो में कह दिया है। कही भी दिखावे को स्थान नही है। गुजराती गद्य के व्यवस्थित विकास मे देढ (१५०वर्ष) सदी पूर्व सफलता के साथ गद्य लिखकर गुर्जरगिरा पर आपने अनहद उपकार किया है।

श्रीमद् का संगीत ज्ञान—

आबाल-गोपाल को सगीत जितना आकर्षित कर सकता है, उतना और कोई शास्त्र नहीं कर सकता। भावों को तन्मय कर देने की जो शक्ति सगीत में है अन्य किसी में नही। इसीलिये तो भाषा-साहित्यकारो ने जन साधारण को आकृष्ट करने के लिये अपने भावो को विविध राग-रागिनियो मे गू था है।

श्रीमद् ने भी संगीत की प्रभावशालीता को खूब पहिचाना और अपनी भक्ति, वैराग्य और उपदेश को उन्मुक्त गगा-प्रवाह से निर्मल गेय-गीतों के रूप मे खूब बहाया है।

आपका राग रागिनी विषयक ज्ञान भी अच्छा था। आशावरी, धन्याश्री, मारू गोडी, होरी, वेलावल, इत्यादि शास्त्रीय (Classical) राग–रागिनियों के साथ गुजराती, मारवाडी मेवाड़ी आदि देशो मे प्रसिद्ध देशियों का भी अच्छा ज्ञान था।

राग-रागिनियाँ और देशियो के अलावा सस्कृत-प्राकृत और हिन्दी के दोहा, सवैया, कवित्त उल्लाला चोपाई आदि छन्दो के ज्ञान मे भी आपने अच्छी निपुणता प्राप्त की थी।

श्रीमद की कवित्व–शक्ति—

श्रीमद् की रचनाये द्रव्यानुयोग एवं अध्यात्म-प्रधान होने से उनमे अलकारिक काव्य कला का दर्शन यद्यपि पदे पदे नही होता, तथापि भक्ति-स्तवनो के रूप मे जो अमूल्य प्रसादी उन्होंने दी उसमे उनकी कवित्व शक्ति का अच्छा दर्शन हो जाता है। तथा उनकी कवित्व-शक्ति की कुछ मौलिक विशेषताये सामने आती है।

सर्वोच्च-दार्शनिक तत्त्वो को भी गीतिका में बाँधकर सहजभाव से सरस बनादेना यह श्रीमद् द्वारा ही मंभव हो सका है। आपकी चौवीसी का प्रथम स्तवन 'ऋषभ जिणंदशु प्रीतडी' तर्क, पांडित्य और कवित्व शक्ति का बेजोड नमूना है।

ऋषभ जिणद शु प्रीतडी,
केम कीजे हो कहो चतुर विचार।

इसके द्वारा, प्रभु वीतराग है, उनमे प्रेम कैसे हो सकता है। इस प्रश्न को उपस्थित कर प्रेम करने की सभी संभावनाओ की उत्प्रेक्षा करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। किन्तु जैनदर्शन की रीति-नीति सबको अस्वीकृत कर देती हैं। फिर स्वयं ही चतुर-भाषा में समाधान कर देते है कि—

प्रीति अनंती पर थकी, जे तोडे होते जोडे एह।
परम पुरूषथी रागता; एकत्त्वता हो दाखी गुणगेह॥

आपकी उपमायें वास्तव मे अनुपम हैं। व्यावहारिक-क्षेत्र से सचित किये गये उपमानो को धर्म और दर्शन की व्याख्या के लिये उपयोगी बना लेना श्रीमद् की निजी विशेषता है। साथ ही वे उपमान कितने सटीक हैं, इसका उदाहरण देखिये प्रभु के स्तवन मे—

'वीजे वृक्ष अनततारे लाल, प्रसरे भूजल योगरे वाल्हेसर।
तिम मुज आतम संपदा रे लाल, प्रगटे जिन सयोग रे॥ वाल्हेसर॥

जैसे बीज के अंकुरित होने के लिये भू और जल की आवश्यकता है, वसे ही आत्म गुणो के विकास के लिये प्रभु के आलंबन की आवश्यकता है। सटीकता यह है कि 'नान्य पन्था " की प्रतीति वीज, वृक्ष और जल के संबध की विशेषता से होती है।

इसी प्रकार अनन्तनाथ स्तवन में—

भवदव हो प्रभु भवदव तापित जीव,
तेहने हो प्रभु तेहने अमृतघन समीजी।
मिथ्या विष हो प्रभु मिथ्या विष नी खीव,
हरवा हो प्रभु हरवा जांगुली मन रमीजी॥

यहा अनन्यता की प्रतीति ताप और वृष्टि, विष और जागुलि (गारुडी) के सवधो के कारण ही है।

आध्यात्मिक पुरजोश (Enthusiasm) से भरपूर आपका दीपावली का रूपकमय वर्णन देखिये—

आज मारे दोवाली थई सार, जिनमुख दीठा थी।
अनादि विभाव तिमिर रयणी में, प्रभु दर्शन आधार रे॥
जिनमुख दीठे ध्यान आरोहण, एह कल्याणक वातरे।
आतमधर्म प्रकाश चेतना, 'देवचन्द्र' अवदात॥

प्रभु की भक्तिपूर्ण स्तवना के साथ वे वियोग और विछोह के वर्णन को भी भूले नही है। जिस गभीरता के साथ आपने, राजीमती व गौतम के शब्दो में वियोग का वर्णन किया है, वह साहित्य निधि का अनमोल रत्न है। वीरप्रभु निर्वाण स्तवन मे उनकी विरह-व्यथा देखिये—

मात विहूणो वाल ज्यूं रे, अरहो परहो अथडाय।
वीर विहूणा जीवडा रे, आकुल-व्याकुल थाय रे वीरप्रभु सिद्ध थया॥

वियोग का यह वर्णन कितना स्वाभाविक है—

संशय छेदक वीरनो रे, विरह ते केम खमाय ।
जे दीठे सुख उपजे रे, ते विण केम रहेवाय रे ॥
वीरप्रभु सिद्ध थया.........—

गौतम स्वामी के शब्दों में विरह व्यथा—

हे प्रभु मुज बालक भणीजी, स्यें न जणायुं आम ।
मूंकी स्यें मने वेगलोजी, ए निपाव्यो काम नाथ जी मोटो तू आधार ॥

वियोगिनी राजुल की, विरह व्यथा देखिये—

"वालाजी वीनतडी एक मारी, धीरू बोले राजुल नारी रे ।
हुं दासी छुं श्री प्रभुजीनी, प्रभु छो पर उपकारी रे ॥१॥

प्रभु के वियोग में राजुल की दयनीय दशा देखिये । प्रकृति के सुखद भाव भी, उसके लिये दुखदायी हो गये हैं । मेघघटा, पपीहा का पिउ-पिउ बोलना, जलधारा, बिजली, मन्द पवन आदि प्रकृति के कोमल रूप उसके लिये कठोर बन गये हैं ।

"आयो री घनघोर घटा करके (२)

रहत पपीहा पिउ पिउ पिउ पिउ सर धरके ॥१॥
बादर बादर नभ पर छाइ, दामिनी दमतकी झरके ।
मेघ गंभीर गुहिर अति गाजे, विरहिनी चित्त थरके ॥

व्यवहारिक दृष्टान्तों के द्वारा अपने भावों को स्पष्ट और पुष्ट करने की आपकी क्षमता देखिये—

अजकुलगत केसरी लेहरे, निजपद सिंह निहाल ।
तिम प्रभु भक्ते भवि लेह रे, आतम शक्ति संभाल ॥
अजित जिन तारजो रे..........

बकरी के टोले में पला हुआ सिंह शावक अपने स्वरूप को भूल जाता है। किन्तु अपने सजातीय सिंह को देखने से उसे पुन. निज रूप का भान हो आता है। उसी प्रकार प्रभु भक्ति से भव्य जीव भी अपनी विस्मृत आत्म शक्ति को पहिचान कर प्राप्त कर लेता है। यहा आत्म शक्ति की स्मृति में, प्रभु भक्ति के औचित्य के साधक भ्रान्त सिंह शावक का दृष्टान्त कितना उपयुक्त है।

संवादों के द्वारा रूपक जैसा आनन्द प्रस्तुत करने में श्रीमद् सिद्धहस्त हैं। आपकी प्रभंजना, गजसुकुमाल आदि की सज्झाये इसके ज्वलन्त उदाहरण है।

अनुप्रास का प्रयोग सर्वत्र स्वाभाविक गति से, संगीतात्मकता का वातावरण उत्पन्न करते हैं। कलापक्ष की अपेक्षा आपका भावपक्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तत्वज्ञान के बीच बीच सुन्दर कोमल भाव तरंगो का स्पन्दन हृदय को आहलादित कर देता है। आपकी रचनाओं में अर्थगौरव की विशेषता है। वे पाठकों के मानस-पटल पर उन विचारों को अंकित कर देना चाहते थे; जिनसे वह साधारण मानव की तुच्छ-प्रवृत्तियों से परे हो जाय और उसे स्वयं अपने व्यक्तित्व को उदात्त बनाने की प्रेरणा प्राप्त हो।

श्रीमद् की कविता गंगाजल की तरह अस्खलित गति से बहती हुई कही भाव या रस की धारा बहाती है तो कही प्रशांत सरोवर के समान स्थिर और गंभीर होकर मानव जीवन की विश्रांति की छाया दिखाती है। सचमुच आपकी कविता में हृदय की सच्ची स्वाभाविक प्रेरणा भरी पड़ी है। आपकी वाणी आपके व्यक्तित्व की गरिमा से ओतप्रोत है।

श्रीमद् की भक्त दशा—

श्रीमद् उच्चकोटि के परमात्मभक्त महात्मा थे। आपने अपने स्तवनों में भक्तिरस को खूब बहाया। किन्तु श्रीमद् की भक्त दशा पर विचार करने से पूर्व

उनकी भक्ति–पद्धति के बारे में कुछ विचार कर लेना ठीक रहेगा। क्योकि उनकी शैली अन्य कवियो से सर्वथा भिन्न है। उनकी भक्ति पर जैन - तत्वज्ञान का गहरा प्रभाव नजर आता है। फलतः आपकी भक्ति में, दूसरे कवि जैसे भावावेश में जैनत्व को भूला गये हैं, वह बात नजर नही आती।

ईश्वर विषयक जैन एवं जैनेतर दृष्टिकोण में मूलभेद यही है कि वे ईश्वर को एक सृष्टिकर्ता एवं फलप्रदाता मानते हैं। जब कि जैन मान्यतानुसार इस पद का ठेका किसी एक व्यक्ति का नही होता किन्तु कोई भी व्यक्ति साधना द्वारा आत्म-विकास कर, इस पद को पा सकता है। ईश्वरत्व प्राप्त कर लेने पर फिर कुछ करना शेष नही रहता। अतः वे न किसी पर रीभते हैं, न किसी पर खीभते हैं। न किसी को तारते हैं, न किसी को रूलाते हैं। प्रत्येक जीव अपने भले बुरे के लिये स्वतन्त्र है। वह अपने ही कर्मो के फलस्वरूप सुख - दुःख को भोगता है एवं अपने ही प्रयत्नों द्वारा कर्मों से मुक्त हो स्वयं परमात्मा वन जाता है।

तव प्रश्न होता है कि प्रभु भक्ति क्यों की जाय ? क्योंकि वे वीतराग हैं। वे न किसी को तारते हैं, न कि किसी को डुवाते हैं।

इसका समाधान यह है कि-कार्यसिद्धि के दो कारण है–एक उपादान, दूसरा निमित्त। यद्यपि मूल कारण तो उपादान ही है, तथापि निमित्त का स्थान भी कार्य-निष्पत्ति में महत्वपूर्ण है। मुक्ति का उपादान कारण तो स्वयं आत्मा है, अर्थात् आत्मा का प्रयत्न एवं पुरूषार्थ है किन्तु प्रभु भक्ति आदि आत्म शुद्धि में निमित्त होने के नाते अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उपादान की शुद्धता एवं विकास के लिये निमित्त का अवलम्बन आवश्यक है और वही भक्ति का अवकाश है। प्रभु से हमें न कुछ लेना है न कुछ मांगना। किन्तु उनका दर्शन कर अपने स्वरुप का दर्शन करना है। उनका गुणगान कर अपने गुणों को संवारना है। उनके जीवन व उपदेशों से प्रेरणा ग्रहण

कर हम अपने आत्म विकास का मार्ग प्रशस्त करना है तथा तदनुरुप जीवन बनाने के लिये प्रयत्नशील-होना है।

श्रीमद् की भक्ति पर इस मान्यता का गहरा प्रभाव है। वीतरागता के आदर्श को अक्षुण्ण रखते हुए उन्होंने भक्ति की है। श्रीमद् ने अपने स्तवनों में इस तत्त्व को पुनः पुनः जिस प्रकार स्पष्ट शब्दों में दुहराया है, वैसा अन्य किसी ने प्रकाशित किया हो, नजर नहीं आता। यही उनकी भक्ति की महान् विशेषता व मौलिकता है। जैसा कि उन्होंने गाया है।

प्रभुजी ने अवलंबता, निज प्रभुना हो प्रगटे गुणरास।
देवचन्द्र नी सेवना, आपे मुज हो अविचल सुखवास॥

प्रभु आलंबन रूप है। उनके निमित्त से अपनी प्रभुता प्रकट होती है। इस गाथा में यही भाव स्पष्ट किया है।

प्रभु के निमित्त से अपने स्वरूप की स्मृति होती है तथा उसे पाने की प्रेरणा मिलती है। इस तत्व को श्रीमद् ने कितनी स्पष्टतापूर्वक व्यक्त किया है। जैसे–

प्रभु प्रभुता सभारता, गातां करतां गुणग्राम।
सेवक साधनता वरे, निज संवर परिणति पाम रे॥

प्रभु दीठे मुज सांभरे, परमातम पूर्णानन्द॥

श्रीमद् की भक्ति के आधारभूत मुख्य तीन तत्त्व है— १. प्रभु की प्रभुता २. अपनी लघुता ३. परमात्मा के प्रति अनन्य समर्पण भाव। उनके स्तवनों में ये भाव पदे पदे मुखरित हुए हैं। श्रीमद् के हृदय में प्रभु की प्रभुता के प्रति अनन्य श्रद्धा है। प्रभु को प्रभुता अनंत हैं। उस अनन्त प्रभुता को बताने में भी वे असमर्थ हैं।

"शीतल जिनपति प्रभुता प्रभुनी, मुज थी कहिय न जायजी ॥"

क्योंकि सारा विश्व विधान (Cosmic Order) उनकी आज्ञा के आधीन[1] है।

"द्रव्य क्षेत्र ने काल भाव गुण, राजनीति ए चार जी।
त्रास विना जड़-चेतन प्रभुनी, कोई न लोपे कार जी ॥"

अत: उन्हें पूर्ण विश्वास है कि अनंत प्रभुता सम्पन्न प्रभु को समर्पित होने में ही उनका कल्याण है।

एम अनंत प्रभुता सद्दहतां, अर्चे जे प्रभु रूपजी।
देवचन्द्र प्रभुता ते पामे, परमानंद स्वरूपजी ॥
॥ शीतल जिन-स्तवन ॥

प्रभु को समर्पित होने में ही सच्चा आनन्द है, यह बतलाते हुए कवि के हृदय की भक्ति धारा फूट पड़ती है।

मोटा ने उत्संग, बैठा ने सी चिन्ता।
तिम प्रभु चरण पसाय, सेवक थया निश्चिन्ता ॥

अर्थात् वड़ों के गोद में बैठे को क्या चिन्ता है? वैसे प्रभु के आश्रय में भक्त निश्चिन्त है।

प्रभु के प्रति उनके श्रद्धा समर्पण में अन्य किसी को जरा भी अवकाश नही है। उनके तो एक ही साहिब है।

१— अर्थात् प्रभु की ज्ञान-परिणति से विपरीत सासार का कोई भी पदार्थ चाहे वह जड़ हो, चाहे चेतन हो, कदापि परिणत नही होता।

"तुज सरिखो साहेब मल्यो, भांजे भव-भ्रम टेव लाल रे।
पुष्टालंबन प्रभु लही, कोण करे, पर सेव लाल रे ॥

श्रीमद् में आत्म-लघुत्ता का भाव कूट कूट कर भरा है। वे अपने दोषों-अवगुणो को बिना किसी हिचकिचाहट के प्रभु के सम्मुख स्वीकार करते हैं तथा अपने उद्धार के लिये प्रभु से, बड़े ही मार्मिक शब्दों में विनम्र प्रार्थना करते हैं।

तार हो तार प्रभु मुज सेवक भणी,
जगतमा एटलु सुजस लीजे।
दास-अवगुण भर्यो जाणी पोता तणो,
दयानिधि ! दीन पर दया कीजे ॥

'तारजो बापजी विरुद निज राखवा,
दासनी सेवना रखे जोशो।"

॥ महावीर स्तवन ॥

प्रभु के प्रति भक्त-कवि का प्रेम कितना सहज है—

"हुँ इन्द्र चन्द्र नरेन्द्र नो, पद न मागु तिलमात।
मांगु प्रभु मुज मन थकी, न वीसरो क्षणमात्र ॥"

प्रभु के प्रति उनका अनन्य प्रेमानुराग कभी-कभी उन्हे दर्शन के लिये उत्कठित कर देता है, काश ! उनके तन में पाख और चित्त मे आख होती !

"होवत जो तनु पाखड़ी, आवत नाथ हजूर लाल रे।
जो होती चित्त आखडी, देखण नित्य प्रभु नूर लाल रे ॥

भक्त कवि की कोमल-भावनाओं का माधुर्य देखिये—

"प्रभु जीव-जीवन भव्यना, प्रभु मुज जीवन-प्राण ।
ताहरे दर्शने सुख लहुं, तूं ही ज गति स्थिति जाण ।।
धन्य तेह जे नित्र प्रह समे, देखे श्री जिनमुख चद ।
तुज वाणी अमृत रस लही, पामे ते परमानद ।।"

प्रभु को पाकर उनकी सारी मिथ्या वासना एव वितृष्णा दूर हो गई है । उन्हे और कुछ भी नही चाहिये—

"दीठो सुविधि जिणंद, समाधिरसे भर्यो हो लाल ।। स ।।
भास्यो आत्मस्वरूप, अनादिनो वीसर्यो हो लाल ।। अ. ।।

कवि केवल भगवद् स्वरूप को ही भक्ति का आधार मानकर नही चल रहे हैं। अपितु प्रभु के सौन्दर्य-निरूपण को भी भक्ति का अग मान कर वर्णन करते हैं ।

"जिनजी तेरा भाल विशाला
सित अष्टमी शशी सम सुप्रकाशा, शीतल ने अणियाला ।
× × ×
"अति नीके भ्रू जिनराज के ।
अक रत्न द्युति सब हारी, श्याम सुकोमल नाजुके ।"
× × ×
"हुं तो प्रभु ! वारी छुं तुम मुखनी
भ्रमर अर्ध शशी, धनुह कमल दल, कीर हीर पूनम शशी की ।
शोभा तुच्छ थई प्रभु देखत, कायर हाथ जेम असिनी ।।"

भ्रमर से लेकर पूनम शशि तक के आठ उपमान एक ही पंक्ति में देकर कवि ने अपने अनूठे रचना कौशल का परिचय दिया है। ये उपमान क्रमश: प्रभु के केश, भाल, भ्रू, नेत्र, नासिका, दांत एवं मुख के लिये प्रयुक्त हैं। नारी का

सौन्दर्य मदमस्त करता है किन्तु प्रभु का सौन्दर्य "न वधे विषय विराम" का एक अद्वितीय उदाहरण है।

श्री सिद्धाचल, गिरनार, सम्मेत शिखर आदि पवित्र तीर्थस्थलों के प्रति आपके हृदय मे अनन्य भक्ति थी। अपने इस भक्तिरस को स्तवन-स्तुतियों के द्वारा आपने खूब छलकाया है।

वस्तुत: श्रीमद् की भक्त दशा अत्यन्त उच्चकोटि की है।

ऊँच्चआत्मदशा, अद्‌भूत वैराग्य, एवं निजानंद मस्ती:

व्यक्ति के उद्‌गार उसके अन्तरंग भावों के परिचायक होते हैं। हृदय से निसृत उद्‌गारो में कभी कृत्रिमता नही होती। कविता कवि हृदय का दर्पण है। भक्त की स्तवना भक्त का हृदय है। ज्ञानी के ग्रन्थ उसका अन्तरंग जीवन है। अत: श्रीमद् के ग्रन्थों, स्तवनों एवं स्वाध्याय पदों से यह स्पष्ट अनुभव होता है कि श्रीमद् की आत्मदशा अत्यंत उच्चकोटि की थी। शरीर, इन्द्रिय और मन पर उनका गजब का काबू था। उनके विषयराग और कामराग की ज्वालायें शान्त हो गई थी। वे सतत अप्रमत्तदशा में रमण करते थे। यही कारण था कि उनका आत्म-जीवन मस्तीपूर्ण एव आनन्दमय था। उस आनन्द की मस्ती मे उनके जो उद्‌गार निकले वे वैराग्य की खुमारी और अनुभव ज्ञान की लाली से अतिदीप्त हैं। देखिये उनके आत्मदशा के उद्‌गार—

"आरोपित सुख भ्रम टल्यो रे भास्यो अव्याबाध।
समर्यो अभिलाषी पणो रे कर्त्ता साधन साध्य ॥"

"इन्द्र चन्द्रादि पद रोग जाणयो,
शुद्ध निज शुद्धता धन पिछाण्यो।
आतम-धन अन्य आपे न चोरे, कोण जग दीन वलि कोण जारे ॥"

जिन गुण राग-पराग थी, रे वासित मुज परिणाम रे।
तजशे दुष्ट विभावता रे, सरशे आत्तम काम रे ॥
जिन भक्ति रत चित्तने रे, वेधक रस गुण प्रेम रे ॥
सेवक जिनपद् पामशे रे, रसवेधित अय जेम रे ॥
परमातम गुण स्मृति थकी रे, फरश्यो आतम राम रे ॥
नियमा कंचनता लहे रे लोह ज्युं पारस पाम रे ॥

पौद्गलिक संबंधों से उनकी विरक्ति गजब की थी। देहधारी होते हुए भी वे विदेह थे। वैराग्य की तान मे अपने दोषों के लिये आत्मा पर उन्होने जो चाबुक लगाये एवं भविष्य के लिये जो उद्बोधन दिये वे बड़े मार्मिक हैं।

"हूं सरूप निज छोड़ी, रम्यों पर पुद्गले।
झील्यो उल्लट आणी विषय तृष्णा जले।
आश्रव बंध विभाव करूं रूचि आपणी,
भूल्यो मिथ्यावास दोष द्युं पर भणी ॥
अवगुण ढांकण काज करूं जिनमत क्रिया,
न तजूं अवगुण चाल अनादिनी जे प्रिया ॥
दृष्टिरागनो पोष तेंह समकित गणुं,
स्याद्वादनी रीत न देखुं निजपणुं ॥

आत्मा को उद्बोधन देते हुए एक पद में कहते हैं,

आतम भावे रमो हो चेतन ! आतम भाव रमो।
परभावे रमतां ते चेतन ! काल अनंत गमो हो ॥

उनके वैराग्य की खुमारी देखिये। मुनि चक्रवर्ती से भी अधिक सुखी हैं।

"समता सागर में सदा, झील रहे ज्युं मीन।
चक्रवर्ती ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ॥
निस्पृह, निर्भय, निर्मम, निर्मला रे, करता निज साम्राज्य।
'देवचन्द्र' आणाये विचरतां रे, नमिये ते मुनिराज ॥

जहा शान्त-निर्मलवृत्ति, परभाव त्यागवृत्ति एवं स्वानुभवरमणता है, वहाँ आनन्द का अक्षय स्रोत है। कहा है—'परंस्पृहा महादुखम्, नि: स्पृहत्वम् महासुखम्।" श्रीमद् का जीवन अवधूत योगी का जीवन था। आप घण्टो तक ध्यानमग्न एवं शुद्धोपयोग में लीन रहते थे। फलत: आपने जो निजानंदमस्ती 'अलखदशा' एवं 'आत्मसमाधि' का अनुभव किया वह अति अद्भुत है। उनकी 'निजानंद मस्ती 'अलखदशा' एवं आत्मसमाधि' की झलक देखिये :—

"प्रभु दरिसण महामेहतणे प्रवेश में रे।
परमानंद सुभिक्ष थयो, मुंज देश में रे ॥
— — — —
तीन भुवन नायक शुद्धात्तम, तत्त्वामृतरस वूठु रे ॥
सकल भविक वसुधानी लाणी, मारू मन पण तूठु रे ॥
मनमोहन जिनवरजी मुजने, अनुभव प्यालो दीधोरे ॥
पूर्णानन्द अक्षय अविचलरस, भक्ति पवित्र थई पीधोरे ॥
'ज्ञानसुधा' लालीनी ल्हेरे, अनादि विभाव विसार्यो रे ॥
सम्यगज्ञान सहज अनुभवरस, शुचि निजवोध समार्यो रे ॥

श्रीमद् जैनशासन के मर्मज्ञ विद्वान एवं पापभीरु महात्मा थे। उनका जीवन पूर्णरुपेण जिनाज्ञा समर्पित था। आपके विचारों मे अनेकान्त प्रतिष्ठित था। आपके जीवन में निश्चय और व्यवहार, ज्ञान और क्रिया का विवेकपूर्ण सन्तुलन था। क्यों-

कि उनका शास्त्रज्ञान, आत्मज्ञान के रुप में परिणित हुआ था। यही कारण है कि उन्होने अपने जीवन में बहुत कुछ साधलिया था[1]।

शुष्कज्ञान या जड क्रिया कभी भी आत्म साधक नही बन सकती- इस बात का सटीक प्रतिपादन करने के साथ आपने अपने जीवन में ज्ञान और क्रिया को उचित अवकाश दिया। उनका पूर्ण विश्वास था कि क्रिया के सम्यक् प्रवर्तन के लिए ज्ञान की आवश्यकता है और ज्ञान की परिपक्वता के लिए सम्यक् क्रिया की आवश्यकता है। श्रीमद् ने अपने शास्त्रज्ञान को देव गुरू की सेवा और भक्ति, शुद्ध संयम का पालन, उपदेशप्रवृति, संघ और शासन की सुरक्षा एवं ग्रन्थ रचना आदि शुभ कार्यो के द्वारा आत्मज्ञान के रुप में परिणत किया था। आपने गांव गांव में विचरणकर तीर्थयात्रा, धर्म प्रभावना आदि के साथ चतुर्विध श्रीसघ को तत्त्व ज्ञान का उदारहृदय से दान देकर आत्म कल्याण की सच्ची राह बताई थी। इस प्रकार वे निश्चय की तरफ पूर्ण लक्ष्य रखते हुए। सच्चे ज्ञानयोगी एवं सच्चे कर्मयोगी महात्मा थे।

श्रीमद् आत्मसाधक होने के साथ अपने समय के संघ व शासन के सजग प्रहरी थे। आपने तत्कालीन संघ की हीन दशा को सुधारने का अपना उत्तर-दायित्व यथाशक्य निभाया था। श्रीमद् के समय मे समाज में तत्त्वज्ञान की रूचि बहुत कम थी। साधुओ को स्थिति भी बहुत अच्छी नही थी। आत्म ज्ञानी और

१—आचार्य बुद्धिसागर सूरी जी ने 'श्रीमद् देवचन्द्र भाग दो की प्रस्तावना मे तथा, पादशकरजी ने 'देवचन्द्र जी का जीवन' पृ० ८८-८९ में इस बात को सही माना है कि श्रीमद् एकावतारी है और अभी केवल ज्ञानी के रुप में महाविदेह में विचरण कर रहे हैं।"

संवेगी मुनि भगवन्त वहुत अल्प संख्या मे थे। ज्ञान विना सम्यक् क्रिया का प्रवर्त्तन नही हो सकता, यही कारण था कि जैन समाज क्रियाजड़ता में आवद्ध हो गया था। क्रिया के क्षेत्र में भेड़ चाल थी। उपदेशक भी ऐसे ही थे। ज्ञानशून्य क्रिया के पालन में ही गुरू और भक्तसच्चे धर्मात्मा, संयमी और समकितधारी होने का संतोष मनालेते थे। ज्ञानियो का आदर भाव कम था। श्रीमद् को संघ की इस दशापर वड़ा दुख था। इस अन्तर्पीड़ा को उन्होने प्रभु के सम्मुख मार्मिक शब्दो में प्रकट को है।

'द्रव्य क्रिया रूचि जीवड़ा रे, भाव धर्म रूचि हीन।
उपदेशक पण तेहवा रे, शुं करे जीव नवीन रे ॥
चन्द्रानन जिन.

तत्त्वागम जाणग तजी रे, वहु जन सम्मत जेह।
मूढ़ हठी जन आदर्यों रे, सुगुरू कहावे तेह रे ॥ चन्द्रानन जिन
आणा साध्य विना क्रिया रे, लोके मान्यो रे धर्म।
दसणनाण चरित्तनो रे, मूल न जाण्यो मर्म रे ॥ चन्द्रानन जिन

जब तक सम्यक्ज्ञान की भूमिका पर क्रिया की प्रतिष्ठा नही होती तब तक अहं, ममत्त्व एवं झूठा अभिमान नष्ट नही होता। अनेकान्त दृष्टि नही आती। शास्त्रज्ञान, राग-द्वेष को शांत नही कर सकता। फलतः साधु जीवन में भी अपनी झूठी मान-मर्यादा और महत्त्व को टिकाये रखने के लिये निरर्थक कलेश की उदीरणा कर लेते हैं। तथा गच्छ कदाग्रह में पड़कर अपनी अपनी मान्यताओं का पोषण और दूसरों की मान्यताओ का खण्डन कर समाज में द्वेष और क्लेश का वातावरण उत्पन्न करते है। श्रीमद् अपने गच्छ और परम्परा के प्रति श्रद्धालु होते हुए भी आत्मा को कलुषित करने वाले झूठे ममत्त्व में कभी नहीं पडे। समर्थ विद्वान होते हुए भी कभी किसी के प्रति क्लेशपूर्ण उद्गार नही निकाले। सच्चे स्याद्वादी

के लिए यही शोभनीय होता है। स्याद्वादी सदा परमत सहिष्णु होता है। क्रिया जन्य मतभेदो के अन्दर रहे हुए आत्मज्ञान का दर्शक होता है। श्रीमद् ने अपने प्रभु स्तवनों में स्याद्वाददशा की प्राप्ति की सुन्दर याचना की है।

"वीनती मानजो, शक्ति ए आपजो
भाव स्याद वादता शुद्ध भासे"

महात्मा आनन्दघन जी की तरह श्रीमद् ने उन तथाकथित अध्यात्म ज्ञानियो को, पू. उपाध्यायजी यशोविजय जी की तरह कसकर चाबुक तो नही लगाई किन्तु विनम्र शब्दों में असर कारक शिक्षा अवश्य दी है।

'गच्छ कदाग्रह साचवे, माने धर्म प्रसिद्ध।
आतम गुण अकषायता, धर्म न जाणे शुद्ध॥
तत्वरसिक जन थोड़ला रे, बहुलो जन सम्वाद।
जाणो छो जिनराज जी रे, सघलो एह विवाद रे॥

चन्द्रानन जिन.

श्रीमद् का सर्वगच्छ समभाव केवल वाचिक ही नही था किन्तु व्यावहारिक था। उन्होंने तत्कालीन शिथिलाचार के विरूद्ध संवेगी साधुजनों को संगठित होने का आव्हान किया था। जैन संघ मे एकता स्थापित करने का यथाशक्य प्रयत्न किया था। धर्मसागर जी द्वारा समाज में जो कटुता पैदा की गई थी उसे आपने यथाशक्य धो डालने का प्रयास किया था। यही कारण है कि तत्कालीन सभी संवेगी मुनिभगवन्त ज्ञानविमलसूरिजी, क्षमाविजयजी आदि के साथ आपका अच्छा स्नेह संबध था। जिनविजयजी, उत्तमविजयजी एव विवेकविजयजी के जीवन को तेजस्वी बनाने में आपका पूरा पूरा सहयोग रहा। अत. सभी गच्छवालों के लिए आप श्रद्धापात्र थे और आज भी हैं। श्रीमद् की एक ही इच्छा रहती थी की सभी आत्मा तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर प्रभु के सच्चे अनुयायी बने।

श्रीमद् के समय की अपेक्षा आज की स्थिति भी कोई अधिक सन्तोष जनक नही है। अत: श्रीमद् का ज्ञान क्रिया मे सुवासित व्यक्तित्व और कृतित्त्व आज भी वही महत्व रखता है।

–उपसहार–

श्रीमद् १८ वी शताब्दी को उज्ज्वल करनेवाले युग प्रवर्तक, महान् आध्यात्मिक नेता थे। विद्वत्ता के साथ साधुता के सुमेल के कारण आपका व्यक्तित्व निर्दोष, निष्कलक एवं सर्वातिशाही था। यद्यपि श्रीमद् आचार्य न बने, ऐसे त्यागी, निस्पृही महात्माओं के लिए पदवी भी उपाधि ही है—तथापि अपने अनन्य दुर्लभ अनेक सद्गुणों के कारण सभी गच्छ में उनके प्रति जो आदर, भक्ति, श्रद्धा और बहुमान था और आज भी है वह किसी भाग्यशाली को ही मिलता है। उन्होंने ज्ञान-योगी और कर्मयोगी का समन्वित जीवन जीकर स्वार्थ और परार्थ की जो साधना की, धर्म और समाज की जो सेवा की वह अपूर्व है। आज उनकी अविद्यमानता में भी उनके अनमोल ग्रन्थ मोक्षार्थियों के लिये मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं और भविष्य मे करते रहेगे। इस दृष्टि से यह कहना कोई अत्युक्ति नही है कि वे आचार्यों के भी आचार्य थे उस युग के प्रधान पुरुष व महान् आगमधर थे।

उनके हृदय मे प्रभु के प्रति सच्चा समर्पण, विचारो मे अनेकान्त, वाणी में विवेक एव आचरण मे कठोर सयम साधना थी। यही कारण है कि तत्कालीन साधु-समाज एव सघ मे आपका अद्वितीय प्रभाव था।

धर्मसागर जी की गलत प्ररुपणाओ के कारण १७ वी शताब्दी में जैन सघ की एकता छिन्न–भिन्न हो चुकी थी। ऐसे कदाग्रह के वाद पू. जिनविजय जी पू उत्तमविजयजी एव पू विवेकविजयजी जैसे तपागच्छ के स्तंभभूत मुनियों का गुरुभक्त शिष्यों की तरह आप से शास्त्राध्ययन करना, इतना ही नही इस प्रसग

को चिरंजीवी बनाने के लिए अपने अपने ग्रन्थो में आदर पूर्वक इसका उल्लेख करना एवं श्रीमद् की स्नवना करना, कोई सामान्य बात नही है। पन्यास पद्मविजय जी जो कि ४५ हजार गाथाओ के रचयिता, 'पद्मद्रह' के नाम से प्रसिद्ध है, उन्होने उत्तमविजय जी 'निर्वाणरास' मे आपके लिए क्या ही भव्य उद्गार निकाले हैं।

"खरतरगच्छमाही थया रे लोल,
नामे श्री देवचन्द्र रे सोभागी,
जैन सिद्धान्त शिरोमणी रे लोल।
धैर्यादिक गुणवृन्द रे सौभागी॥
देशना जास स्वरुपनी रे लोल........

पन्यासजी श्रीमद् के लिए जैन सिद्धान्त शिरोमणी एवं "धैर्यादिक गुणवृन्द" जैसे विशेषण देते हैं तथा उनकी देशना को आत्म स्वरुप का प्रकाशन करने वाला कहा है। पन्यासजी ने जो कुछ कहा उसमे जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है, क्योकि वे गृहस्थी में और साधु बनने के बाद भी श्रीमद् के निकट परिचय मे रहे थे। उन्होंने जो कुछ कहा वह श्रीमद् के जीवन का साक्षात् अनुभव करके कहा है।

मस्तयोगी ज्ञानसारजी ने भी 'साधुपद सज्झाय' के टब्बे मे श्रीमद् को महान् आत्मज्ञानी, वक्ता महापण्डित, महाकविराज आदि विशेषणों द्वारा संबोधित किया है। उन्होने कहा है कि श्रीमद् को एक पूर्व का ज्ञान था। ऐसे ऐसे महान् विद्वान् एवं ख्याति प्राप्त मुनिभगवन्तो ने जिनकी महत्ता, विद्वत्ता और साधुता की स्तुति की ऐसे श्रीमद् को युग प्रवर्त्तक कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नही हैं।

इस बीसवी सदी मे भी आपके सद्गुणों को समर्पित गुणानुरागी आत्माओं की कमी नही हैं। आज भी सभी गच्छो में आपकी प्रतिष्ठा है। महान्विद्वान् अनेक ग्रन्थो के रचयिता, योगनिष्ठ आचार्यदेव श्री बुद्धिसागरसूरिजी तो आपके

अनन्य अनुरागी थे। श्रीमद् के साहित्य से तो वे इतने प्रभावित थे कि जन-साधारण के लाभ के लिये श्रीमद् की कृतियो को भारी श्रम पूवक संग्रह कर श्रीमद् देवचन्द्र नामक दो भागो में प्रकाशित करवाई। तथा भाग दो की प्रस्तावना मे 'श्रीमद् के व्यक्तित्व और कृतित्व' के वारे मे जो भव्य उद्गार निकाले वे यथार्थ होने के साथ साथ उनकी साधुता एवं गुणानुराग के प्रतीक हैं। धन्य है, उन महात्मा बुद्धिसागरसूरिजी को जिन्होने गच्छ कदाग्रह से दूर रहकर 'सच्चा सो मेरा' का अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया।

इसी तरह अध्यात्मयोग साधक, संतहृदय स्वामीजी श्री ऋषभदासजी भी आपकी सात्विकत्ता पूर्ण तात्त्विक्ता के अत्यन्त अनुरागी थे। श्रीमद् की रचनाओ का अध्ययन कर उन्होने जो प्रेरणा एव मार्गदर्शन प्राप्त किया वह उनके ही शब्दों मे पढ़िये—

"वे बडे आगम-व्यवहारी, सच्चे अध्यात्म पुरुष थे और अर्हत् दर्शन की मान्यतानुसार वे बड़े आत्मयोगी पुरुष थे, इसमे कोई शक नही।"

"श्रीमद् 'देवचन्द्र' जी की साहित्य-रचना से प्रभु की प्रभुता, समर्पणभाव, आशय विशुद्धि का आधार लेकर, ही मैं आत्मयोग सरोवर मे चचुपात कर रहा हू। समुद्र के प्रवास में जैसे प्रवहण ही आधार रूप है, इसी तरह से इनके प्रवचन रूपी प्रवहण, मेरी आत्मयोग साधना में मेरे लिये पुष्टावलंबनरूप है। अगर यह आधार न मिला होता तो इस भयानक भवसागर को पार करने का साहस भी नही होता।"

इस तरह आपके ग्रन्थो का रसास्वादन कर कई अध्यात्मप्रमी, आत्माओ ने आपके चरणों मे भावात्मक श्रद्धा-सुमन अर्पित किये हैं और कई हृदय मूकरूपेण प्रतिदिन अर्पित कर रहे हैं।

'सहुस्थापे अहमेव' के युग मे आपने तत्त्वज्ञानपूर्ण ग्रन्थों, भक्ति से भरे स्तवनों एव वैराग्यपूर्ण सज्झायों आदि के रूप मे जो भेट दी वह समाज की अनमोलनिधि है। न मालूम कितने भाग्यशाली आत्मा उनके ज्ञानसुधासिन्धुर मे अवगाहन कर अजर, अमर, अविनाशी बनेगे। वस्तुत: उनके ग्रन्थो का चिन्तन, मनन और अनुशीलन आत्मस्वरूप का भान कराने मे परम सहायक है।

श्रीमद् का जीवन इन्द्र-धनुष की तरह बहुरगी एवं विराट है। इतना कुछ लिखने पर भी उनके जीवन के कई पहलू अछूते रह जाते हैं। अत: उनके व्यक्तित्व का साक्षात्कार करने के लिये उनके ज्ञानसमुद्र मे डुबकियाँ लगाना ही आवश्यक है। इसलिये, मुमुक्षु आत्माओ से मेरा नम्र अनुरोध है कि दृष्टिराग का त्यागकर श्रीमद् के ग्रन्थो का अध्ययन-मनन करे और आत्मदशा का भान कर शिव सुख का वरण करे।

श्रीमद् का जीवन-चरित्र लिखते लिखते कई बार मुझे कालिदास का वह कथन याद आता रहा कि—

क्व सूर्य प्रभवो वंश, क्व चाल्प विषया मतिः।
तितीर्षु र्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥
कहां उनके व्यक्तित्व की भव्यता!
और कहां मेरी अज्ञता!
कहां उनके कृतित्व की महानता!
और कहां मेरे शब्दो की तुच्छता!

उनके 'सागरगंभीर' व्यक्तित्व की मेरी अल्पमति से थाह पाने का प्रयत्न करना मेरा दुस्साहस ही होगा, किन्तु वाचकवर्य 'उमास्वातिजी' ने जो कहा है कि—

"यच्चासमंजसमिह, छन्द शव्दार्थतो मयाऽभिहित्तम्
पुत्रापराधवन्मम मर्षयित्तव्यं वुधै सर्वम् ॥"

इस क्षमायाचना के स्वर में स्वर मिलाकर मैं भी कहती हूं कि–'श्रीमद् के जीवनवृत्त का आलेखन करने में त्रुटियां रहना स्वाभाविक है, किन्तु मैं उन वात्सल्यमूर्त्ति, अध्यात्मयोगी, महान् सन्त के परम–पावन चरणारविन्दों में श्रद्धावनत हो इस अनधिकार चेष्टा के लिये पुन पुनः क्षमायाचना कर लेती हूं। वे भी मुझे क्षमा करे।

श्रीमद् की कीर्ति सर्वभक्षी काल का उपहास करती हुई, दो सदियों से अखण्ड रूप से चली आरही है और भविष्य मे भी चलती रहेगी, यह निर्विवाद है। श्रीमद् जैसे समभावी, गच्छ कदाग्रह मे दूर, जिनाज्ञा समर्पित, आगमधर, ज्ञानयोगी एव कर्मयोगी जगत् में आत्मप्रेम के पूर वहानेवाले, जगत् मे मैत्री भाव का प्रसारकर आत्मसौन्दर्य की झाँकी करने वाले महापुरुष का व्यक्तित्व और कृतित्व, अज्ञानांधकार मे भटकती हुई आत्माओं के लिए प्रकाश स्तभ (Search Light) वनकर सदा-सदा के लिए दिशानिर्देश करते रहे, यही मगल कामना है।

वन्दना के इन स्वरों में............

अन्त मे श्रीमद् के अनन्य अनुरागी आचार्य प्रवर श्री वुद्धिसागरसूरिजी के शव्दों द्वारा श्रीमद् के पावन-चरणो मे श्रद्धा-सुमन अर्पित करती हुई यह इतिवृत समाप्त करती हू।

"ज्ञान दर्शन चारित्र, व्यक्तरूपाय योगिने।
श्रीमते देवचन्द्राय, संयताय नमो नमः॥

× × × ×

[इक्यानवे]

"संभूत अन्तरात्मा य, आत्मानुभववेदकः।
अप्रमत्तदशायोगी, जिनेन्द्राणां प्रसेवकः॥

श्रुतागम प्रलीनाय, भक्ताय ब्रह्मरागिणे।
चिदानन्दस्वरूपाय, सर्वसंघस्यरागिणे॥

ध्यानसमाधिरक्ताय, विश्ववन्धाय साधवे।
श्रीमते देवचन्द्राय, पूर्णप्रित्या नमो नमः॥

(देवचन्द्र-स्तुति)

और कहती हूं कि—

वन्दना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो ....

खरतरगच्छीय जैन धर्मशाला
पाली (राज०)
सं० २०३४, वैशाखी पूर्णिमा

सन्त-चरण-रज
साध्वी हेमप्रभा श्री

शुद्धि--पत्र

पृष्ठ	गाथा	अशुद्ध	शुद्ध
२४	४	ता	तो
५६	२	सहुणी	साहुणी
५९	१	मुमता	सुमता
७६	२०	कृननीतीर्थ	कृतनीतीर्थ
७६	२०	दीर्घकाजी	दीर्घकाली
८१	३	ए खत	ऐर वत
८१	४	पयत्ना	पयन्ना
९२	३	महता	महंत
९६	५	मीना	मानो
१०९	१	अनहार	अनुहार
११२	फुट नोट ४ में १ लाख के स्थान पर ९१ लाख समझना		
१२५	८	आतार	आचार
१२८	२	द्रढय	द्रव्य
१३६	५	संयम	संयम
१३८	१	उपयाग	उपयोग
१४४	७	धर ने	धर जे
१४५	९	जाव	जीव
१५८	३	शुल्क	शुक्ल
१६२	३	मंडार	भडार

पृष्ठ	गाथा	अशुद्ध	शुद्ध
१७०	११	स्यारथवंत	स्वारथवंत
१७६	१२	उम्माद	उन्माद
१८९	२८	सख	सर्व

१७४ फुट नोट में शब्दार्थ के अर्थ इस प्रकार समझे—

१ को ३ का अर्थ

२ को ४ का ,,

३ को ५ का ,,

४ को ६ का ,,

५ को ७ का ,,

६ को १ का ,,

७ को २ का ,,

तेईस पृष्ठ फुट नोट संख्या २ को चौवीस पृष्ठ का फुट नोट २ का समझे।

पच्चीस पृष्ठ का फुट नोट १ को चौवीस पृष्ठ के फुट नोट का समझें।

आगामी आकर्षण

श्रीमद् देवचन्द्र जी महाराज की प्रथम कृति

—: ध्यान दीपिका चतुष्पदी :—

जिसमें ध्यान जैसे गूढ़, गहन एवं गंभीर विषय का सरल विवेचन है। इसमें छः खंड, अट्ठावन ढालें, बारह भावनाएँ, पंच महाव्रत, धर्म ध्यान शुक्ल ध्यान, पिंडस्थ, रूपस्थ एवं रूपातीत ध्यान के गूढ़ तत्वों का सुन्दर निरूपण किया गया है। यह अपने विषय की राजस्थानी पद्यों में सरल व सुगम अद्वितीय कृति है।

इसे शीघ्र ही प्रकाशित किया जा रहा है।

मंगल

धरम उछव समै जैन पद कारणै उत्तम मगल आचरै ए।
भाव मगल तिहां देव अरिहंत प्रभु जेहथी परम मंगल वरै ए॥
तेहना नाम नै जाउ हूं भामणै[1] खिण खिण हरख समरण करै ए।
पंच कल्याणके जेम सुरपति करै तेम जिन भगति भवि आदरै ए॥१॥
भाव मंगल तणी पुष्टता[2] कारणै द्रव्य मंगल भलां कीजियै ए।
तिहा गुण पूर्णता ईछता भदिक जन कुंभ थिर पूरण लीजियै ए॥
पदम आसन ठव्यो पदम पत्रै व्यौ मंत्र पवित्र थी जापीयै ए।
जिनवर जिमण[3] दिसि हरख भर हीयडै पूरण कलश नै थापियै ए॥२॥
माहरा नाथ नै परम मंगल हुज्यो मंगल संघ चोविह भणी ए।
मंगल तीर्थ ने मंगल चैत्य ने मंगल तेह करता[4] भणी ए॥
मंगल सिद्धाचले मंगल गिरनारै मंगल तेह करता भणी ए।
जैन शासन तणो हरखि मंगल करै तेण आणंद अति ऊपजै ए॥
च्यवन(अवन)अवसर सभै मात ना गर्भ में इन्द्र नै हरख जे संपजै ए॥३॥
तेम प्रासाद नी थापना अवसरै कूंभ थापन समै हरखीयै ए।
जेम संसार ना कारज कारणै लोक संसार मंगल करै ए॥
तेम जिन धर्म ना वृद्धि नै कारणै श्राविकासु विधि मंगल धरै ए।
परम आनंद भरि धन्यता मानतां गीत मंगल धुनि ऊचरै ए॥
देवना देवनै मंगल कीजतां **देवचन्द्र** पद अनुसरै ए ॥४॥

॥ **इति मंगलम्** ॥

१—पुष्टि नै २—जमणी दिसे ३—हियड़लै ४—कारण
१—व।लहारी, न्यौछावर २—प्रभु के दांई ओर कलश रखना।

नमस्कार

त्रिभुवन जन आनन्द कद चदन जिम सीतल
ज्ञान भानु भासन समस्त जीवन जगती तल
उत्कृष्टे जिनराज देव सत्तरिसो[1] लहीयै
नव कोडी केवलि मुनीस सहस नव कोडी कहियै ॥१॥

वर्त्तमान जिन ईम वीस दो कोडी केवलि
महस कोडि दुग साधु सत वदो नित वलि वलि।
प्रणमी गणधर सिद्ध सर्व स्वामि सवि जीव
आलोई पातक अढार मिथ्यात्व अतीव ॥२॥

सुकृत क्रिया अनुमोदि जीव भावो इम भावना
तजि स्यूं हु कर्म सवि विभाव परभाव कुवासन
तत्त्व रमण रस रग राचि रत्नत्रय लीनो
सुद्ध साधन रसी निज अनुभव भीनो ॥३॥

करी कर्म चकचूरि भूरि केवल पद पामी
अव्याबाध अनंत शान्ति लहस्यु हुं स्वामी
ए रुचि ए साधन सदीव[2] करतां सुख लहीयै
देवचद सिद्धान्त तत्त्व अनुभव रस गहीयै ॥४॥

इति नमस्कार

१– १७० २– सदैव

श्री वज्रंधर जिन स्तवन

(नदी यमुना के तीर । ऐ देशी)

विहरमान भगवान सुणो मुझ वीनति ।
जगतारक जगनाथ, अछो त्रिभुवन पति ॥
भासक लोका लोक, तिणे जाणो छती ।
तो पण वीतक वात, कहूं छूं तुझ प्रति ॥१॥

हूं सरूप निज छोडि, रम्यो पर पुद्गले ।
झील्यो उल्लट आणी, विषय तृष्णाजले ॥
आश्रव बंध विभाव, करुं रुचि आपणी ।
भूल्यो मिथ्यावास, दोष द्युं परभणी ॥२॥

अवगुण ढांकण काज. करूं जिनमत क्रिया ।
न तजुं अवगुण चाल, अनादिनी जे प्रिया ॥
दृष्टिरागनो पोष, तेह समकित गणुं ।
स्याद्वादनी रीति, न देखुं निजपणुं ॥३॥

मन तनु चपल स्वभाव, वचन एकान्तता ।
वस्तु अनन्त स्वभाव, न भासे जे छता ॥

जे लोकोत्तर देव, नमूं लौकिकथी ।
दुर्लभ सिद्ध स्वभाव, प्रभो तहकीकथी ॥४॥

महाविदेह मझार के, तारक जिन वरु ।
श्रीवज्रंधर अरिहन्त, अनन्त गुणाकरु ॥

ते निर्यामक श्रेष्ठ, सही मुझ तारसे ।
महावैद्य गुणयोग, रोग भव वारशे ॥५॥

प्रभु मुख भव्य स्वभाव, सुणूं जो माहरो ।
तो पामे प्रमोद, एह चेतन खरो ॥

थाय शिव पद आश राशि सुखवृन्दनी ।
सहज स्वतन्त्र स्वरुप, खाण आणंदनी ॥६॥

वलग्या जे प्रभु नाम, धाम तेगुणतणा ।
धारो चेतनराम एह थिरवासना ॥

देवचन्द्र जिनचन्द्र, हृदय स्थिर थापजो ।
जिन आणायुत भक्ति, शक्ति मुझ आपजो ॥७॥

पार्श्व जिन चैत्य वंदन

जय जिणवर जय जगनाह, जय परम निरंजण ।
जय परमेश्वर पास नाह, दुख दोहग भंजण ।।
वामा उरवर[1] हंसलो ए, मुनिवर मन आधार ।
समरता सेवक भणी, तु तारे संसार ।। १ ।।

च्यवन चैत्र वदि चोथ (दिन), नमीया सुर (नर) इंद ।
दशम पोष वदी (शुभ समे), जन्म थय जिनचंद ।।
मेरु शिखर नवरावीयो ए, मली चौसठ सुरिंद ।
पाप पंक निज धोयवा, लेवा परमानंद ।। २ ।।

पोषह वदी इग्यारसे, प्रभु संजम लीधो ।
धीर वीर खंति[2] पमुह, गुण गणह समिद्धो ।।
लोका लोक प्रकाशकर, पाम्या केवल नाण ।
चैत्रह वदि चउथी दिवस, अतिशय गुणह पहाण ।। ३ ।।

श्रावण सुदि आठम दिवस, जिण शिवपुर पत्तो ।
श्री सम्मेते अड अनंत, अविचल गुण रत्तो ।।
कल्याणक जिनवर तणा ए, आपे परम कल्याण ।
देवचंद्र गणि संथुवे, पास नाह जग[3] भाण ।। ४ ।।

१—वामा माता के हृदय-सरोवर के हंस २—क्षमा आदि ३—जगत् मे सूर्य समान

प्रभु स्मरण पद

(तर्ज...... .. .. बेर बेर नहिं आवे)

प्रभु समरण की हेवा[1] रे हमकु प्रभु०
प्रभु[2] समरण सुख अनुभव तोले, नांवे अमृत कलेवा रे....हम कु .१
एक[3] प्रदेश अनंत गुणालय, पर्यय अनंत कहेवा रे ....हम कु .२
पर्यय पर्यय धर्म अनंता, अस्ति नास्ति दुग भेवा रे....हम कु .३
प्रभु जाने सो सब कु जाने, शुचि भासन प्रभु सेवा रे....हम कु .४
देवचंद सम आतम सत्ता, धरो ध्यान नित मेवा रे....हम कु ५

पद

(राग--जय जय वती)

ज्ञान अनंतमयी, दान अनंत लई;
वीर्य अनतकरी, भोग अनत है १
क्षमा अनत संत, मद्दव अज्जव वंत;
निष्पृहता अनंत भये, परम प्रसंत है २
स्थिरता अनंत विभु, रमण अनंत प्रभु;
चरण अनंत भये, नाथ जी महंत है ३
देवचन्द को है इद, परम आनंद कंद:
अक्षय समाधि वृंद, समता को कंत है ४

१–आदत २–प्रभु–स्मरण से जो सुख होता है, उसके तुल्य सुख अमृत का कलेवा भी नही दे सकता है। ३–प्रभु का एक एक प्रदेश अनंत गुणो का आश्रय है और एक २ गुण की अनत २ पर्याय है तथा एक २ पर्याय में अनत २ धर्म है।

श्री ऋषभ जिन स्तवन

राग—प्रभाती

आज आणंद वधामणा, आज हर्ष सवाइ।
ऋषभ जिनेश्वर वंदीये, अनुपम सुखदाइ ॥आज.॥१॥

सारथवाह भवे लही, शुचि[1] रुचि हितकारी।
आनंद वैद्य भवे करी, मुनि सेवा सारी ॥आज.॥२॥

चक्री भव संजम लही, थानक[2] (वीस) आराधी।
सर्वार्थ सिद्धथी चवी, जिन[3] पदवी लाधी ॥आज॥३॥

काल[4] असंख्य जिन धर्म नो, प्रभु विरह मिटायो।
गणधर मुनि संघ थापना, करी सुख प्रगटायो ॥आज॥४॥

मरु देवा सुत देखतां, अनुभव रस पायो।
देवचंद्र जिन सेवना, करि सुजस उपायो ॥आज.॥५॥

१—सम्यग्दर्शन—समकित २—वीसस्थानक तप ३—तीर्थंकर पद ४—ऋषभदेव भगवान ने १८ कोड़ा कोड़ी सागर तक लुप्त हुए धर्म का पुनः प्रवर्तन किया, इस तरह भव्य जीवों के लिये इतने दिन का जो धर्म का वियोग था, उस वियोग को मिटाया।

रत्नाकर पच्चीसी भावनुवाद रूप बीनती स्तवन

श्रेय[1] श्री रति गेह छो जी, नर[2] सुर पति नत पाय ।
सर्व जाण[3] अतिसय निधीजी, जय उपयोगि[4] अमाय ॥१॥

जगत गुरु बीनतडी अवधार ।
जग आधार कृपामयी जो, निष्कारण जग बन्धु ।
भव विकार[5] गद टालवा जी, वैध अछो गुण सिंधु ॥२॥ज ॥

जाण भणी जे भाखवु जी, ते तो भोलिम भाव ।
पिण अशुद्धता आपणी जी, बीनवियै लहि[6] दाव ॥३॥ज ॥

मावीत्र आगल बालके जी, स्यु लीलै न कहाय ।
साचु पश्चाताप थी जी, निज आशय कहिवाय ॥४॥ज ॥

दान शील तप भावना जी, जिन[7] आणायै न कीध ।
वृथा भम्यो भव सायरे जी, आतम हित नवि लीध ॥५॥ज ॥

क्रोध अगनि दाधो[8] घणु जी, लोभ महोरग[9] दष्ट ।
मान ग्रस्यो माया कल्योजी, किम सेवु परमेष्टि ॥६॥ज ॥

हित न कर्यो मैं परभवे जी, इह पण नवि सुख चूप ।
हे प्रभु अम गत भव कथाजी, केवल पूरण रूप ॥७॥ज॥

१–मुक्ति मगल और क्रीडा के घर हो २–नरेन्द्रो, देवेन्द्रों से पूजित है पैर जिनके
३–सर्वज्ञ ४–विपुल ज्ञान सम्पदा के भण्डार, ५–संसार रूपी रोग, ६–समय पाकर
७–प्रभु की आज्ञा ८–जलना, ९–अजगर

प्रभु[1] मुख चन्द्र सयोग थी जी, महानन्द रस जोर।
नवि प्रगट्यो तिण वज्र थी जी, मुझ मन अतिहि कठोर ॥८॥ज॥
भव भमिवै दुर्लभ लही जी, रत्नत्रयी तुम साथ।
ते हारी निज आलसै जी, किहां पुकारूं नाथ ॥९॥ज॥
मोह विजय वैराग्य जे जी, ते पर रंजन काम।
निज पर तारन देशना जी, ते जन रंजन ठाम ॥१०॥ज॥
विद्या तत्व परिखवा जी, ते पर जीपण ढाल।
परम दयाल किती कहूँ जी, मुझ हासा नी चाल ॥११॥ज॥
पर निंदा मुख दुखव्यो जी, पर दुख चित्यो रे मन्न।
पर स्त्री जोगे आँखड़ी जी, किम थास्यु हूँ धन्न ॥१२॥ज॥
काम वसै विषपि पणै जी, भोग विडंबन वात।
ते स्यु कहीइ लाजताजी, जाणो छो जग तात ॥१३॥ज॥
परमातम पद नीपजे जी, श्री नवकार प्रभाव।
तेह[2] कुमंत्रि ध्वंसियोजी, इंद्री सुख नै दाव ॥१४॥ज.॥
श्री जिन आगम दूखव्यो जी, करी कुशास्त्र नो रंग।
अनाचार अति आचरया जी, भूलि कुदेव नै संग ॥१५॥ज.॥
दृष्टि प्राप्य प्रभु मुख तजी जी, ध्यावु नारी रूप।
गहन-विषै-विष-धूम थी जी, न रहुं आतम स्वरूप ॥१६॥ज.॥

१-प्रभु के मुखरूपी चन्द्र के दर्शनकरते हुए भी मेरे हृदय में आनन्द रुपी रस प्रकट नहीं हुआ, मेरा हृदय वज्र की तरह कठोर है। २-सांसारिक सुखों के लिये मैंने नवकार मन्त्र का दुरुपयोग किया।

मृग नयणी मुख निरखता जी, ऊँ लागो मन राग ।
न गयौ श्रुत जल धोवता जी, कुण कारण महाभाग ।।१७।।ज ।।
श्र ग १ चग गुणनवि कला जी, नविवर प्रभुता रे काय ।
तो पणि माचु लोक मे जी, मान त्रिडवित काय ।।१८।।ज.।।
प्रति क्षण-क्षण आउखो घटेजी, न घटे पातक बुद्धि ।
योवन वय याता वधै जी, विषयाभिलाप प्रवृद्धि ।।१९।।ज.।।
ओषध तनु रख वालवा जी, सेव्या आश्रव कोड़ि ।
पिण जिन धर्म न सेवीयो जी, ऐ ऐ मोह मरोडि ।।२०।।ज ।।
जीव कर्म भव शिव नही जी, क्रिट सुख वाणी रे पीध ।
तुझ केवल रवि जगम्यै जी, आप संभाल न कीध ।।२१।।ज.।।
पात्र भक्ति जिन पूजना जी, नवि मुनि श्रावक धर्म ।
रत्न विलाप परै करयौ जी, मुझ माणस नी जन्म ।।२२।।ज.।।
जैन धर्म्म सुखकर छते जी, सेव्यु विषय विभाव ।
सुरमणि² सुरघट³ ईहना⁴ जी, ऐ ऐ मूढ स्वभाव ।।२३।।ज ।।
भोग लीलते रोग छै जी, धन ते निधन समान ।
दारा कारा नरक ना जी, नवि चारूंए निदान ।।२४।।ज.।।
साधु आचार न पालीयो जी, न करयो पर उपगार ।
तीर्थ उद्धार न नीपनो जी, ते गयो जमारो हार ।।२५।।ज.।।
दुर्जन वचन खमै नही जी, श्रुत योगे नवि राग ।
लेश अध्यातम नवि रम्यो जो, किम लहस्यु भाव ताग ।।२६।।ज.।।

१– शारीरिक–स्वास्थ्य । २–चिन्तामणि । ३– कामघट । ४– चाहना ।

न करयो धर्म गयै भवै जी, करवइ पिण अति कष्ट ।
वर्तमान भव रगता जी, तिण तीने भव नष्ट ॥२७॥जग॥
प्रभु आगल स्यु [1] दाखवउं जी, मुझ आश्रव पर चार ।
तीन काल जाणग अछोजी, तरीये तुझ आधार ॥२८॥जग.॥
भद्रक [2] मुनि बुद्धइ नमै जी, तेमां हरखु रे आप ।
मुनि पद हुँस करूं नही जी, ए सबलो संताप ॥२९॥जग.॥
जिन मत वितथा [3] प्ररूपणाजो, करता न गणी रे भाति ।
जस इंद्री सुख लालचै जी, कीधु काल व्यतीत ॥३०॥जग.॥
तत्व [4] अतत्व गवेषणा जी, करवी पिण अति दूर ।
तत्व प्ररूपक मान थी जी, विस्तारूं भव भूरि ॥३१॥जग.॥
तुम सम दीन दयालुओ जी, नवि बीजो जिन राज ।
दया ठाम मुझ सारिखो जी, छै बीजो कुण आज ॥३२॥जग.॥
श्री **सिद्धाचल** मंडणो जी, **ऋषभदेव** जिन राज ।
रत्नाकर सूरे स्तव्यो जी, निर्मल समकित काज ॥३३॥जग.॥

कलश

निज नाण दमण चरण वीरज परम सुख रयणो[5] यरो ।
जिनचंद्र नाभि नरेद नंदन त्रिजग जीवन भायरो [6] ।
उवझाय वर श्री दीपचंदह सीस गणि देवचंद ए ।
संथव्यो[7] भगते भविक जन नें करो मंगल वृंद ए ॥३४॥

इति स्तवनं संपूर्णम्

१– क्या बताऊं ? २- भोले व्यक्ति मुनि बुद्धि से मुझे नमस्कार करते हैं ।
३– उत्सूत्र-प्ररूपणा ४– तत्त्व क्या है ? अतत्त्व क्या है ? इसका कोई विवेक नहीं है, फिर भी अपने आपको तत्त्व-प्ररूपक मानता हुआ, ससार वृद्धि करता हूं ५- रत्नाकर-समुद्र ६-भ्राता ७– स्तुति की

ध्यान चतुष्क विचार गर्भित श्री शीतल जिन स्तवन

दुहा— प्रणमी शीतलनाथ पय, सुख सम्पति दातार।
विघन विडारन भय हरण, धरि मनि भाव अपार ॥१॥

श्री सद्गुरू ना पय नमी, मन सु करीय विचार।
ध्यान[1] भेद संखेप सु, कहिसु मति अनुसार ॥२॥

ढाल १ रामचंद कइ बाग, एहनी।
चार ध्यान विसतार, सुणिज्यो भाव धरी री।
कहिस्यु श्रुत अतुसार, ग्रहि मनि टेक खरी री ॥१॥

आर्त्त रौद्र वलि धर्म, चउथउ शुकल थुण्यउ री।
कहिस्यु मति इक चित्त, जिम गुरू पास सुण्यउ री ॥२॥

संका मोह प्रमाद, कलह चित्त भय कारी।
भ्रम उन्माद विशेष, धन संग्रह अधिकारी ॥३॥

काम भोग नी चींत जे जन मन मइ रांखइ।
आर्त्त ध्यान तिण मांहि, लहीयइ इम श्रुत साथइ ॥४॥

प्रथम ध्यान ना पाय, च्यार कह्या श्रुत संगइ।
प्रथम अनिष्ट संयोग, बीजउ इष्ट वियोगइ ॥५॥

१— ध्यान के भेदों को बताते हुए।

तीजउ रोग निमित्त, मन मइं चित्त धरइ री ।
चउथउ सुख नइ काजि, जीव नियाण करइ री ॥६॥

यक्ष दैत्य विष साप, जल थल जीव सहू री ।
सायण डायण भूत, गाजै सीह बहू री ॥७॥

नयडइ[1] आव्यइ दु:ख, जे मन क्रोध करइ री ।
टालु दूरइ एह, मन मइं एम धरइ री ॥८॥

एहवउ दुष्ट स्वभाव, जिण रइ चित्त रहइ री ।
आर्त्त अनिष्ट संयोग, जिनवर तेथि कहइ री ॥९॥

भोग सुहाग[2] विशेष, चित्त वंछित सुह दाता ।
बांधव मित्र कलत्र, ऋद्धि पितृ वली माता ॥१०॥

हुयइ इष्ट वियोग, एहवउ ध्यान भिलइ री ।
करूं कोइ उपाय, जिण सुं इष्ट मिलइ री ॥११॥

इष्ट मिलेवा काज, मन संकल्प वहइ री ।
ध्यान ए इष्ट वियोग, बीजउ आर्त्त कहइ री ॥१२॥

कास श्वास ज्वर दाह, जरा भगंदर रोगा ।
पित्त श्लेश्म अतिसार, कोष्टा दिक ना योगा ॥१३॥

एहवइ उपनइ रोग, मन मइं चिंत करइ री ।
औषध करइ अपार, सुख कारण विचरइ री ॥१४॥

१– किसी भी तरह का दु:ख नजदीक आने पर। २–सौभाग्य

क्रोध मोह मद लुद्ध, मन मइ दुष्ट धरइ री।
रोग चित्त इण नाम, तीजउ आर्त्त कहइ री १५॥
राज रिद्धि सुख पूर, काम भोग नित चाहइ।
धन संतान निमित्त, देह कष्ट बहु साहइ[1] ॥१६॥
वासुदेव चक्रवर्ति सुर किन्नर पद काजइ।
इह लोक नइ परलोक, सुख वांछा मन छाजइ ॥१७॥
करइ तपस्या नित्त, मन मइं जे पद चाहइ।
भण्यउ नियाणो नाम, आर्त्त अंत्य अवगाहइ ॥१८॥

इति आर्त्तध्यान

दूहा—सदा त्रिशूलउ[2] शिर रहै, आंखे क्रोध अपार।
बोलइ इम कडुआ वचन, मुखइ मकार चकार ॥१॥
दुष्ट परिणामी खल सदा, विनयहीन वाचा (ल)।
....॥२॥
....

.......नवि करइ, प्रथम पायो तिण जाण रे ॥३॥ए.॥
एह मुझ जीव अनादि नो, कर्म जंजीर संयुक्त रे।
पाडुआ[3] कर्म कलंक थी, कीज स्यर किण दिन मुक्त रे ॥४॥ए.॥
आतम गुण परगट कदि हुस्यै, छोडि पर पुदगल संग रे।
एह विचार अहनिशि करै, एह बीजौ धूम अंग रे ॥५॥ए.॥

१—सन्तानादिक के लिये बहुत से कष्ट उठाना २—हमेंशा नाक भों चढ़ी रहना. ३—दुष्ट

जीव उदय शुभ कर्म रइ, पामइ छइ सुख अपार रे।
अशुभ उदय दुक्ख ऊपजइ, एह निश्चै करी धार रे ॥६॥ए॥
नरक भई दुक्ख जे तइं[1] सह्या, तेह आगइ किसूं एह रे।
पाय तीजइ इसउ चीतवइ, इम करइ भव[2] तणउ छेह रे ॥७॥ए.॥
शब्द आकार रस फरस सब, गंध संस्थान संघयण रे।
रूप ध्यावइ वली आपणउ, तजीय मोहादि वलि मयण[3] रे ॥८॥ए.॥
जीव जग तीन मइ छइ किना, जीव मइ तीन जगसार रे।
जीव वडउ जगत्रय वड्उ जीव जग तीन सिणगार रे ॥९॥ए॥
ए सरूप जगत्रय तणउ, चींतवइ चित्त मइं नित्य रे।
तेथि संस्थान विचय भवउ, पाय चउथउ धूम कित्त रे ॥१०॥ए.॥

दूहा—धरम ध्यान ध्याया पछी, सुख शिव पद दातार।
शुक्ल ध्यान ध्यावै भविक, आतम रूप उदार ॥१॥
च्यार पाय तिण शुक्ल ना, पृथक्त वितर्क्क विचार।
बीजउ शुक्ल सुहामणउ, एक तर्क्क अविचार ॥२॥
तीजउ शुक्ल श्रुतइ कह्यउ, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति।
चउथउ शुक्ल ध्यावइ सदा, छिन्न क्रिया प्रतिपाति ॥३॥

ढाल—मालीय केरे वाग मइ एहनी

एक द्रव्य परयाय सुं, शुकलइ मन लावउ लो। अहो शु०।
उतपति थिति इम अंग सुं, तिण मांहि मिलावइ लो। अहो ति० ॥२॥

१-„ने २-भवरूपी तृष्णा का छेद करना ३-काम-विकार

सात नय दो नय थकी, जगरूप विचारइ लो । अहो जग० ।
तीन योग इक योग सुं, मन मांहि उचारइ लो । अहो मन० ॥३॥
पृथक्त्व वितर्क विचारते, शुक्ल ध्यान कहावइ लो । अहो शु० ।
निश्चय मत ध्यावइ सदा, ते चढतइ दावइ लो । अहो ते० ॥४॥
एक वस्तु नय सात सुं, मांहो मांहि मिलावइ लो । अहो मां० ।
एह मिलइ दो नय थकी, ए च्यार मिलावइ लो । अहो ए० ॥६॥
केवल तदि पामी करी, ते ध्यान ज ध्यावइ लो । अहो ते० ।
एक तर्क अविचार ते, शुक्ल बीजउ पावइ लो । अहो शु० ॥७॥
अंत महुरत आयुष थकइ, ध्यान तीजइ ध्यावइ लो । अहो ध्या० ।
निज गुण मोक्ष आवी रह्या, दोय योग रुंधावइ लो । अहो दो० ॥८॥
एक योग वादर अछइ, तेहिज पिण रोकइ लो । अहो ते० ।
सूक्ष्म उसास नीसास सुं, निज रूप विलोकइ लो । अहो नि० ॥९॥
सूक्ष्म उच्छ्वास लेतउ थकउ, निश्चय पद धारइ लो । अहो नि० ।
सूक्ष्म क्रिया प्रति पातीयउ, तीय शुक्ल संभारइ लो । अहो ती० ॥१०॥
शैलेसी करतां थकां, सब जोग खपावइ लो । अहो स० ।
पांच अक्षर परिमाण में, अद्भुत पद ध्यावइ लो । अहो अ० ॥११॥
परबत जिम देह छोडि नइ, ते मोक्षइ जावइ लो । अहो ते० ।
ह्रस्व वर्ण इम पांच मइ, चउथउ शुक्ल आवइ लो । अहो च० ॥१२॥
दोय ध्यान सब जीव तउ, निश्चय करि ध्यावइ लो । अहो नि० ।
धर्म ध्यान भवि जीव जे, ते हिज ध्रुव पावइ लो । अहो ते० ॥१३॥
शुक्र ध्यान पंचम अरइ, निश्चय करि नावइ लो । अहो नि० ।
पहिलो सघयण नो धणी, शुक्ल ध्यान ज पावइ लो । अहो शु० ॥१४॥

श्री शीतल जिन वदता, दोय ध्यान न राखइ लो। अहो दो०।
धर्म ध्यान मन भावीयइ, **देवचंद** इम भाखइ लो। अहो दे० ॥१५॥

ढाल—पास जिणंद जुहारीयइ, एहनी

ध्यान च्यार मइ वर्णव्या, श्री आगम नइ अनुसारइ रे।
आर्त्त रोद्र नइ परिहरी, भविक धरम चित्त धारइ रे ॥१॥
श्री **शीतल** जिन वदना, हु करू अ सदा वार वारइ रे।
भवियण प्राणी जेहुवइ, ते तीजउ ध्यान सभारइ रे ॥२॥ श्री०॥
शुक्ल ध्यान हिवणा नही, इण पचम दूषम आरइ रे।
धरम शुकल दोइ ध्यान सु, तिण प्रीति घणी मन माहरइ रे ॥३॥ श्री०॥
युगप्रधान **जिणचंद** ना, शिष्य पाठक गुणे सवाया रे।
पुण्य प्रधान शिष्य गुण निला, श्री **सुमति सागर** उवझाया रे ॥४॥श्री०॥
साधुरंग वाचक वरू, तसुसीस पण्डित विख्याता रे।
राजसार पाठक अछइ, जे जिनमत सु अति राता रे ॥५॥श्री०॥
ज्ञान धर्म शिष्य तेहना, वाचक पद ना धारी रे।
तासु शीश **राज हंस नउ**, मुनि **राज विमल** सुविचारी रे ॥६॥श्री०॥
तिण ए ध्यान[1] तणउ रच्यउ, तवन शीतल जिन केरउ रे।
भणतां गुणता संपदा, दिन दिन उच्छव अधिकेरउ रे ॥७॥श्री०॥

इति श्री ध्यान चतुष्क स्तवन। प० देवचद्रकृतम् ॥
लिखितं पं० दुर्गदास मुनिना

पत्रांक २ नही है (पत्र ४ प. ११ अ ३६–४० आचार्य गच्छ भंडार

१–चार ध्यान के वर्णन से युक्त स्तवन की रचना की।

श्री धर्मनाथ स्तवन

राग- सारंग

हम इश्की[1] जिन गुण गान के (२)
पुद्गल[2] रुचिसु विरसी रसीले, अनुभव अमृत पान के ।हम.।।१।।

के इश्की वनिता[3] ममता के, के इश्की धन - धान के ।
हमतो लायक समता नायक, प्रभु गुण अनंत खजान के ।हम.।।२।।

केइक रागी है निज तन के, के अशनादिक खान के ।
के चितामणि सुरतरू इच्छक, केइ पारस[4] पाहान के ।हम ।।३।।

चिदानद धन परम अरूपी, अविनाशी अम्लान के ।
हम लयलीन पीन है अहनिशि, तत्त्व रसिक के तान के ।हम.।।४।।

धर्मनाथ प्रभु धर्म धुरंधर, केवल ज्ञान निधान के ।
चरण शरण ते जगत शरण है, परमातम जग भान के ।हम.।।५।।

भीति गई प्रगटी सब संपत्ति, अभिलाषी जिन आण के ।
देवचंद्र प्रभु नाथ कियो अब, तारण तरण पिछान के ।हम.।।६।।

१-प्रेमी २-पुद्गल के प्रेम से विरक्त होकर
३-स्त्री ४-पारस पत्थर

श्री शांतिनाथ स्तवन

(ढाल– वाल्हा सुमति जिनेसर सविये ए देशी)

शाति जिनेश्वर भेटीये रे, शात सुधारस रेल; जयो जिन शासने रे।
पुष्करावर्त्त जल धर समो रे, सीचवा समकित वेल; जयो. ॥१॥

मात **अचिरा** उर हंसलो रे, **विश्वसेन** राय मल्हार, जयो.।
लाख वरस सवि आउखो रे, धनुप चालीस तनु धार, जयो ॥२॥

कुमर मंडलिक चक्री पणे रे, जिनपणे सहस पचीस; जयो.।
वर्ष लगी भोगी सपदा रे, निपजी सिद्धि जगीस, जयो. ॥३॥

नामथी विघ्न सवि उपशमे रे, सेवतां परमानद, जयो।
उपशम मंगल लील ना रे, स्वामी छो कल्पतरू कंद; जयो. ॥४॥

देव गुरू शुद्ध सत्ता थकी रे, निर्मल सुख सुविशाल; जयो.।
देवचंद्र शांति सेवा करो रे, नितवधे मंगल माल; जयो. ॥५॥

इतिश्री शाति जिन स्तवनम्

श्री नेमिनाथ स्तवन

राग– सारंग

आयो री घन घोर घटा कर के (२)
रटत पपीहा पिउ पिउ पिउ पिउ प्रिउ पिउ सर धरि के ।।आयो.।।१।।

वादर[1] चादर नभपर छाइ, दामिनी[2] दमकति भर के।
मेघ गभीर[3] गुहिर अति गाजत विरहनी[4] चित्त थर के ।।आयो ।।२।।

नीर छटा विकटा सी लागत, मद पवन फरके।
नेमिनाथ प्रभु विरह व्यथा तव, अंग अंग करके ।।आयो ।।३।।

दादुर मोर शोर भर सालत, राजुल दिल धर के।
देवचंद्र सयम सुख देतां, विरह गयो टरि के ।।आयो ।।४।।

१–वादल रूपी चादर आकाश मे छाई है। २–विजली चमकती है।
३–गभीर। ४–वियोगिनी स्त्री का चित्त डोलता है।



श्री नेमिनाथ स्तवन

राग—केदारो (सुविधि जिनेश्वर पाय नमीने, ए देशी)

वालाजी रे वीनतडी एक माहरी धारो, वोले राजुलनारी ।
हु दासी छु श्री प्रभुजी नी, प्रभु छो पर उपगारी रे ।।वा ।।१।।
प्रेमधरी - मुझ मदिर आवो, पूरव नेह संभारी रे ।
सज्जन[1] प्रीति मधुरता स्वादे, अमृत दीघ उवारी रे ।।वा ।।२।।
एकवार जो वचन निवाही, देता जो करताली रे ।
तोरण थी चाल्या रथ वाली, एशी प्रीति संभाली रे ।।वा ।।३।।
लोक कहे जे प्रीत न पाली, ए साची प्रीत निहाली रे ।
मोह विभाव उपाधि थी टाली, आत्म समाधि देखाली रे ।।वा ।।४।।
अष्ट भवोलगी नेह निवाह्यो, नवमे भव पलटायो रे ।
गुण रागे हो वेराग उपायो, परम तत्त्व निपजायो रे ।।वा ।।५।।
रसकूंपी[2] रस लोहने वेधे, कंचनता प्रगटावे रे ।
नेम प्रेम रस वेधी राजुल, भव भय व्याधि मिटावे रे ।।वा ।।६।।
साची प्रीत राजीमती राखी, अविहड़ रंग सदाई रे ।
देवचंद्र आगा तप सयम, करता सिद्धि निपाई रे ।।वा ।।७।।

१—सज्जन पुरुष के प्रेम की मधुरता के सामने अमृत भी फीका है । २—लोहे और स्वर्ण रस का समिश्रण होने से, लोहा सोना वन जाता है, वैसे नेमनाथ के प्रेमरस से राजुल का भव-भय मिट गया ।

श्री गौड़ी पार्श्व जिन स्तवन

जग जीवन त्रेवीसमा, गिरुआ[1] गोड़ी पास लाल रे।
दरिसण देखण देवनो अछे अधिक उल्लास लाल रे ॥जग०॥१॥

सुण सुण सुण सुण साहिवा, दास तणी अरदास लाल रे।
आस करे जे आपनी, पूरजो तस आस लाल रे ॥जग०॥२॥

तन मन विकसे हो माहरो, दीठे तुझ दीदार लाल रे।
मोहन मूर्त्ति मन वसी, सहज सलूणी सार लाल रे ॥जग॥३॥

नाम सुणंता जेहनो, विकसे साते धात लाल रे।
ते जो सन्मुख भेटीये, तो कहो केहवी वात लाल रे ॥जग०॥४॥

जे दिन प्रभु पाय पूजसूं, ते दिन धन्य वरणीश लाल रे।
तुझ दर्शन विण दीहड़ा,[2] लेखे मे न गणीस लाल रे ॥जग०॥५॥

महिर नजर करी मुझ परे, अवगुण गुण करी लेह लाल रे।
सेवक जाणी दया करी, अवसर दरिसण देह लाल रे ॥जग०॥६॥

आठ पहोर समरण करे, धरी रंगी एक तार लाल रे।
ते चाकर नी स्वामी जी, कीजे अवश्य संभार लाल रे ॥जग०॥७॥

१—महान २—दिन

दूर थका पण गुण ग्रहे, पाले अविहड प्रीत लाल रे।
पास जिनेश्वर ! तेहनी, कीजे हर विध चिंत लाल रे ।।जग०।।८।।

अलगा पण ते ढूंकडा, जेह वसे मन मांय लाल रे।
पास थका पण टालीये, जे दीठा न सुहाय लाल रे ।।जग०।।६।।

दीठां दुख दोहग टले, भेटचा भावठ[1] जाय लाल रे।
पाप पणासे पूजता, सेवंतां सुख थाय लाल रे ।।जग०।।१०।।

तुं जगवल्लभ जग गुरू, तूं हीज दीन दयाल लाल रे।
तुहीज सेवक जन तणा, टाले सकल जजाल लाल रे ।।जग०।।११।।

दूर थकां पण माहरो, तुं हीज जीवन प्राण लाल रे।
नजर तले आवे नही, वीजो देव अजाण लाल रे ।।जग०।।१२।।

तुझ समरण मन मे करूं नाम जपुं तुम जीह[2] लाल रे।
तुझ दरिसणनी आश थी, बोले छे मुझ दीह लाल रे ।।जग०।।१३।।

दीपचंद्र सद् गुरू तणो, शिष्य कहे जिनराज लाल रे।
देवचंद्र नी मन रली, पूरजो महाराज लाल रे ।।जग०।।१४।।

१–भूख २–जिह्वा

श्री जगवल्लभ पार्श्वनाथ स्तवन

जगवल्लभ जिनराज जो, अरज एक अवधारो जी।
कृपा करी भवजलधि थी, मुझ ने पार उतारो जी ॥जग०॥१॥

जगतारक जगनाथ तु, बिन स्वारथ जगभ्राता जी।
सारथवाह् निर्यामि को, जग वच्छल जग त्राता जी ॥जग०॥२॥

एहवा जाणी आश्रयो, निज शिव सुख हेते जी।
गुण अनंतता स्वामि नी, ऊणा[1] न थावे देते जी ॥जग०॥३॥

प्रभु भाखे सवर पणे, शुद्धातम भावो जी।
स्याद्वाद एकत्त्वता, ता मुझ सरिखा थावोजी ॥जग०॥४॥

वल्लभता तेथी अछे, जिन प्रवचन उपगारे जी।
पण आदरतां दोहिलो, छते मोह परिवारे जी ॥जग॥५॥

तेणे प्रभु तेहवुं करो, नाशे मोह अज्ञानो जी।
मोटा नी मुनिजर[2] थकी, थाये सहु आसानो जी ॥जग०॥६॥

१–कमी नही होनी   २–बडो की कृपा से

कृपा निन्धु जिनजी कह्यो, छए द्रव्य निज भावे जी।
निज यथार्थता सद्दहो, अनेकान्तता दावे जी ।।जग०।।७।।

अहृगा[1] ग्रहृगा परीक्षगी, कारगा कारज जोगे जी।
भेदा भेद अनंतता, जागो निज उपयोगे जी ।।जग०।।८।।

स्व स्वरूप निज आचरो, निमित्त अने उपादाने जी।
योग अवंचकता करी, निर्मल वधते ध्याने जी ।।जग०।।९।।

एहवा गुगा जेहना अछे, सकल शुद्धता भासे जी।
नर्या तरे छे जेहथी, तरशे ताम अभ्यासे जी ।।जग०।।१०।।

प्रभुजी ने अग्रेसरी, आगम अगम प्रभावी जी।
जिनजी परम कृपा करी, तेहथी भेट करावी जी ।।जग०।।११।।

परम प्रमोद थयो हवे, जे मिल्यो श्रुत सद्भावे जी।
स्याद्वाद अनुभव करी, साधो सिद्ध स्वभावे जी ।।जग०।।१२।।

तेवीसमो जिनराज जी, सुप्रसादे आराधे जी।
देवचंद्र पद ते लहे, परम हर्ष तसु वाधे जी ।।जग०।।१३।।

१–ग्राह्य–अग्राह्य की परीक्षा करने वाली

श्री पार्श्वनाथ स्तवन

(शी कहुं कथनी मारी....राज ए चाल)

मुझने दास गणीजे राज पार्श्वजी ! अरज सुणीजे ।
अवसर[1] आज पूरीजे राज, पार्श्वजी अरज सुणीजे ॥ आंकणी ॥

वामानंदन तु आनंदन, चन्दन शीतल भावे ।
दुःख निकंदन गुणे अभिनंदन, कीजे वंदन भावे राज । पार्श्वजी० ॥१॥

तु हीज स्वामी अन्तरजामी, मुझ मन नो विसरामी ।
शिव गति गामी तु निक्कामी, बीजा देव विरामी राज । पार्श्वजी० ॥२॥

मूरति तारी मोहनगारी, प्राण थकी पण प्यारी ।
हुं वलिहारी वार हजारी, मुझने आश तुम्हारी राज । पार्श्वजी ॥३॥

जे एकतारी करे अतारी (?), लीजे तेहने तारी ।
प्रीति विचारी सेवक सारी, दीजे केम विसारी राज । पार्श्वजी ॥४॥

विघन विडारी स्वामी संभारी, प्रीति खरी में धारी ।
शंक निवारी भाव वधारी, वारी तुझ चरणां री राज । पार्श्वजी ॥५॥

मिलि नर नारी वहु परिवारी, पूज रचे तुझ सारी ।
देवचंद्र साहिब सुखदाई, पूरो आश हमारी राज । पार्श्वजी० ॥६॥

१—आज समय है अतः प्रभो मेरी आशा पूरण करो ।

वीर निर्वाण

राग—आसाउरो

सत्शान्ति कान्ति समता निशान्त, दुष्टाष्ट कर्म क्षयकं नितान्तम् ।
निर्मोह मानं परमं प्रशान्त, वन्दे जिनेशं चरमं महान्तम् ॥१॥
यस्याम्बिका श्री त्रिशलाभिधाना, सिद्धार्थ राजा जनकः प्रसिद्धः ।
विश्वोपकृत दुस्सह दुःसमेपि, **तंवीरनाथं** प्रणतोस्मि भक्त्या ॥२॥

(१) ढाल—तीजे भव वर थानक तप करि

वार वरस तप साधन कीनौ, तीस वरस श्रुत वरस्यो ।
अनुपम ज्ञान प्रकाशी जिनवर, मुनिवर तुझ रस फरस्यौ ॥१॥तू०॥

हो प्रभुजी ! तूं साहिब सुख दाई,
तूं जगनाथ कहाई हो साहिब जिनवर तूं सुखदाई ।
तूं तो अलख अनंत अमोही, निज पर आतम सोही ।
विगत विछोही अकोही अलोही, हु तुझ दरसन मोहि हो जि० ॥२॥तू०॥
भाव अहिसा ते वरताई, निज गुण संपति पाई ।
तीन लोक त्राई गत माई, भवि कूं शिवपद दाई हो प्र० ॥३॥तू०॥
वन महसेन मे तीरथ ठाई, चौविह सघ सवाई ।
गणधर कुं समता सिखलाई, चंदना समता पाई हो प्र० ॥४॥तू०॥
तुह पद सेवत श्रेणीक भाई, मुलसा रेवई बाई ।
प्रभु सम पदवी तुरत निपाई, सांची भगति सहाई हो प्र० ॥५॥तू०॥

(२) ढाल—श्री सुपास जिनराज—ए देशी

वर गणधर इग्यार, चउद सहस अणगार,
अणगारी हो सहस छत्तीस सुहामणी जी ।
श्रमणोपासक सार, इगलख अधिक हजार,
गुणसट्ठी हो सोभंता देश विरति धणी जी ॥१॥
तिग लख श्राविका चारु, ऊपरी सहस अढार,
सम्यग् दृष्टि हो दरसन युत शिव मारग रमी जी ।
चउदस पुव्वी, धन्य सव्वक्खर सपन्न,
अजिणा जिण संकासा तिगसय उल्लमी जी ॥२॥
वादी चउदसय धीर, परमत भंजक वीर,
पंचमया वाचयम मण नाणी खरा जी ।
निज दीक्षित मुनिराज, ममता ध्यान समाज,
सात सया केवल नाणी सिद्धि वरधाजी ॥३॥
वैक्रिय धर सय सात, षट जीवन पित मात,
राजे हो आज तेरस ओही जिण सया जी ।
अणुत्तर वाई मुनीस, गई ठई श्रेय ईस,
अनुभव अभ्यासी यतिवर अडसयाजी ॥४॥
इत्यादिक परिवार, जिणवर आणाधार,
वृंदे हो परिवरिया विचरै भूतलै जी ।
दुरित डमर भय सोग, ईति भीति ना थोक,
नासे ही जिन पद रज फरसन ने बले जी ॥५॥

(३) ढाल— गउड़ी, धन-धन सुरनरपति तती ए देशी

वीर विहारे विचरता, करता जग कु साता जी ।
चरण सोवन कज[1] थापता, जगवच्छल जगत्राता जी ।।
त्रूटक– त्राता अनादि विभाव दुख के, आवीया पावापुरी
जिनराज आगम हरख पाम्या, भव्य केकी-हित धरी
धन्य पुहवी धन्य वन सो, धन्य जनपद पुरसही
श्री वीर नायक चरण फरसन, भई पावन या मही ।।१।।
इन्द्रादिक आगलि चलै, भगते जय जय कहते जी ।
छात्र सिहासन चमरस्यो, इद्रध्वजलेई वहते जी ।।
त्रूटक– वहती जे आगलि देव कोडी धर्म चक्र देखावती
नर तिरिय व्यतर असुर किन्नर अपछरा गुण गावती ।
निज कार्यकरणी श्रमण श्रमणी आनम तत्व निपावती ।
द्रुम श्रेणी ऊभी उभय पासे नाथ पद शिर नामती ।।२।।
गगन पखी गण उडता, करता प्रदक्षिणा रगे जी
पूठि पवन अनुकूलना, हरता ईति प्रसगे जी
त्रूटक– सहजे सुगधित नीर वरसे पुप्प वृष्टि चिहुदिसे
कटक अधोमुख कहे जिनते भाव कटक सवि नसे
जय जय कहती सुरि नचती देव दुदुभि रणभरणै
देवाधिदेवा करौ सेवा तत्त्वरुचि जनने भणै ।।३।।

१—कमल

पावन करता भूतले, मिथ्यातिमिर हरंता जी
विषय विषे मूर्छित भणी, देसना अमृत झरंता जी
त्रूटक– तारता जनकूं भवोदधि थी परम पूरण गुण निही
गजराज गति जिनराज पावापरसरे आव्या वही
थई वधाई नगर सगले सुजन बहु सामहे वहे
वर पुष्प मुगताफल वधावी सकल मंगल सुख लहै ॥८॥

ढाल—

आयाजी मुनिपति नरपति हस्तिपाल घर आया
पायाजी सुरमणि सुरतरू अधिक महोदय पाया
वंद्याजी अति प्रमुदित भूपति त्रिभुवन तारक राया
ठायाजी तसु दर्शित वसिते दाण सभा सुखदाया ॥१॥
धन धन ते थानक जसु भीतर वीर परम गुरु ठाया
छत्र त्रय चामर तति सोभित सिहासन सुथपाया
त्रूटक– मदार कुसुमें प्रभु वधाया मन रमाया सचि गणे
चिरकाल जीवो जगत दीवो तरण तारण इम थुणे ॥२॥
चौमासी जी वर्द्धमान जिन तिहां रह्या
विधि सेती जी नव नव अभिग्रह मुनि ग्रह्या
परदेशी जी श्रोता जन आव्या वही
प्रभु वचने जी तत्त्व ग्रहै ते गहगही
त्रूटक– गह गही श्रुतरस अमृत पीता आतम समता भावता
परभाव परगति दूर वमता सुमति रमणी रमावता

वीयराय वदन भव निकंदन गुण आनदने पावता
परमातम सेवन अहव सिद्धी एह ईहा ल्यावता ॥३॥
श्री वीरंजी गौतम गणधर मोकल्या।
आणाकरजी देवशरमा बोधन चल्या॥
जिण आणाजी हित सुख मंगल कार ए।
इम जाणीजी गणधर करे विहार ए॥
त्रूटक—नव राय लच्छी नवे मल्ली वीर वचनरसे रस्या
निज देश चिंता तजी जिन पद सेवना करवा वस्या
गुर राय चौसठि तिहा आव्या सिद्धि अवसर जाणता
श्री वीर दर्शन नमन कीर्त्तन परम सुख मन आणता ॥४॥

॥ दूहा ॥

कार्ती वदि चवदिश दिने प्रातसमे जिनराय।
सिंहासन बैठा जिसे, तब रंभा गुण गाय ॥१॥

(४) ढाल—जीरियानी, अथ सोहलानी देशी

वाल्हेसर त्रिसला देवी नद,
दीठो हो दीठो अमृत घन समौ।
सोभागी स्वामि सोभागी सिद्धिवधू भरतार,
मोहन हे मोहन मूरति नित नमौ। उपगारिस्वामि।१।
तुम्हे गावो हे तुम्हे गावो गुण धरि मन प्रेम,
जेमनहे जेमन जावो दुरगते।उप०।
चिरजीवो हे चिरजीवो गौतम गुरू राय,
नित प्रति हो नित प्रति पूज्यो सुरत ते उप० ॥२॥

अतुली बल हे अतुली बल याचौ जगनाथ,
जिण जीतो हे जिण जीतो मोह सुभट जरू ।उप०।
वूठो हे वूठो आज अमीय मय मेह,
सफलो हे सफल फल्यो वरि सुरतरू उप० ॥३॥
जय जय हे जय जय जगजीवन जगबंधु,
सिद्धारथ हे सिद्धारथ नृपकुल तिलउ ।उप०।
तुठा हे तुंठा आज सवि कार्या पुण्य भेटयो,
हे भेटयो जिनवर गुण निलउ ॥उप०।४॥
बलिहारी हे बलिहारी वार हजार तूं,
ज्ञानी हे तू ज्ञानी गुण सेहरो ।उप०।
जगम हे जंगम तीरथ शिव सुखकद,
निश्चय हे निश्चय शिव सुख देहरो ॥उप०।५॥
इद्रादिक हे इद्रादिक ना प्राणाधार,
जीवो हे जीवो कोड़ि जुगा लगे ।उप०।
जसु दीठे हे दीठे नासे दुख अधार,
भामडल हे भामडल दिनकर झिगमगे ॥६॥ उ०॥
त्रिभुवन पति हे त्रिभुवनपति तुझ,
वचन सवाद मोह्या हे मोह्या सुरपति नरपति जी ।उप०।
तूं ही हे तू हि भव भवनाथ दयाल,
करीये हे करीमे इण विधि वीनती जी ॥उ०॥७॥
तरीये हे तरीये भव सागर दुख भूरि,
हरीयै हे हरीयै कर्म महा अरी ।उप०।

वरीये हे देवगीये वचंद्र पद सार,
करीये हे करीये भगति सदा खरी ॥उप०॥८॥

(५) ढाल--यतिनी देशी

इम गाती रभा गीत, प्रभु[1] आव्या जग सुविहीत ।
ग्यान दरसग्ग चरणानदी, हरख्या सविप्रभु पय वंदी ॥१॥
प्रभु देशना अति सुखकार, भाख्या निश्चय विवहार ।
कारण कारज दिधि भाखी, शिव साधन शिक्षा दाखी ॥२॥
सर्व जीव अछे सम एष, सग्रह सत्ता नैं लेप ।
जे पर परणति रागी, तसु कर्मनी भावठि लागी ॥३॥
जसु तत्व रुचि थयो ज्ञान, ते साधे साध्य अमान ।
निज व्यक्ति शक्ति निजरंगी, साधै गुग्ग शक्ति अनगी ॥४॥
शुचि श्रद्धा भासन रमणे, कारक निज कार्य ने गमणे ।
भागे पर परणति रीत, एकत्वे तत्व प्रतीत ॥५॥
परभाव अरोचक दृष्टे, निज ज्ञान सुधा नी वृष्टे ।
परभोगी भाव अभावें, करतादि थया निज भावे ॥६॥
जाणी निज परणति स्वामी, कुण थाये पर परणामी ।
ए भावे निजगुण पोषे, ते सुद्ध समाधि संतोषे ॥७॥
दुख पोषक पर परसग, न भजै हेज धरि रंग ।
निज तत्व रमौ भवि प्राणी, देवचंद्र वदै इम वाणी ॥८॥

१--मनवर श्रद्धासुविनीत

(६) ढाल--वहिनी रहि न सकी तिसै जी–ऐ देशी

सुरनर तिरिय समूह मैं जी, वैठा श्री वर्द्धमान ।
जगत दयाल उपदिसेजी, शुद्ध धरम सुख थान ॥१॥
जिणेसर तुम्ह मुझ प्राणाधार....... ....
भवभय पीड़ित जीवने जी, त्राण शरण सुखकार ॥जिणे०॥
सोल पौहर नी देसना जी, वीर कही तिणवार
क्षीरा श्रव वचनै कह्या जी, प्रश्न छत्तीस उदार ॥२॥जि०॥
पंचावन अध्ययन मांजी, सुख विपाक स्वरूप ।
वलि तेता अध्ययन माजी, दुख विपाक विरूप ॥३॥जि०॥
छठ तपै निशि पाछली जी, करि आजूजी वीर्य ।
योग रोध बादर करीजी, रोध्या सुखम वीर्य ॥४॥जि०॥
सकल[1] प्रदेश घनी करीजी, चरम त्रिभागावगाह ।
प्रकृति वहत्तर खेरवी जी, कृत तेरस प्रकृति नो दाह ॥५॥जि०॥
पर्यंकासन शिवलह्याजी, स्वाति नक्षत्रे स्वामि ।
गाग करण दर्शे[2] वरयु जी, पूर्णानंदी धाम ॥जि०॥६॥
अफुसमाण गति थी लह्याजी, एक समय लोगत ।
पूर्व प्रयोग अवन्धने जी, ऊरध गति ने तत ॥जि०॥७॥
अवगाहन कर च्यार नी जी, सोलह अंगुल मांय ।
सर्व प्रदेश गुण पज्जवा जी, तुल्य प्रमाण समाय ॥जि०॥८॥

---

१ सकल प्रदेश घनी क० रन्ध्र छिद्र पूरवें त्रिभाग ऊणात एने प्रदेश घन कहिवाइ
२— दर्शे–अमावस्या

सर्व शक्ति निज कार्य ने जी, करती वर नि प्रयास ।
सादि अनत पणे करू जो, आतम शक्ति विलास ॥जि०॥६॥

तीस वरस गृह वास मे जी, बार वरस मुनि भाव ।
तेर पक्ष अधिक तप्या जी, तप शिव साधन दाव ॥जि०॥१०॥

विचरया परमेश्वर पदेजी, तीस वरस किचूण ।
भाव यथारथ उप दिश्याजी, नयनिक्षेपे पूर्ण ॥जि०॥११॥

पर परसग सहू तजी जी, अनहारी अशरीर ।
अचल अक्षय अमूर्त्तता जी, व्यक्ति शक्ति धर धीर ॥जि०॥१२॥

वीर प्रभु निज पद लह्यु जी, परमानद अबाध ।
अवनाशी सपूर्णताजी, परणति भाव अगाध ॥जि०॥१३॥

(७) ढाल—प्रभु तू स्वयंबुद्ध सिद्धो अलुद्धो, ए देशी

प्रभु तु अनतो महतो प्रसतो, तू प्रभु कर्म भासन कृतती ।
पूर्ण आनद आस्वाद वतो, प्रभु तू थयो सिद्धि लच्छी मुकतो ॥१॥प्र०॥

अदन्न अगधं अफासे अरूवी, प्रभु तू थयो अरस सठाण हीनो ।
अमोही अकर्त्ता अभोगी अयोगी, अवेदी अखेदी[1] गुणानंद पीनो ॥२॥प्र॥

प्रभु जाणतो ज्ञान थी तू सर्व छती वस्तुनी देखतो सर्व सामान्य भावो
आतम गुण रमण अनुभव रसे घूमतो, ते लह्यो पूर्ण शुद्धात्म भावो ॥३॥प्र॥

आतम गुण दान लाभे अनते, वर्यो भोग उपभोग निज धर्म लीनो ।
सकल गुण कार्य सहकार वीर्येवर्या, चपल वीरज गयै थिर अदीनो ॥प्र०॥४॥

१—अछेदी

तूं क्षमी तूं दमी तूंहि मार्द्दव मयी आर्यवी मुत्ति समता अनंती।
तूं असगी अभंगी प्रभू सर्व (A) प्रदेश गुण शक्तिवंती ॥प्र०॥५॥
प्रमाणी प्रमेयी अमेयी अगेही, अकपात्मदेशी अलेशी अवेसो।
स्त्रयं ध्यान मुक्तो सदा ध्येय रूपो, मुनी मानसे जेहनो वास देशो ॥प्र०॥६॥

॥ दूहा ॥

सिद्ध थया जिण जाणि ने, इद्रादिक सुर व्यूह।
शोकातुर आतुर रडे, चोविह संघ समूह ॥१॥
हैं हैं नाथ वियोग थी, ए जोवन निक्काम।
मोक्ष मार्ग साधन भणी, किम पुहचेसी हाम ॥२॥
वीर वियोगे जीववो, तेह निठुर परिणाम।
धन तनु वनिता संपदा, स्यूं कीजि मुरधाम ॥३॥
जग उपगारी वीछड्यै, स्यै लेखै सुर शक्ति।
प्रबल मनै करस्यु किहा, बहु विस्तारी भक्ति ॥४॥

(८) ढाल—मेरे नंदनां—ए देशी.

इतला दिन लगि जांणता रे हां, प्रभु सनमुख बहुवार मेरे साहिबा,
वदन विधि नाटक करी रे हां, लहस्युं लाभ अपार मेरे० ॥१॥
बोलो नाथ दयाल, किरपानिधि करुणाल, तुझ वयणा गुण माल,
थाए सव निहाल, तत्त्व रमण सभाल, थाये ज्ञान विशाल ॥मे०॥२॥

A–निज आत्म

एक वचन श्री वीरनो रे हा, कापे भवनी कोडि मे०,
अविनाशी सुख आपवारे हा, कोण करे तुझ होडि मे० ॥३॥

तुझ सरिखा साहिब छतेरे हा, करता मोटी हूस मे०,
मोह महारिपु जीप ने रे हा, करस्या कर्म नो ध्वस मे० ॥४॥

मोहाधीन जे जीबडा रे हा, तृसना तापे तप्त मे०,
पुद्गल आस्या बधीया रे हा, विषया रस संलिप्त मे० ॥५॥

तनु विभाग रंगी दुखी रे हा, आवृत्त आतम शक्ति मे०,
तेहवा ने कुण तारिस्यै रे हां, देखाड़ी गुण व्यक्ति मे० ॥६॥

बहु परचित परभावना रे हां, चपल एकत्त्व ऊपाय। मे०।
करतां कहि कुण वारस्यै रे हा, ते देखाड़ो वाय[1]॥मे०॥७॥

विषयादिक आसेवता रे हां, था तो अम्ह संकोच। मे०।
तुझ उपगारे ते हिवे रे हा, थास्यै किमते सोच ॥मे०॥८॥

वीर चरण जावो अछेरे हां, मुणता अमृत वाणि। मे०।
ते माटे सुर भोगतो रे हां, करता नवि मंडाण ॥मे०॥९॥

कृपा करो इक वचन नी रे हां, यद्यपि छौ वीतराग। मे०।
महा मोहना कष्ट थी रे हां, छोडावौ महाभाग ॥मे०॥१०॥

भरत खेत्र ना जीव ने रे हां, तुझ विण कुण रखवाल । मे०।
दूषम काल कृतांत मा रे हां, एहनो कवण हवाल ॥मे०॥११॥

---

१ थाय, ठाय

मेघ मुनी ने राखीयो रे हा, राख्यो सोमल वृंद । मे० ।
खदक शिव पमुहा तरचा रे हा, नार्यो चरम सुरिद ।।मे०।।१२।।

हु सोहमपति वीनवु रे हा, दया करो मुझ देव । मे० ।
सदा हजूरी दासनी रे हां, मानो विनति सेव ।।मे०।।१३।।

नित्य मनोरथ नव नवा रे हा, करता प्रभु अवलंब । मे० ।
ते दिशि दाखो सर्व ने रे हा, प्रभुजी ज्ञान कदंब ।।मे०।।१४।।

एह श्रमण श्रमणी भणी रे हा, निज आराधक भाव । मे० ।
केहने पूछि आलोयस्यै रे हां, अंतरगत परभाव ।।मे०।।१५।।

भव्य अभव्य निर्द्धारिता रे हा, पूछीस्यै कौण पास । मे० ।
आश्रव पीडित जीवनी रे हां, कुण सुणस्यै अरदास ।।मे०।।१६।।

ते सवि मन माहे रही रे हा, चाल्यो तारक सिद्धि । मे० ।
आगणा आलंबन करी रे हा, करवी कार्य समृद्धि ।।मे०।।१७।।

तो पिण एहना नामनी रे हा, राखो मोटी आस । मे० ।
देवचंद नी सेवना रे हा, शिव सुख कारण खास ।।मे०।।१८।।

।। दूहा ।।

इम दुख भरि इंद्रादिकें, विमन चित्त मुख दीन ।
कलस विर्धे नव रावियो, चित्त भक्ति लय लीन ।।१।।

करी विलेपन अति सुरभि, बहु विध फूल नी माल ।
आभरणादि अलंकरचा, श्री जिन जगत दयाल ।।२।।

सहसथभ मिक्का रची, छत्र त्रय अभिराम ।
सिहासन पादपीठ विधि, चामर ध्वज अभिराम ।।३।।
प्रभु बेसारचा पालखी, उपाडे सुर वृंद ।
वैमानिक भुवनाधिपत्ति, व्यतर सूरज चद ।।४।।
चामर वीजै भक्ति स्यूं, शक्र वली ईशान ।
ह्विव आपण ने धर्म नो, कुण द्ये सिख्या दान ।।५।।

।। गाहा ।।

दुलहो जिणद जोगो, दुलह च धम्म सवण निद्धारं ।
दुलहा मुक्ख पवित्ती, सामग्गी संगमो दुलहो ।।६।।
हा हा इय किं जायं, अरहो सिद्धो महोदयं पत्तो ।
अम्हाण पुट्ठ साहण, हेउ विजोग भवं दुक्खं ।।७।।
वीर विरहम्मि धम्मा–धारेण असरणया दुहीया ।
तेसिं दूसम काले, को दाही[1] एरिसं धम्म ।।८।।

(९) ढाल–मेघ मुनि कांई डम डोलें, रे–ए देशी

गीत गान नाटक करी जी, करुणा रसमय सर्व ।
हा नायक हा तारकू जी, कहता वदन सुपर्व ।।१।।
नाथजी मोटो तुझ आधार, तूं त्रिभूवन निस्तार ।
तुझ प्रभु ज्ञान आधार, तुझ सरिखो दातार,
दुलहो एणीवार ।।नाथजी मोटो।।आकणी।।३।।

१–देही

चदन काष्टे जिन तनु जी, दाहे अग्निकुमार ।
दुख भरि सजल नयणे करी जी, वायु ते पवन कुमार ॥ना०॥२॥
उदधिकुमार जले करी जी, सीतल कीधी वांम ।
जिन दाढा ले भक्ति थी जी, सुरपति दक्षिण वाम ॥ना०॥३॥
अस्थि भस्म माटी ग्रहे जी, सुरनर अवर अनेक ।
वदे पूजे भक्ति थी जी, धरता चित्त विवेक ॥ना०॥४॥
देव सरमा प्रतिवोधियो जी, वलीया गौतम स्वामि ।
साझे वन में मुनि वस्या जी, पाम्या श्रुति विश्राम ॥ना०॥५॥
पावा परसर गणधरू जी, राति वस्या जिहि ठाय ।
वीर विरह गौतम सुणु जी हीयडे दूक्ख न माय ॥ना०॥६॥
हे प्रभु मुझ बालक भणी जी, स्यै न जणाव्यू आंम ।
मूंकी सिसु ने वेगलो जी, ए नीपाव्यो कांम ॥ना०॥७॥
हिव कुण ससय मेटस्ये जी, कहस्ये सूक्ष्म भाव ।
कौने वांदी भगति स्युंजी, करस्युं विनय स्वभाव ॥ना०॥८॥
वीर विना किम थायस्यै जी, मोनै आतम सिद्धि ।
वीर आधारे अेतला जी, पाम्या पूर्ण समृद्धि ॥ना०॥९॥
इम चितवता उपनो जी, वस्तु धरम उपयोग ।
करता सहु निज कार्य ना जी, प्रभु नैमित्तिक योग[1] ॥ना०॥१०॥

१—भोग

ध्यानालंबन नाथ नो जी, ते तो सदा अभग ।
तिण प्रभु गुण ने जोइवै जी, जोइ तूं आतम अग ॥ना०॥११॥
आतमा भासन रमणथी जी, भेदे ध्यान पृथक्त्व ।
तेह अभेदे परणम्यो जी, पाम्ये तत्व एकत्त्व ॥ना०॥१२॥
ध्यान लीन गौतम प्रभु जी, क्षपक श्रेणि आरोह ।
घन घाती सवि चूरिया जी, कीनो आतम अमोह ॥ना०॥१३॥
लोका लोक नी अस्तिता जी, सर्व स्व पर पर्याय ।
तीन काल ना जाणीया जी, केवल ज्ञान पसाय ॥१४॥ना०॥
प्रभु प्रभु करतां प्रभु थया जी, श्री गौतम गुरुराय ।
ततखिण इंद्रादिक भणी जी, एह वधाई थाय ॥१५॥ना०॥
संघ सकल हरषित थयो जी, जाणी गौतम ज्ञान ।
कारण तूटि पडि नही जी, ए अम्ह पुण्य अमान ॥१६॥ना०॥
सुरपति नरपति जन सहूजो, चोविह संघ महंत ।
आव्या गौतम पद कजे जी, जय जय शब्द कहंत ॥१७॥ना०॥
करि उच्छव पद थापीया जी, जग गुरु पाटे त्यार ।
इंद्रादिक वंदन करे जी, बैठा सभा मझार ॥१८॥ना०॥
तीन भुवन हरषित थया जी, वीर पटोधर देख ।
हरषे गुण गावै घणा जी, चौविह संघ विशेष ॥१९॥ना०॥
वीर प्रभु पाटै थया जी, गौतम ज्ञान निधांन ।
देवचंद्र वंदै सदा जी, समता अमृत थांन ॥२०॥ना०॥

॥ दूहा ॥

श्री गौतम गुरु देशना, सामलि उठ्या सर्व ।
सुर वर सहु नदीसरे, पुहता भक्ति अखर्व ॥१॥
बार वरस केवलि पणे, विचरया गौतम स्वामि ।
आठ वरस केवल निधी, श्री सुधर्म अभिराम ॥२॥
वरस चौमालीस केवली, श्री जंबू सुखकार ।
तास पछी श्रुत ज्ञान बल, चाले सासन सार ॥३॥
इकवीस सहस वरस लगि, रहस्यै वीर वचन्न ।
तसु आलंबन जे रमै, तेहिज जीव सुधन्य ॥४॥

(१०) ढाल—

धन धन शासन श्री जिनवर नो, जिहां वर वाचक वंस रे ।
दूसम काले जास प्रसादें, लहीयै धरम प्रसंस रे ॥१॥ध.॥
आर्य प्रभव सज्जंभवसूरि, सूरि यशोभद्र स्वामी रे ।
श्री संभूति विजय श्रुत सागर, भद्र बाहु वर नाम रे ।२॥ध.॥
दश निर्युक्ति छंद वर आगम, ऊधरया वस्तु स्वरूप रे ।
संपूरण द्वादश आगमधर, ज्ञान क्रिया विध रूप रे ॥३॥ध॥
थूलभद्र कोस्या प्रति बोधक, महागिरि सूरि सुहस्ति रे ।
वयर स्वामि लगि पूरब दशधर, युगप्रधान सुप्रशस्त रे ॥४॥ध.॥
भाष्योद्धार कारक उपगारी, श्री जिनभद्र मुणिंद रे ।
चूरण कर्त्ता श्रुत उद्धर्त्ता, श्री देवर्द्धि मुणिंद रे ॥५॥ध.॥

पुस्तकारूढ कर्या जिन आगम, राख्यो शासन शुद्ध रे।
टीकाकार शैलागसूरिवर, श्री अभयदेव प्रबुद्ध रे ॥६॥अ.॥
श्री हरिभद्र मलयगिरि पंडित, हेमसूरि मलहार रे।
नंद महत्तर सूरि जिनेश्वर, जिनवल्लभ मुखकार रे ॥७॥ध॥
श्री देवेन्द्र हेम आचारिज, कुमार पाल जसु भक्त रे।
श्री खेमेंद्र प्रमुख श्रुत रसीया, दूसम काले व्यक्त रे ॥८॥ध॥
दुपसह सूरि छेहला गणधर, आराधक जिन आण रे।
चौविह संघ शुद्ध श्रद्धाधर,[1] पंचागी परमाण रे ॥९॥ध.॥
द्रव्य छक नव तत्त्व नी श्रद्धा, ज्ञान क्रिया शिव सार रे।
उत्सर्ग ने अपवाद साधना, निश्चय नय विवहार रे ॥१०॥ध॥
निमित्त वली उपादान कारण युग साधन तीन प्रकार रे।
प्रवृति १ विकल्प २ तथा परणति शुचि करतां भव निस्तार रे॥११॥ध.॥
पुष्ट निमित्त सेवन थी आतम, परणति थाये शुद्ध रे।
तत्त्वालंबी तत्व प्रगटता, साधै पूर्ण समृद्ध रे ॥१२॥ध.॥
देवचंद्र श्री वीर चरण युग, सेवो भक्ति अखण्ड रे।
शासन संगी आणारंगी, ते थाये गत दंड रे ॥१३॥ध.॥

(११) ढाल—कुमत इम सकल दूरे करी—ए देशी

भगति इम चित्त साची धरी, धारीयें सासन रीति रे।
वारीये दुष्ट दुरवासना, चूरीये[2] भव तणी भीति रे ॥१॥भ०॥

१—श्रुती २—ध्वसियै विधि (अच—लोह)।

वीर जिनराज सम प्रभु लही, गह गही बुद्धि गुण ग्राम रे।
कोण पर देव ने आदरे, कल्पतरु सम प्रभु पामि रे ॥२॥भ०॥
एक आधार छे ताहरो, माहरे दीन दयाल रे।
सार कीजें हिवे दासनी, नाथ जगजीव प्रति पाल रे ॥३॥भ०॥
वीनति दास नी धारियै, तारियै कर उपगार रे।
दोष अनादि निवारिये, आपीये अनुभव सार रे ॥४॥भ०॥
मोह जंजाल वसि जीवडा, रडवडे पुग्दल राग रे।
तेहने शुद्ध रत्नत्रयी, दाखवी ते महाभाग रे ॥५॥भ०॥
एक आलंबन स्वामि नो, दास ना चित्त ने नाह रे।
असरण शरण भव अडवि नो, तूं हिज परम सत्थवाह रे ॥६॥भ०॥
तुझ गुण राग भर हृदय मे, किम वसै दुष्ट कषाय रे।
निर्मल तत्त्व ना ध्यान थी, ध्यायक निर्मल ज्ञान थाय रे ॥७॥भ०॥
ध्येयनी शुद्धता रस थकी विद्धे अय कंचन थाय रे।
निम अमोही रसी चेतना, पूर्णानन्द उपाय रे ॥८॥भ०॥
माहरा परणति दोष नी, तीव्रता वारण कार रे।
ताहरा शासन श्रुत तणो, राग छे एक आधार रे ॥९॥भ०॥
खिण खिण नाम तुम चो जपु, तुझ गुण स्तवन उल्लास रे।
चीतवी रूप प्रभुजी तणो, कीजियें आतम प्रकाश रे ॥१०॥भ०॥
वलि वलि वीनवु स्वामि जी, नित प्रति तुं हिज देव रे।
शुद्ध आसय पणें मुझ हज्यो, भव भव ताहरी सेव रे ॥११॥भ०॥
वीर आणा अविहड पणे, आदरू साधन जेह रे।
ताहरी साख थी सत्य ने, सीझस्यै माहरै तेह रे ॥१२॥भ०॥

भद्रक भाव रागी पधौ, वीनति एम कराय रे ।
देवचंद्रह पद नीपजे, नाथजी भगति सुपसाय रे ॥१३॥भ०॥

(१२) ढाल–धन्यासरी

गावो गावो रे जिनराज तणा गुण गावो ।
सम्यग् दर्शन ज्ञान चरण नी, निर्मल थिरता पावो रे ॥जि०॥१॥
पच कल्याणक स्तवना स्तवता, आतम तत्त्व निपावो ।
मोह महा रिपु दोष अनादी, खिण में तेह गमावो रे ॥जि०॥२॥
आतम तत्त्व ध्यान एकता, साचो शिव सुख दावो ।
ईश्वर भक्ति तेहनो कारण, आगम माँहि कहाव्यो रे ॥जि०॥३॥
प्रभु गुण ध्यान स्व जाती रमणे, निरमल परणति थावो ।
तेहथी सिद्धि तिणे प्रभु सेवन, आतम शक्ति वधावो रे ॥जि०॥४॥
सुविहित **खरतर** गच्छ परंपरा, **राजसार** उवझायो ।
तास सीस पाठक सम दम धर, **ज्ञान धरम** सुख दायो रे ॥जि०॥५॥
दीपचंद पाठक उपगारी, सासन राग सवायो ।
तास सीस सुचि भगति प्रसंगे, **देवचंद** जिन गायो रे ॥जि०॥६॥
भावनगर श्री **ऋषभ प्रसादे, दीवाली** दिन ध्यायो ।
सघ सकल श्रुत सासन रागी, परम प्रमोद उपायो रे ॥जि०॥७॥
शासन नायक वीर जिनेसर, गुण गाता **जयमालो** ।
देवचंद प्रभु सेवन करता, मंगल माल विशालो रे ॥जि०॥८॥

इति श्री वीर निर्वाण पं० श्री **देवचंद** गणी विरचिताया
समाप्त ॥ग्रंथाग्र २१८॥ गाथा १४३

मुख दीठे मुख ऊपजे, समरंता मुख थाय ।
सुख ने माथे शल्य पडो, पीरहृदय थी जाय ॥१॥

परमातम परमेसरू, अकल अरूपी अमाय ।
वीर नाम मुख थी वदे, जीहा पावन थाय ॥२॥

असंख्यात प्रदेश मां, जहमा दिल मां वीर ।
ते नग भवसागर तरी, पामे वहेलो तीर ॥३॥

वीर विरह घडी एकलो, जेह थी खम्यो न जाय ।
तेहने मोक्ष नजीक छे, दुरगति दूर पलाय ॥४॥

जाचो हीरो परखीयो, नग मां श्री महावीर ।
ते माटे तुमे भविजना, वंदो जगगुरू धीर ॥५॥

वीर जिणेसर गुण घणा, कहेता नावे पार ।
तेणे कारणे श्री वीरने, वंदो वारवार ॥६॥

निः कामी प्रभु पूजना, करसे जे धरी नेह ।
शिव सुंदरी निश्चयलही, स्वयंवर वरसेतेह ॥७॥

श्री वीर जिननिर्वाण स्तवन

(वैरागी थयो–ए देशी)

मारग देसक मोक्ष नो रे, केवल ज्ञान निधान।
भाव दया सागर प्रभू रे, पर उपगारी प्रधान रे ॥१॥वी०॥
वीर ते सिद्धि थया, संघ सकल आधारो रे।
हिव इण भरत मै, कुण करस्यै उपगारो रे ॥२॥वी०॥
नाथ विहूणो सैन्य जूं रे, वीर विहूणो संघ।
साधै कुण आधार थी रे, परमानद अभंगो रे ॥३॥ वी०॥
मात विहूणो बाल ज्यूं रे, अरहा परो अथडाय।
वीर विहूणा, जीवडा रे, आकुल व्याकुल थाय रे ॥४॥वी०॥
संसय छेदक वीर नो रे, विरह ते केम खमाय।
जे दीठै सुख ऊपजै रे, ते विणुकिम रहवायो रे ॥५॥वी०॥
निरजामक भव समुद्र नो रे, भव अडवी सथवाह।
तें परमेश्वर विणु मिल्यैं रे, केम वधै उच्छाहो रे ॥६॥वी०॥
वीर थकां पिण श्रुत तणो रे, हतो परम आधार।
हिवणां श्रुत आधार छे रे, अह जिन मुद्रा सारो रे ॥७॥वी०॥
तीनकाल सवि जीव नै रे, आगम थी आनद।
जिन पडिमा आगम विधैरे, सेव्या परमांणदो रे ॥८॥वी०॥
गणधर आचारिज मुनी रे, सहु नै इण विधि सिद्धि।
भव भव आगम सघ थी रे, देवचंद्र पद सिद्धी रे ॥९॥वी०॥

अनागत पद्मनाभ जिन स्तवन

वाटडी[1] विलोकुं रे भावि जिन तणी रे, पदमनाभ जसु नाम ।
दूसम[2] दूषित भरत कृपा करो, उपसम अमृत धाम ॥१॥वा०॥
वीर निमते रे श्रेणक नैं भवैरे, तुमे बांधु जिन भाव ।
कल्याणक अतिसे उपगारता रे, वीर समान स्वभाव ॥२॥वा०॥
सुदि असाढै छट्ठी नैं दिनै रे, उपजस्यो जगन्नाथ ।
चैत्र धवल तेरस प्रभु जनमस्यो रे, थामै मेरु सनाथ ॥३॥वा०॥
मागसिर बदि दसमी दिक्षा ग्रही रे, वरस्यो चरण उदार ।
सुदि वैसाखै दसमी केवली रे, चौविह संघ आधार ॥४॥वा०॥
समवशरण सिंघासण वैसिनै रे, प्रभु करस्यो वाख्यान ।
आतम[3] धरम सुणु तिण अवसरे रे, धरतौ प्रभु गुण ध्यान ॥५॥वा०॥
सैमुख[4] त्रिपदी पामी गणधरा रे, रचस्यै द्वादस अंग ।
ते वेला हु प्रभु चरणे रहुँ रे, जिनधरमै द्रढ रंग ॥६॥वा०॥
दीवाली दिन सिवपद पामस्यो रे, शुद्धातम मकरंद ।
देवचंद साहिब नी सेवना रे, करता परम आनंद ॥७॥वा०॥

इति, अनागत पद्मनाभ जिन स्तवनम्

१–प्रतीक्षा करना २–पंचमकाल के प्रभाव से दूषित बने, इस भरतक्षेत्र पर
३–ज्ञानादि धर्मों का श्रवण ४–आपके श्रीमुख से गणधर भगवान, त्रिपदी को प्राप्त कर १२ अंगो की रचना करेंगे ।

श्री पद्मनाभ जिन स्तवन ●

(मारग देशक मोक्ष नो रे—ए देशी)

श्री वीर प्रभु उपगार थी रे, श्री श्रेणिक गुण धांम ।
क्षायक श्रद्धा गुण वसे रे, नीपायो जिन नाम रे ॥१॥

प्रथम जिनेसरू, भावी भरत मझारो
मुझनें तारस्ये, भवि आस्या आधारो रे प्र० ॥आंकणी॥

वस्तु स्वरूप प्रकासता रे, ज्ञान चरण गुण खाण ।
वांदु प्रभुता ओलखी रे, तेहि जम्मु[1] सुविहाणो रे प्र०२

पद्मनाभ प्रभु देशना रे, साधन साधक सिद्ध ।
गौण मुख्यता वचन मे रे, ज्ञानें तेसकल समृधो रे प्र०३

वस्तु अनंत स्वभाव छे रे, अनंत कथक तसु नाम ।
ग्राहक अवसर बोधथी रे, कहवे अर्पित कामो रे प्र०४

शेष अनर्पित धर्म ने रे, सापेक्ष श्रद्धा बोध ।
उभय रहित भासन हवे रे, प्रगटे केवल बोधो रे प्र०५

छति परणति गुण वर्त्तना रे, भासन भोग आणंद ।
समकाले प्रभु ताहरे रे, रम्य रमण गुण वृंदो रे प्र०६

१-यही मेरा जन्म सफल होगा ।

निज भावे सी अस्तिता रे, पर नास्ति अस्वभाव ।
अस्ति पणे ते नास्तिता रे, सिय ते उभय सभावो रे प्र०७

अस्ति सभाव ते आपणो रे, रुचि वैराग्य समेत ।
प्रभु सनमुख वंदन करी रे, मांगिस आतम हेतो रे प्र०८

करुणा निधि मुझ तारीये रे, दाखी शुद्ध स्वभाव ।
मुझ आतम सुख स्वादनो रे, बीजो कोण उपावो रे प्र०९

काल अनादि नो वीसरयो रे माहरो आत्मानंद ।
प्रभु विण कुण मुझ सीखवै रे, त्रिभुवन करुणा कंदो रे प्र०१०

मुझ ने तुझ शासन तणी रे, छे मोटी उमेद ।
निरमल आत्म संपदा रे, थास्ये प्रगट अभेदो रे प्र०११

दीपचंद्र गुरु सेवता रे, पाम्यो देव अभंग ।
देवचंद्र ने नित होज्यो रे, जिन शासन दृढ रंगों रे प्र०१२

इति श्री पद्मनाभ स्तवन

● प्रति नं० २१०८ पत्र १ नित्य वि० म० जीवन जैन लायब्रेरी, कलकत्ता। इस स्तवन की गां० ४ से ८ तक चौबीसी के कुन्थुनाथ स्तवन के गा० ५ से ९ वाली ही है तीसरी गाथा में कुन्थुनाथ के स्थान में इसमें पद्मनाभ है।

श्री सीमंधर जिन स्तवन

(श्री श्री सीमंधरस्वामिजी–ए देशी)

प्रभुनाथ तु तीय लोक नो, प्रत्यक्ष त्रिभुवन भांण ।
सर्वज्ञ सर्व दर्शी तुम्हे, तुम्हे शुद्ध सुख नी खांणि ॥१॥

जिनजी वीनती छै एह ॥आंकणी॥

प्रभु जीव जीवन भव्यना, प्रभु मुझ जीवन प्राण ।
ताहरे दरसन सुख लहुं, तु ही जगति थिति त्रांण ॥२॥जि०॥

तुझ बिना हु चउगति भम्यो, धर्यां वेष अनेक ।
निज भाव मे परभाव नो, जाण्यो नही सुविवेक ॥३॥जि०॥

धन तेह जे तितु ग्रह ममै, देखै ज जिन मुख चद ।
तुझ वाणि अमृत रस लही, पामै ते परमाणंद ॥४॥जि०॥

इक वचन श्री जिनराजनो, नय गमा भंग प्रधान ।
जे सुणै रुचि थी ते लहै, निज तत्व सिद्ध अमान ॥५॥जि०॥

जे खेत्र विचरो नाथजी, ते खेत्र अति सुपसत्थ[1] ।
तुझ विरह जे क्षण जाय छे, ते मानीयै अकयत्थ[2] ॥६॥जि०॥

श्री वीतराग दंसण बिना, वीतोज काल अतीत ।
ते अफल मिच्छा दुक्कडं, तिविहं तिविह नी रीति ॥७॥जि०॥

१–जिस क्षेत्र में आप विचरते हो, वह क्षेत्र ही सफल हैं। २–अकृतार्थ।

प्रभु वात मुझ मननी सहू, जाणो अछो जगनाथ ।
थिर भाव जो तुमचो लहूँ, तो मिलैं शिवपुर साथ ॥८॥जि०॥

प्रभु मिल्यै हु थिरता लहू, तुझ विरह चंचल भाव ।
इक वार जो तन्मय रमूं, तो करू अकल स्वभाव ॥९॥जि०॥

प्रभु अछो क्षेत्र विदेह में, हुं रहुं भरत मझार ।
तो पण प्रभुना गुण विषै, राखू स्व चेतना[1] सार ॥१०॥जि०॥

जो क्षेत्र भेद टलै प्रभु, तो सरै सगलां काज ।
सनमुख भाव अभेदता, करि वरू आतम राज ॥११॥जि०॥

पर पूठि ईहा जेहनी, एवडी छई स्वाम ।
हाजर हजूरी ते मिल्यै, नीपजै कितलो काम ॥१२॥जि०॥

इन्द्र चंद्र नरिंद नी, पद न मागू तिल मात्र ।
मांगू प्रभु मुझ मन थकी, नवि विसरो खिण मात्र ॥१३॥जि०॥

जां[2] पूर्ण सिद्ध स्वभावनी, नविकरि सकू निज ऋद्धि ।
तां[3] चरण सरण तुम्हारडा, एहीज मुझ नव निद्धि ॥१४॥जि०॥

माहरी पूर्व विराधना, योगे पडयो ए भेद ।
पिण वस्तु धरम विचारता, तुझ नही छे भेद ॥१५॥जि०॥

१—यद्यपि मैं दूर हूं, फिर भी प्रभु के गुणों के प्रति मेरी सतत् दृष्टि है।
२—जबतक ३—तबतक

प्रभु ध्यान रंग अभेद थी, करि आत्म भाव अभेद ।
छेदी विभाव अनादि नो, अनुभवूं स्वसवेद्य ॥१६॥जि०॥

वीनवूं[1] अनुभव मीत ने, तू न करि पर रस चाह ।
शुद्धात्म रस रंगी थयी, करि पूर्ण शक्ति अबाह ॥१७॥जि०॥

जिनराज[2] सीमंधर प्रभु, ते लह्यो कारण शुद्ध ।
हिव आत्म सिद्धि निपायवा, सी ढील करीये बुद्ध ॥१८॥जि०॥

कारणे[3] कारज सिद्ध नो, करवो घटे न विलब ।
साधवी पूर्णानंदता, निज कर्तृता अवलंबि ॥१६॥जि०॥

निज शक्ति प्रभु गुण मैं रमै, ते करै पूर्णानद ।
गुण गुणी भाव अभेद थी, पीजियै सम मकरद ॥२०॥जि०॥

प्रभु सिद्ध बुद्ध महोदयी, ध्याने थई लयलीन ।
निज **देवचंद्र** पद आदरै, नित्यात्म रस सुख पीन ॥२१॥जि०॥

इति जिनस्तुति श्री सीमंधर स्वामिनी देवचदेन कृत ॥

१–मैं अपने अनुभवरुपी मित्र को विनती करता हूँ कि तू पर विषय की इच्छा न कर। २–सीमधंर भगवान, आत्म सिद्धि का अद्‌भुत कारण है। ३–कारण रहने पर कार्यसिद्धि करने में कोई विलम्ब नही करना चाहिये। अपनी कर्त्तृत्व शक्ति का अवलवन कर पूर्णानन्द स्वरूप को सिद्ध करना चाहिये।

श्री सहस्त्रकूट जिन स्तवनम्

सहस्त्रकूट[1] जिन प्रतिमा वंदियै, मन धरि अधिक जगीस विवेकी ।
सुंदर मूरति अति सोहामणी, एक सहस चौवीस वि० ॥१॥स०॥

अतीत अनागत नै वर्त्तमानजी, तीन चौबीसी हो सार वि० ।
बिहुत्तर जिनवर एके क्षेत्र में प्रणमीजे वारं वार वि० ॥२॥स०॥

पांच भरत वलि ऐरवन, पांच मे सरखी रीति समाज वि० ।
दस खेत्रे करि थाये, सात सै वीस अधिक जिनराज वि० ॥३॥स०॥

पच विदेहे जिनवर साढिसौ, उत्कृष्टी एहिज टेव वि० ।
जिन समान जिन प्रतिमा, ओलखी भगतै कीजे हो सेव वि० ॥४॥स०॥

पच कल्याणक जिन चौवीसना, वीसासो तेहज थाय वि० ।
ते कल्याणक विधि सु साचव्यां, लाभअनंतो थाय वि० ॥५॥स०॥

पंच विदेहे हिवणां विहरता, वीस अछै अरिहंत ।
सास्वत प्रभु रिषभानन आदि दे, च्यार अनादि अनंत वि० ॥६॥स०॥

एक सहस चोवीस जिणेसनी, प्रतिमा एकण ठामि वि० ।
पूजा करतां जनम सफल होवै, सीझै वंछित काम वि० ॥७॥स०॥

१—एक हजार प्रतिमाओं का शिखर ।

तीन काल अढाई द्वीप मे, केवल नाण पहाण वि० ।
कल्याणक करी प्रभु इहां सामठा, लाभै गुण मणि खाणि वि०॥८॥स०॥

सहस्त्रकूट सिद्धाचल ऊपरै, तिमहिज धरण विहार।
तिणथी अद्भुत छै ए थापना, **पाटण** नगर मझार वि०॥९॥स०॥

तीर्थ सकल वलि तीर्थंकर सहू, इण पूज्यां तेह पूजाय वि० ।
एक जीह[1] थी महिमा एहनी, किण भांतै कहवाय वि० ॥१०॥स०॥

श्रीमाली कुलदीपक जेतसी, सेठ सुगुण भंडार वि० ।
तसु सुत सेठ सिरोमणि, **तेजसी पाटण** में सिरदार वि०॥११॥स०॥

तिण ए बिंब भराव्या भाव सु, सहस अधिक चौबीस वि० ।
कीध प्रतिष्ठा **पूनम** गछधरू **भावप्रभसूरी** स वि० ।१२॥स०॥

सहस जिणेसर विधिस्युं पूजस्ये, द्रव्य भाव शुचि होय वि० ।
इह भव परभव परम सुखी होस्यै, लहस्यै नवनिधि सोय वि०॥१३॥स०॥

जिनवर भगति करै मन रंग सूं, भविजन नी छै ए रीति वि० ।
दीपचंद्र सम जिनराजथी, **देवचंद्र** नी हो प्रीति वि० ॥१४॥स०॥

इति श्री सहस्त्रकूट जिन स्तवनम्

१—एक जीभ से

प्राभातिक छंद (चौपाई)

ऋषभादिक जिनवर चोबीस, प्रह उठी प्रणमु मुजगीस ।
चौदहसय[1] बावन गणधार, प्रणमु परभाते सुखकार ॥१॥

लाख अट्ठावीस[2] सहस अडयाल, मुनिवर संख्या चित संभाल ।
लाख चुम्मालीस[3] सहस छेंयाल, चउदंसय छ सहुणी विशाल ॥२॥

श्रावक संघ तणो परिवार, लाख पंचावन समकित धार ।
अडतीस सहस नवतत्त्व ना जाण, दृढ धर्मी प्रिय धर्म वखाण ॥३॥

एक कोड़ ने तेरे लाख, सहत्तर हजार सुभाख ।
श्रावकणी जिन शासन नी जाण, शीलवंत ने विनय प्रधान ॥४॥

चौविह संघ चोवीसी मांह, नित नित प्रणमु धरी उच्छाह ।
तीन भुवन जिन प्रतिमा जेह, प्रह सम प्रणमु आणी नेह ॥५॥

विहरमान जिनवर छे वीस, कोड दोय केवली जगीस ।
कोडि सहस दो मुनिवर सार, चरण कमल वदूं सुखकार ॥६॥

जिनवर आणा वरते जेह, दर्शन ज्ञान प्रमुख गुण गेह ।
देवचद्र वदे सुविहाण, धन धन जीवित जन्म प्रमाण ॥७॥

१–चौदह सौ बावन। २–मुनि २८४८००० ३–साध्वियां ४४४६१४

श्री अष्टापद तीर्थ स्तवन

भेटो भेटो शिव मुख काज, भविजन ! ए तीरथ ने
मेटो मेटो मोह अनादि, भव भवना संकट ने (ए टेक)

श्री **अष्टापद** गिरिवर उपर, जिनवर चैत्य जुहारो ।
भरत भूप कृत चौमुख सुन्दर, शिवमुख कारणधारो । भेटो० ।।१।।

बहु भव संतति कर्म सहित पण, जे भेटे ए ठाम ।
क्षेत्र[1] निमित्ते शुचि परिणामे, पामे निज गुण धाम । भेटो०।।२।।

ऋषभ जिनेश्वर परम[2] महोदय, पाम्या इण गिरीशृंगे ।
चिदानंदघन संपति पूरण, सिद्धा बहु मुनि संगे । भेटो० ।।३।।

भरत मुनीश्वर आतम सत्ता, प्रगट पणें इहां कीध ।
इण पर पाट असंख्य संजमी, सर्व[3] संवर पद लीध । भेटो० ।।४।।

जे निज सत्ता तत्व स्वरूपे, ध्यान एकत्वे ध्यावे ।
अनेकान्त गुण धर्म अनंता, थावे निर्मल भावे । भेटो० ।।५।।

तेहनु कारण आतम गुणत्रय,[4] तसु कारण जिनराज ।
तसु बहुमान भान हेतु ए, तिम ए भवोदधि पाज । भेटो० ।।६।।

मिथ्या मोह विषय रति धीठी, नाशे तीरथ दीठी ।
तत्वरमण प्रगटे गुण श्रेणे, सकल कर्मदल[5] नीठी । भेटो० ।।७।।

१–क्षेत्र के निमित्त से, भावशुद्धि द्वारा २–मोक्ष ३–मोक्ष ४–ज्ञान-दर्शन-चारित्र
५–कर्मसमूह का नाश होने पर ।

ठवणा भाव निक्षेप गुणी ना, समतालबन जाणी।
ठवणा अष्टापद तीरथ वर, सेवो साधक प्राणी। भेटो० ॥८॥
भव जल पार उतारण कारण, दुख वारण ए शृंग।
मुक्ति रमणी नो दायक लायक, तेम वंदो मन रंग। भेटो० ॥९॥
तीरथ[1] सेवन शुचि पद कारण, धारी आगम साखे।
शाह आनंदजी भक्ति विशेषे, थाप्यो गुण अभिलाखे। भेटो० ॥१०॥
साध्य दृष्टि साधन नी दृष्ठे, स्याद्वाद गुणवृंद।
देवचंद्र सेवे ते पामे, अक्षय परमानन्द। भेटो० ॥११॥

श्री ऋषभजिन शत्रुंजय स्तवन

(राग—जोधपुरा नी देशी)

कंचन[2] वरणा हो **आदि** जिणंदा, मारा लाल हो आदि जिणंदा।
त्रिभुवन तारक हो ज्ञान दिणंदा[3], मा ला हो ज्ञान दिणंदा।
सुगुण सोभागी हो भोगीधर ना, मा. ला हो भो ॥
निजगुण रमता हो त्यागी परना, मा० ला० हो त्यागी ॥१॥
तुझ विण दीठे हो हुँ भव भमीओ, मा० ला० हो हुँभव।
काल अनंते हो परवश गमीओ,[4] मा० ला० हो पर० ॥

१—तीर्थ की सेवना मोक्ष का हेतु है, ऐसा जानकर। २—सोना। ३—सूर्य।
४—कर्मवश खोया।

हवे प्रभु मलीयो हो तो दुख टलीओ, मा० ला० हो तो० ।
निश्चे मारग हो मैं अटकलीयो,[1] मा० ला० हो मैं० ॥२॥
जिनगुण श्रद्धा हो भासन तुमचो, मा० ला० हो भा० ।
प्रभु गुण रमणे हो अनुभव अमचो, मा० ला० हो अनु० ॥
शुद्ध स्वरूपी हो जिनवर ध्याने, मा० ला० हो जिन० ।
आतम ध्याने हो थई एक ताने, मा० ला० हो थई० ॥३॥
पुष्ट निमित्तो हो एकता रंगे, मा० ला० हो एकता० ।
सहज समाधि हो शक्ति[2] उमंगे, मा० ला० हो शक्ति० ॥
कारण जोगे हो कारज थाये, मा० ला० हो कारज० ।
कारज सिद्धे हो कारणं[3] ठाये, मा० ला० हो कारण० ॥४॥
तेणे थिर चित्ते हो अरिहा भजीये, मा० ला० हो अरिहा० ।
पर परिणति नी हो चाल ते तजीये, मा० ला० हो चाल० ॥
अतिशय रागे हो भवस्थिति पाके, मा० ला० हो भव० ।
साधन शक्ते हो विगते थाके, मा० ला० हो विगते० ॥५॥
नाभिनदन हो शत्रुंजय मो हे, मा० ला० हो शत्रु० ।
जसु पय वदी हो गुण आरोहे, मा० ला० हो गुण० ॥
मुनिवर कोडी हो तिहा सचि पहोंता, मा० ला० हो तिहा० ।
परम प्रभुता हो ध्यान ने धरता, मा० ला० सा० हो ध्या० ॥६॥

१—प्राप्तकिया २—बीर्योल्लास से ३—कार्य सिद्ध होनेपर कारण बेकार हो जाता है।

जिन गुण गावा हो जे अति हर्षे, मा० ला० हो जे० ।
पूर्णानंद हो ते आकर्षे, मा० ला० हो ते० ॥
आतम सत्ता हो जिन सम परखे, मा० ला० हो जिन० ।
शान्त सुधारस हो ते नित वरषे, मा० ला० हो ते० ॥७॥
एम निज कारज हो साधन रसीया, मा० ला० हो साधन० ।
जिन पद सेवा हो भक्ते उल्लसीया, मा० ला० हो भक्ते० ॥
शक्ति अनंती हो विगते[1] साधे, मा० ला० हो विगते० ।
देवचंद्र नो हो पद आराधे, मा० ला० हो पद० ॥८॥

श्री सिद्धाचल ऋषभ जिन स्तवन

(राग—धन्याश्री)

आनद रंग मिले रे आज म्हारें, आंनंद रंग मिले (२)
समिति गुपति अतर सु प्रगटी, मुमता सहज ढले ।आज०॥१॥
ज्ञान निध्यान प्रधान प्रकाशी, आतम शक्ति मिले ।
तत्त्व रमण निज सुख सपति के, अनुभव रस उछले ।आज०॥२॥
पर[2] परिणति गहन धूम सु, मोह पिशाच छले ।
शुद्ध स्वरुप एकता लीने, सब ही दोष दले ।आज०॥३॥
प्रत्याहार[3] धारणा धारी, ध्यान समाधि बले ।
संयोगी निज गुण के रोधक, कर्म प्रसंग टले ।आज०॥४॥

१—प्रकट होने मे २—पौर गलिक-राग रूपीधूंए क्षेवा, मोहरूपी राक्षस हमारी आत्मा को रुल रहा है, भटका रहा है। ३—विषयों मे मन को खेचना

सिद्धाचल मडन प्रभु दीठे, हम होये सबले ।
देवचंद्र परमातम, देखत, वछित सकल फले ।आज०।।५।।

श्री सिद्धाचल स्तवन

(राग–सिद्धाचल गिरि भेटयारे)

आज अम घर हरख उमाहो, सकल मनोरथ फलीआ ।
श्रीसिद्धाचल तीरथ भेटे, भव भवना दुख टलीआ रे ।।आ०।।१।।

श्री परमातम प्रभु पुरुषोत्तम, जगत दिवाकर दीठा ।
तन मन लोचन अमृतनी परि, लाग्या अति ही मीठारे ।।आ०।।२।।

ऋषभ जिनेश्वर पूज्या भक्ते, मिथ्या[1] तिमिर हरवा ।
शिव सुख संपति सकल वरवा, नर भव सफल करवा रे ।।आ०।।३।।

रायण तले प्रभु पगला वाँधा, दुत्तर भव जल तरवा ।
सकल जिनेश्वर ठवणा अरची, आणा मस्तक धरवा रे ।।आ०।।४।।

शिवा सोमजी चौमुख चैत्ये, आदिनाथ जिनराजा ।
वंदी पूजी लाहो, लीधो, सार्या आतम काजा रे ।।आ०।।५।।

एक शत आठ देहरी जिनवर, थापन महोत्सव कीधु ।
सुरत लघु शाखा **ओसवाले**, शाह **कर्मे** यश लीधु रे ।।आ०।।६।।

जीवा शाहे सइंहथ[2] जिनवर, बिब प्रतिष्ठा धारी ।
शाह **कपूर** भार्या **मीठी** ए मोटी लाज वधारी रे ।।आ०।।७।।

१—मिथ्यात्त्व रूपी अन्धकार २—अपने हाथो

सवत सतर ब्यासी वर्षे, जिन शासन शोभाये ।
जिनवर बिंब स्थापना हर्षे, लाभ विशेष उपाये रे ।।आ०।।८।।

माह मास सुदि पाचम दिवसे, खरतर गच्छ सुखकारी ।
पाठक **दीपचंद** गणि कीधी, एह प्रतिष्ठा सारी रे ।।आ०।।९।।

श्री शत्रुंजय उपर जिनवर, जे थापे विधि युक्ते ।
देवचंद्र कहे धन धन ते नर, जे लीना जिन भक्ते रे ।।आ०।।१०।।

श्री सिद्धाचल ऋषभ जिन स्तवन

(ढाल-पंथडो निहालु रे, बीजा जिन तणो रे—ए राग)

चालो मोरी सहियां ! श्री विमलाचले रे, तिहां श्री ऋषभ जिणंद ।
पुरव निवाणु वार समोसर्या रे, केवलनाण दिणंद ।।चालो०।।१।।

शुद्ध तत्त्व रसीआ बहु मुनिवरु रे, कीध अजोगी भाव ।
तेह संभारी नमतां नीपजे रे, निर्मल आतम स्वभाव ।।चालो०।।२।।

पांच कोडी थी मासी अणसणे रे, श्री पुंडरीक मुनिराय ।
चैत्री पूनम सिद्ध थया तिणे रे, पुंडर गिरि कहेवाय ।।चालो०।।३।।

विधि सुं जे सिद्धाचल भेटशे रे, करी उत्तम परिणाम ।
नियमा भव्य कह्यो ते जिनवरे रे, ए तीरथ अभिराम ।।चालो०।।४।।

सुरनर किन्नर गुण गावे मुदा रे, प्रणमे प्रहसम रीझ ।
देवचंद्र ए तीरथ सेवतां रे, सकल मनोरथ सीझ ।।चालो०।।५।।

श्री शत्रुंजय स्तवन

(मोरा आतम राम नी देसी)

चालो चालो ने राज श्री सिद्धाचल जईइं ।
श्री विमलाचल तीरथ फरसी, आतम[1] पावन करीइ ॥चा०॥१॥
इण गिरवर पर मुनिवर कोडी, आतम तत्त्व निपायो ।
पूर्णानंद सहज अनुभव रस, महानद पदपायो[2] ॥चा०॥२॥
पुडरीक पमुहा मुनि कोडी, सकल विभाय गमायो ।
भेदा भेद तत्त्व परिणित थी, ध्यान अभेद उपायो ॥चा०॥३॥
जिनवर गणधर मुनिवर कोडी, ए तीरथ रग राता ।
सुध सत्ती व्यक्त गुण सीद्धी, त्रिभुवन जन नो त्राता ॥चा०॥४॥
ये गिर[3] फरस्यै भव्य परीक्षा, दुरगति नो उच्छेद ।
सम्यग्दर्शन निर्मल कारण, निज आनंद अभेद ॥चा०॥५॥
सवत अढार चिडोत्तरे (१८०४) वरस्ये, सित[4] मर्गसिर तेरसीइ ॥
श्री सूरत थी भक्ति हरष थी, संघ सहीत उल्लसीइ ॥चा०॥६॥
कचरा कीका जिनवर भक्ती, रूपचंद जी इंद्र ।
श्री संघ ने प्रभुजी भेटाव्या, जगपति प्रथम जिणंद ॥चा०॥७॥
ज्ञानानदिते त्रिभुवन वदीत, परमेश्वर गुण भीना ।
देवचंद पद पामै अद्भुत, परम मंगल लयलीना ॥चा०॥८॥

इति श्री शत्रुंजय स्तवन

१—अपने स्वरूप को प्रकट किया २—मोक्षपद ३—सिद्धाचलतीर्थ ४—शुक्लपक्ष-की

श्री शत्रुंजय स्तवन

(आज गई थी हुं समवशरण में—ढाल)

चालो सखी जिन वंदन जईइ, श्री विमलाचल[1] शृंगे रे ।
अनत सिद्ध ध्याने सिद्धाचल, फरसीजे मन रंगे रे ।।च०।।१।।
गुरु आचारी संगे सुविहीत, पोते पायविहारी रे ।
एकमहारी भूमि संथारी, सकल सचित परिहारी रे ।।चा०।।२।।
श्रावक श्राविका जिन गुण गाती, प्रभु भक्त अति राती रे ।
तीरथ फरसन मति ऊ जाती, गज गति चतुर सुहाती रे ।।चा०।।३।।
मुनिवर × कोडी सिवगति पोहोती, निज[2] अनुभव रस लसती + रे ।
विषय[3] कषाय दोष उपसमती, रत्नत्रयी मां रमती रे ।।चा०।।४।।
ऋषभादिक जिन फरसित थानक ❀, फरस्यां पाप पुलाइं रे ।
शुद्ध गुणी समरण गुण प्रगटे, ध्यान लहेर लीलाइं रे ।।चा०।।५।।
अतीत अनागति नें वर्त्तमाने, ए तीरथ सहु क्क टीको रे ।
श्री शत्रुंजय भक्तइं पामें, देवचंद पद नीको रे ।।चा०।।६।।

इति श्री शत्रुंजय स्तवनम्

पाठान्तर—× जिहांमुनि + लहती ❀ अगे क्क सिर कीको

१—विमलाचला-के शिखर पर २—आत्मानुभव में रमण करते हुए
३—विषय-कषाय जन्य दोषो को शान्त करते हुए ४—उत्तम

श्री सिद्धाचल ऋषभ जिन स्तवन

(ढाल—मोरा आतम राम कइसइ दरसण पासु ; ए देशी)

मोरा ऋषभ जिणंद कइयइ[1] दरसण पास्यु ॥मो०॥
सिद्धाचलनी पाजइ[2] चढता, मरु देवा सुत ध्यासु ।
घणा दिवस नो अंग उमाहो, ते पामी सुख भास्यु ॥मो०॥१॥

निरमल नीरइ[3] प्रभुनइ अगइ, कहीयइ न्हवण करास्यु ।
केशर चदन मृगमद घसिनइ, तोरइ देह लगास्यु ॥मो०॥२॥

पूज करीनइ[4] आगलि बइसी[5], पाचे अग नमास्यु ।
भाव धरीनइ मन नइ रंगइ, नाभिनदन गुण गास्यु ॥मो०॥३॥

वार वार तुझ मुख निरखी, हीयड़इ[6] हरखति[7] थास्यु ।
तेरो ध्यान धरी अति सारो, सकल मिथ्यात विनास्यु ॥मो०॥४॥

आठ करम नो अंत करीने, दुरगति दूर गमास्यु ।
'चंद' कहइ इम मन नै रंगइ, तुझ ध्यानइ[8] मन लास्यु ॥मो०॥५॥

१—कब २—पाल ३—जल ४—करके ५—बैठकर ६—हृदय में
७—हर्षित ८—ध्यान से

शत्रुंजय चैत्य परिपाटी

(ढाल (१) सफल संसार अवतार एहुं गिणू—ए देशी)

नमवि अरिहंत पयगात[1] गुण आगरा,
खविय[2] कम्मट्ठगा सिद्ध सुह[3] सागरा।
तीस छग गुणजू आधार सूरीश्वरा,
वायगा[4] उत्तमा नाण वायण धरा ॥१॥
विष समा काम भोगादि सवि परिहरी।
शुद्ध शिव साधिवा साधना आदरी ॥
टाण एकांत तित्थादि सुचि[6] वासिणो।
दुविह तप संगया वंदिमो यति गणो ॥२॥
जयवि जग मांहि जिहि ठाणि जिय गुण लहै।
तेण थानक भणी तेह उत्तम कहै ॥
जगत उपगारि परिसिद्ध बहु गुण थवै[7]।
मुनि भणी जिनवरा सिद्ध कारण चवै ॥३॥
तीर्थंकर केवली सुयधरा मुनिवरा।
भासए तीर्थ जंगम तहा थावरा ॥

१—पद-पैर, प्रणत। २—क्षयकर। ३—सुख। ४—छत्तीस गुणयुक्त। ५—उपाध्याय। ६—पवित्र। ७—स्तुतिकरना।

जंगम तीर्थ परसिद्ध गुण गण भरया।
तीर्थ थिर पंच सुज्जेह जे अणु सरया ॥४॥
तेण विमलाचलो तित्थ गुण आगरो।
मुनि गणँ सथुओ गरिम धीरम धरो ॥
रिसह जिण राय बहु वार जिहां आविया।
पुंडरीकादि मुणि सिद्ध पय पावीया ॥५॥
विमलगिरि नाम जे भत्ति भर थी जवे।
सिद्धगिरि दंसण सुलह बोही हवें॥
(सिद्धगिरि) फासणा कम्म[1] रय मोहणी।
सम्म दंसण पमुह गुणह आरोहणी ॥६॥
तित्थ सत्रुंजउ जिण भवण जुत्तउ।
पुव्व बहु पुण पब्भार थी पत्तउ॥
ठवण जिण भाव जिण भेद नवि आणीयैं।
झाण[2] पय रोहणँ कारण जाणीयैं ॥७॥
तेण आलस तजी तित्थ सेवन करो।
आश्रव पंक[3] थी आतमा उद्धरो॥
चेईय विणयादिकँ निज्जरा उपदिसी।
दसम अंगें ववहार सुत्ते वसी ॥८॥

१—कर्मरूप रज का नाश करने वाली। २—ध्यानपद-पर चढ़ने के लिये प्रबलकारण। ३—कीचड।

मुद्धता कारण मोहभड[1] वारणं ।
दंसण नाण उज्जाण[2] पडिबोहणं[3] ।।
दीह संताण कम्मद्दु विद्धंसणं ।
कुणह भव्वुत्तमा विमलगिरि दंसणं ।।६।।

ढाल (२) (चरण करणधर मुनिवर वंदियै–ए देशी)

भाव धरि नै चैत्य जुहारियै, श्री सिद्धाचल अंगे जी ।
जिण दंसण पूयण गुण सथुई, करो भविक मन रंगे जी ।।भा.।।१।।
पालीताणं रे ऋषभ जिणेसरु, तास प्रभु भय टालै जी ।
ऋषभ चरण वंदो मन नी रली, ललित सरोवर पालै जी ।।भा.।।२।।
गिरवर मूलें सुंदर वावडी, जिहां भवि अंग पखालें जी ।
तीरथ वधावी वंदी नै चढै, आतम गुण उजवालै जी ।।भा.।।३।।
पाजै चढतां रे नेमि जिणेसरु, यादव कुल आधारो जी ।
चरण नमी ने गिरिवर ऊपरै, हरख धरी पधारो[4] जी ।।भा.।।४।।
धोली परबै रे भरह भरहवई, चरण नमो सुभ कामी जी ।
महला संग थकां पिण मोहने, खंडी नै सिव पामी जी ।।भा.।।५।।
नेमि चरण वंदी ने परवते, आरोहै आणंदे जी ।
आदिनाथ पुंडरीक गणी तणा, भवियण पय[5] जुग वंदै जी ।।भा.।।६।।

१–मोहरूपी सुभट । २–बगीचा । ३–विकासक । ४–पधारना । ५–चरणयुगल ।

गिरवर चढतां मुनिवर संचरे, जे सीधा इण तित्थो जी ।
आतम उद्धरवाने कारणे, परम पवित्र ए तित्थौ जी ।।भा.।।७।।

अनुपम देहरा सुंदर अति भला, सूरजकुंड भीमकुंडे जी ।
जिनवर दोय चरण जगनाथ ना, प्रणम्यां पातक खंडे जी ।।भा.।।८।।

उलखाझोले रे श्री जिनवर नमी, चेलण तलाई आणंदो जी ।
सिद्धशिला तिहा मुनि निज गुण वरी, पाम्या परमाणंदो जी ।।भा.।।९।।

हरख धरी ने सिद्धवडे वली, समरो सिद्ध मुणिंदो जी ।
आदिपुरे जिनवर चौवीस ना, प्रणमी पय[1] अरविंदो जी ।।भा.।।१०।।

पालीताणा पाजै अनुक्रमै, आव्या पोल दुवारो जी ।
वाघणि पोले मंडप चैत्य नो, दीठो सुचि दीदारो जी ।।भा.।।११।।

वाघणि प्रतिबोधी आचारजै, थई कषाय विहीनो जी ।
ए तीरथ न तजे जे पाप ने, ते तिरजंच[2] थी दीनों जी ।।भा.।।१२।।

हनुमंत खेत्रपाल चक्रेसरी, गोमुख कवड़ अंबाई जी ।
आदिक सासन सेवक देवता, भगति वंत सुखदाई जी ।।भा.।।१३।।

ढाल (३) सहस समण सुं सुक संजम धरो-ए देशी ।

प्रथम प्रवेसे रे नेमि जिणेसरू, चेईय सुंदर अतिहि सुहंकरु ।
जिणवर बिंब परम सम कारणं, त्रिण सें सोल नमो दुख वारणं ।।

१–पद कमल । २–पशु-पक्षी ।

दुख वारणा जिन बिंब नमता होइ समकित सोहिलो ।
समता[1] सुधारस कुंड जिनवर देव दरसन दोहिलो ॥
जिहा चेईअ मगल तास छ गज्ज भेरतसाह[2] मंडावीयो ।
दुख हेतु परिग्रह सकल जाणी सुद्ध क्षेत्रे वावीयो ॥१॥

जिणवर चैत्य जुगल तसु आगलै, अरिहा तीन नमो अति मंगलै ।
जैमलसाह तणो चौमुख वरु, श्री पुरुसोत्तम सोलम सुहकरु ॥
सुहकरु श्री कुंथु जिनवर तेम चद्रप्रभु तणो ।
जिनराज बिंब इग्यार मंडित परम सुचि सिद्धायणो ॥
श्रेयांसतिम श्री शांति जिनवर चैत्य जुगल सुहामणा ।
इगतीस बिंब जुहारि भगतै पवित्र थावो भवीयणा ॥२॥

सद्धा वुहरा कारित देहरो, देहरी सुदर मंडित सेहरो ।
मूल गंभारे ऋषभ जिणेसरु, बत्तीस बिंब नमो समताधरु ॥
समताधरु जिनराज नमता कर्म कलक गलै घणा ।
अति शुद्ध निर्मल परम अक्षय रूप प्रगटइ आपणा ॥
श्री वीतराग प्रगात मुद्रा देखता जो साभरइ ।
निज सुद्ध साध्य एकत्व करंता आत्म साधकता वरंइ ॥३॥

वलि प्रवेशे रे जिमणी श्रेणि मे, समवशरण श्री वीर तणो नमै ।
पास विहार भंडारी कृत थयो, कुंथनाथ चेइय जिन गुणथवो ॥

१—समत्वरूपी अमृतरस । २—नाम ।

गुण थवो भगतें एह थाप्या चैत्य तीन मुहामणा।
उवभाय वर श्री **दीपचंदे** गच्छ **खरतर** गुण घणा ॥
तिहा चैत्य एक प्रसिद्ध सुंदर कुंथनाथ जिणंद नो।
अति भगति युगते नमो पूजो भविय मन आनंद नो ॥४॥

मोटो गढ श्री **करमा साह** नो, सोलमवार उद्धार ए नाह[1] नो।
पोलें श्री पुंडरीक मुणीवरु, पंच कोडि थी सीधा इण गिरु ॥
इण गिरे सीधा चैत्र पूनिम सुकल ध्याने ध्यावता।
तसु चैत्य जिनवर वीस[2] सगहीअ वंदीये मन भावता ॥
तसु बाह्य भमती देहरी सत[3] च्यार अधिकी दीस ए।
जिन बिंब त्रिणसै अहीय सडसठ प्रणमतां मन हींसए ॥५॥

दीजै वीजी वार प्रदक्षणा, **संघवी** चैत्य करो जिन वंदना।
वीकानेरी **सांतो दास नो,** चैइअ अति उत्तंग सु आसनो ॥
आसनें चैत्ये पंच जिनवर मूल नायक सोहणा।
तेत्रीस मुद्रा सिद्धजी नी भविक मनि पडि बोहणा ॥
संघवी गोत्रे नाम **पांचो** देहरी पण तसु करी।
जिन बिंब इग चोमुख मुद्रा सोल थापी अति खरी ॥६॥

देहरी जिन माता नी सुंदरू, उछंगे[4] जिनराज दया वरु।
श्रीसिद्धचक्र चैत्य प्रकास थी, जिनवर च्यार नमो उल्लास थी॥

१—नाथ का २—सत्तावीस ३—चहोत्तर ४—गोद मे

उल्लास थी श्री विजय तिलकै, सासनाधिप जिनवरू ।
श्री वीरनाथ अनाथ नाथां वंदीयें अति मुंदरू ।।
जगदीस त्रीस निरीह[1] निर्मम नमो धरी अभेदता ।
मिथ्यात्व आदिक भ्रमण हेतु मूल थी उच्छेदता ।।७।।

सहसकूट नमो धरो भावना, तिन काल नारे जिननी थापना ।
मेघबाई नी देहरी वंदीयै, जिनवर तीन नमी आणंदीयैं ।।
आणंदीयै चौमुख जिन चौतीस पूठक[2] मन रमो ।
श्री **दीव संघ** विहार जिनवर बिंव छत्तीसै नमो ।।
इहां अछै भुंहरो तिहा जिनवर **समर सारंग** थापना ।
वली मूलग वस ही नमे जिनवर बिंव नमीयै निःपापना।।८।।

श्री अष्टापद जिन चौवीस ए, बिंब अट्ठावन मुंदर दीस ए ।
कीधो **बाईगुलाल** विहार ए, श्री समेतशिखर सुखकार ए ।।
सुखकार सार विहार सुंदर कर्मभार निवारणो ।
श्री अजितादिक वीस जिनवर सिद्धक्षेत्र सुहामणो ।।
जिहां वीस जिनवर सिद्ध ठवणां चरण वलि जिन देवना।
वंदीयै भवियण घणौ हरखै कीजीयैं सुचि सेवना ।।९।।

१– निस्पृह २– पीछे

समवशरण जिनराज विकासता, चोमुख रूपे देहरा सा सता ।
सोनी तिलक तणो चौमुख वरू, चोमुख दस सूरत ना सुंदरू ॥
सुदरु देहरी दोय जिनवर बिंब च्यार सुहामणा
श्री रूख रायण जग प्रसिद्धो लीजिये तसु भामणा
तसु तणें पगला रिषभजी ना वंदतां भव भय हरैं
वीतराग भावें नाग[1] मोरी तजी वैर तिहां ठरैं ॥१०॥
देहरो इक चोविसी आवती, पंचावन जिन बिंब सुहावती ।
चौदह सय बावन गणधार रा, जिन चौवीसे चरण सुखकाररा॥
सुखकार चेइं समान वसही बिंब सग[2] चौमुख वली
देहरी **अमृत बाई** यैं तिहां शांति मुद्रा अति भली
वलि सेठ **लखमीचंद शांतिदास** कीधी देहरी
जिनराज तीन जुहारतां मनभ्रांति कस्मलता[3] हरी ॥११॥
गाम गंधारे रे **राम जी सेठ** नो चौमुख सुदर श्री परमेष्टि नो ।
ताजी भमती देहरी च्याल ए पणच्यूय बिंब तिहां अडयाल ए ॥
अडयाल अहीया एक सय तिहां बिंब तीर्थंकर तणा
तिहां मूल देहरे ऋषभजिणवर तरण तारण कारणा
जिन बिंब सत्तावीस मडप गभारे छतीस रा
जिनचंद नाभि नरिंद नंदन देखतां मन हीस रा ॥१२॥

१–र.पं और मोर २–सात चौमुखा ३–पाप

जनम सफल ए करमासाह नो, जिण चैत्य कर्यो वहु लाहनो।
गज युग खंधे रे मरुदेवी मुदा, चक्की भरह करे सेवन सदा ।।

सेत्रना करतां सुद्ध निर्मल आतम संपत्ति पामीयैं
सेत्रुंज तीरथ नाथ उसभो[1] देखि पातक वारीयैं
तसु जनम सफलो सिद्ध खेत्रे जेण जिनवर भेटीया
चिरकाल दुसमन कर्म सगला तेहना भय मेटीया ।।१३।।

त्रिण सय विंव ते मंगल चैत्यना, प्रणमे प्रहसम उठी नित्यना।
आसय[2] दोष आसातन वारतां, लाभ अनंतो चैत्य जुहारतां ।।

जुहारतां जिनराज पडिमा, वली तीरथ ऊपरे
ते वली विमल गिरींद ऊपर लाभ लेखो कुण करै
जिहां कोड़ि मुनि परभाव परणति त्यागि आतम गुण वरया।
निज सुद्ध ध्याने सुद्धध्याने सिद्धता पद अनुसरया ।।१४।।

बीजे शृंगे रे कुंतासर अछै, इंद्र[3] थूभ पण जिन पणतीस छै।
अदवुद[4] चेईअ ऋषभ जिणेसरु, मोटी काय जग विस्मय करू ।।

विस्मय करू श्री अजित चेइअ कुंड जुगल रलीयामणा
तिहां कुसुमवाडी मांहि गोयम चरण वंदों सुभमणा
तसु आगले अड जीर्ण चेईय तिहां देव जुहारीयैं
अति हरख धरतां पोल द्वारे चोमुख मांहि पधारियैं ।।१५।।

१–ऋषभदेव २–मानसिक दोष ३–इन्द्र कारित चैत्य ४–अद्भुत बावा

पोले श्री नमि जिनवर देहरो, बिंब सत्तावन नमी भवभयहरो।
बाहर भमती देहरी सुख करू, इक सो आठ अतिहि मनोहरू ।
मनोहरु जिनवर बिंब इग सय दोय बेठा वेसस्यै
छत्तीस मंगल चैत्य इगसय सोल भविजन मन धसै
शिवा सोमजी सुत **रतनजी** कृत शांति देव प्रसाद में
पंचास जिनवर सुद्ध मुद्रा नमो भवि आल्हाद में ।।१६।।
देहरोसुविधि जिणेशर नो भलो, पार्श्व नाथ जिन चैत्य ने निरमलो।
मुद्रा नव **जिन दत्तसूरीश्वरू**, **कुशलसूरीश्वर खरतर** गणवरू ।
गणवरु देहरी सिद्धचक्रनी **साह लाल** विहार ए ।
जिन बिंब सत्तार च्यार अधिका करइ भवि निस्तार ए।।
देहरो सुमति जिणद केरो **साह ठाकुर** उधर्यो ।
जिन बिंब(सय)गणधार मंडप देखतां मुझ मन ठर्यो।।१७।।
पगला तिहां चौवीस जिणंद नां, चवदह सै बावन गणि वृंदना
जेसलमेरी **जिदा थाहरू**, तसुकृत पीठ अछे अति सुंदरु
सुंदरु रायण रुंख पासै ऋषभ जिन पय वंदियै
देहरी तीन उत्तंग देखी चित्त में आणंदियै
श्री अजितनाथ विहार जिन **नव**२ दोय गणिवर थापना
गोमुख अने चक्कसरी तिहां भगत जन ने आसनां ।।१८।।
सूरजी साह नो शांति विहार ए, जिनवर दोय जिहां सुखकार ए
भमती तीजी चौमुख मांहिली, जिन मुद्रा अडयाल[1] छै निरमली

१—अड़तालीस

निरमली मुद्रा तीर्थं पति नी तिहां **संघवी सोमजी**
कर जोड़ि उभो तीर्थ सेवा याचना याचे अजो
चौमुख सुंदर च्यार जिनवर रिषभदेव जिणंदना
अहसमे ऊठी भक्ति चित्तै करो नित प्रति वंदना ॥१६॥
समतासागर जिनवर देखीयै, जनम सफल एहिज मन लेखियै ।
अरिहत मुद्रा दीठां आपणी; साधक सकति वधै भव[1]कापणी ॥
कापणी पातक पूर्व कृननीतीर्थ सेवा सारियै
सुचि कारणै निज सुद्ध सुचिता[2] भाव नियमा धारियै
उद्धार अट्ठम **सोमजी** सुत **रूपजी** संघवी कर्यो
भव पंक[3] खूतो दीर्घकाजी आतमा इम उद्धर्यो ॥२०॥
बीजी भूमै देहरे उपरै, चौवीसी देहरी चोविस जिनवरे ।
बीजा जिन चोवीस तिहां अछै चोमुख इग गंभारै मध्य छै ॥
मध्य ए चोमुख तुंग[4] चेइय गोख ध्वज कलसै करी
सोभतो समकित हेतु भविनै देखता चक्षु ठरी
श्री शांतिनाथ विहार सुंदर **राय संप्रति** उद्धर्यो
जिन बिंब अडयुत शांति जिनवर देखि मन हरखै वर्यो॥२१॥

१–भव का नाश करने वाली २–पवित्रता ३–संसार रूपी कीचड़ में फंसा हुआ
४–उन्नत चैत्य

तीरथनाथ विमल गिरिफरसना, करीयै भवीय धरि सुचि वासना[1] ।
मुनिवर कोडि अनंता शिव लहे, ते संभार्या आतम गह गहे ।।

गह गहै आतम सिद्ध क्षेत्रे तेह साधक पद वरे
निज शुद्ध पूरण चेतनाघन[2] भाव अक्षय अनुसरे
जिहा अछै सुख अत्यंत निरमल आत्म परणामिक पणै
अविनाशि सत्ता सहज भावै तासु गुणछीय कुणगणै ।।२२।।

ढाल (४) भरत नृप भाव सुं ए—ए देशी

सेत्रुज गिरि भेटीये ए, मेटिये कर्म कलेश ।
मिथ्या दोष निवारिवा ए, धारवो समकित देस ।।से०।।१।।

काल अनादि भवोदधिए, भमतां भव समुदाय से० ।
यान[3] पात्र सम जांणज्यो ए, एहिज तीरथ राय ।।से०।।२।।

मानव भव पामी करीए, ए तीरथ गुण गेह से० ।
जिण नवि भेटयो जुगतसुंए, ते दुखियां में रेह ।।से०।।३।।

इहां सीधा पण कोडिसुंए, गणधर श्रीपुंडरीक से० ।
चैत्रसुकल पूनिम दिनए, निज सत्ता गुण ठीक ।।से०।।४।।

फागुण सुदि सातम लह्य ए, नमि विनमी सिव[4] थान । से०
चौसट्ठि[5] नमि पुत्री वसुए, आठमे केवलज्ञान ।।से०।।५।।

१—पवित्र भावना २—आत्मा ३—नौका समान ४—मुक्ति ५—चौसठ

सागर मुनि तिग¹ कोड़ि थी ए, कोडि थी मुनि श्रीसार ।।से०।।
तेर कोड़ि थी सिव वरू ए, सोम श्री अणगार ।।से०।।६।।

ऋषभवंश आदितजसा ए, तसु सुत आदित्य कांति ।से०।
एक लाख परवार सु ए, पाम्या परम प्रसांति ।।से०।।७।।

ऋषभ वंश मुनिवर बहुए, गणधर कोड़ि असंख ।से०।
सिव पुहता सिद्धाचले ए, निरमम ते निरकंख² ।।से०।।८।

दश कोडी थी सिव लहयुं ए, द्रावड़ ने वालखिल्ल ।से०।
चवद सहस निर्ग्रंथ थी ए, दमितारी निःसल्ल ।।से०।।९।।

आदिनाथ उपगार थी ए, कोड़ि सतर अणगार ।से०।
श्रीअजित सेन मुनीस्वरुए, पाम्यु सुख अपार ।।से०।।१०।।

आणंद रक्षित भावना ए, भावता सिवपुर पत्त³ ।से०।
कालासी इग⁴ सहस थी ए, मुनि सुभद्र सय⁵ सत्त ।।से०।।११।।

रामचंद्रपण कोडि थी ए, नारद मुनि पिस्ताल ।से०।
पांडव कोडी वीस थी ए, सिव पुहता समकाल ।।से०।।१२।।

सब⁶ प्रजून मुनीश्वरू ए, मुनि साढा त्रिण कोडि ।से०।
विमलाचलि निरमलथया ए, ते प्रणमूं करजोड़ि ।।से०।।१३।।

थावच्चा सुत सुक मुनी ए, सेलग पंथक सिद्ध ।से०।
वसुदेव घरणी सिव लहयुं ए, सहस पैंत्रीस प्रबुद्ध ।।से०।।१४।।

१–तीन करोड २–आकाक्षा रहित ३–प्राप्त किया ४–एक हजार
५–सात सौ ६–सांब-प्रद्युम्न

वेदरभी नि.करमती ए, सामी सल चौफाल ।से०।
श्री वससार अनतता ए, पामी गुण संभाल ।।से०।।१५।।
सीधा बहु मुनि इणगिरवरे ए, यादव वश अनेक ।ने०।
श्रेणिक कुल साधु साधवी ए, सिद्ध लह्या थिर टेक ।।से०।।१६।।
विद्याधर भूचर[2] घणा ए; इहां पाम्या गुणा कोडि ।से०।
आतम हेते एहनी ए, कोन करी सकै होडि ।।से०।।१७।।
तीवारे तीरथ पति ए, ए तीरथ बहुवार ।से०।
आव्या भविजन तारवा ए, निरमम निरहंकार ।।से०।।१८।।
पुंडर गिरिनी सेवना ए, जेह करइ भवि जीव ।से०।
ते आतम निरमल करी ए, पामे सुख सदीव ।।से०।।१९।।

।।कलश।। इम सकल तीरथनाथ शेत्रुंज, शिखर मंडण जिनवरो।
श्री नाभिनंदन जगआनंदना विमल शिवसुखआगरो ।।
शुचि[3], पूर्ण चिदघन[4] ज्ञान दर्शन सिद्ध उद्योतन मनै ।
निज आतम सत्ता शुद्ध करवा वीर जिन केवल दिनै ।।१।।
सुविहित खरतर गच्छ जिनचंद्र सूरि शाखा गुणनिलो ।
उवझाय वर श्री राजसारह सीस[5] पाठक सिल तिलो ।।
श्री ज्ञान धर्म्म सुसीस पाठक राजहंस गुणे विर्यो ।
तसु चरण सेवक देवचंद्रे वीनव्यो जग हितकरो ।।२।।

।। इति श्री शेत्रुंज चैत्य प्रवाड़ संपूर्णम् ।।

१—मुक्ति २—मानव ३—पवित्र ४—ज्ञानपूर्ण ५—शिष्य

श्री सम्मेतशिखर स्तवनम्

श्री सम्मेत गिरींद!! हर्षधरी वंदो रे भविका !
पूरव संचित पाप तुमे निकंदो रे भविका !

जिन कल्याणक थानक देखी आणंदो रे भविका ।श्री० (टेक)
अजितादिक दस जिनवरु रे, विमलादिक नवनाथ ।
पार्श्वनाथ भगवानजी रे, इहां लह्या शिवपुर साथ रे भविका॥श्री०॥१॥
कल्याणक प्रभु एक नुं रे, थाये ते शुचि ठाम ।
वीस जिनेश्वर शिव लह्या रे, तेणेएगिरि अभिराम रे भविका॥श्री०॥२॥
सिद्ध थया इण गिरिवरे रे; गणधर मुनिवर कोडि ।
गुण गावे ए तीर्थना रे, सुरवर होडा होडि रे भविका० ॥श्री०॥३॥
परमेश्वर नामे अछे रे, वीसे टूंक उत्तुंग ।
चरण कमल जिनराज नारे, सुर पूजे मन रंग रे भविका०॥श्री०॥४॥
भाव सहित भेट्यो जिणे रे, गिरिवर ए गुण गेह ।
जिन तन फरसी भूमिका रे, फरसे धन्य नर तेह रे भविका०॥श्री०॥५॥
नाम थापना छे सही रे, द्रव्य भाव नो हेत ।
संशय तजी सेवो तुमे रे, ठवणा तीर्थ समेत भविका० ॥श्री०॥६॥
तीरथ दीठे सांभरे रे, **देवचंद** जिन वीस ।
शुद्धाशय तन्मय थइ रे, सेव्यां परम जगदीस रे भविका० ॥श्री०॥७॥

श्री सम्मेतशिखर तीर्थ स्तवन

ढाल–विंडले भार घणो छे राज ! वातां केम करो छो, ए देसी

भेट्यो भाव धरी मैं आज, ए तीरथ गुण गिरुओ ।।टेक।।

जंबूद्वीप दक्षिण वर भरते, पूरव देश मझार।
श्री **सम्मेत** शिखर अति सुंदर, तीरथ में सरदार ।।भेट्यो०।।१।।

वीस जिनेश्वर शिव पद पाम्या, इण परवत ने अगे ।
नाम संभारी पुरुषोत्तम ना, गुण गावो मन रंगे ।।भेट्यो०।।२।।

इम उत्तर दिशि ऐ खत क्षेत्रे, श्री सुप्रतिष्ठ नगेन्द्र ।
श्री सुचंद्र आदि जिन नायक, पाम्या परमानंद ।।भेट्यो०।।३।।

इम दश क्षेत्रे वीसे जिनवर, एक एक गिरिवर सिद्ध ।
तित्थोगाली पयत्नां मांहे, ए अक्षर प्रसिद्ध ।।भेट्यो०।।४।।

ए तीरथ वंद्ये सवि वंद्या, जिनवर शिव पद ठाम ।
वीसे टूंक नमो शुभ भावे, संभारी प्रभु नाम ।।भेट्यो०।।५।।

तरीये जेहने संग भवोदधि, त्रण रतन जिहां लहीये ।
जे तारे निज अवलंबन थी, तेहने तीरथ कहीये ।।भेट्यो०।।६।।

शुद्ध प्रतीति भक्ति थी ए गिरि, भेट्या निरमल थइए ।
जिन तनु फरसी भूमि दरण थी, निज दरसन थिर करीए।।भेट्यो।।७।।

सूत्र¹ अरथ धारी-पण मुनिवर, विचरे देश विहारी ।
जिन कल्याणक थानक देखी, पछी थाय पद धारी ।।भेट्यो०।।८।।

श्री सुप्रतिष्ठ सम्मेत सिखरनी, ठवणा करी जे सेवे ।
श्री शुकराज परे तीरथ फल, इहाँ बैठा पण लेवे ।।भेट्यो०।।९।।

तसु आकार अभिप्राय तेहने, ते बुद्धे तसु करणी ।
करतां ठवणां शिव फल आपे, एम आगमे वरणी ।।भेट्यो०।।१०।।

जिण ए तीरथ विधि सु भेठयो, ते तो जग सलहीजे² ।
ते ठवणा भेटत अमे पण, नर भव लाहो लीजे ।।भेट्यो०।।११।।

दश क्षेत्रे एक एक चौवीसी, वीस जिनेसर सीझे ।
सिद्ध क्षेत्र वहु जिन नो देखी, म्हारो मनड़ो रीझे ।।भेट्यो०।।१२।।

दीपचन्द पाठक नो विनयी, **देवचन्द्र** इम भासे ।
जे जिन भक्ते लीना भविजन, तेहने शिव सुख पासे ।।भेट्यो०।।१३।।

१—सूत्रार्थ को अच्छी तरह जानने वाले मुनि भी देश विदेश मे विचरण करते हुए जिनेश्वर भगवन्तो की कल्याणक भूमि की स्पर्शना कर लेने के पश्चात् आचार्य पदधारी बनते है । २—जगत् मे प्रशंसनीय

श्री सम्मेत शिखर तीर्थ स्तवन

ढाल—सूंबरा नी देशी

श्री **सम्मेतशिखर** वरु, तीरथ सिरदार।
जिहां जिनवर शिवपद लह्य[1], मुनिवर गणधार ।।श्री समे०।।१।।
श्री अजितादिक जिनवरु[2], चोविहसंघ समेत।
आव्या इण[3] गिरि ऊपरे, धारी शिव संकेत ।।श्री समे०।।२।।
काउसगा मुद्रा धरी, करी योग निरोध।
सकल प्रदेश अकंपना, शैलेशी शोध ।।श्री समे०।।३।।
कर्म अघाती खेरवी❀, अविनाशी अनंत।
अफुसमाण+ गतिथी लह्य[1], इक[4] समय लोकांत ।।श्री समे०।।४।।
एकांतिक आत्यतिको, निरद्वंद महंत।
अव्याबाधपणे[5] वर्या, कालै सादि अनंत ।।श्री समे०।।५।।
सिद्ध बुद्ध तात्विक दशा, निज गुण आणंद।
अचल अमल उत्सर्गता, पूरण गुण वृंद ।।श्री समे०।।६।।
ए तीरथ वदन करयां, सहु सिद्ध वंदाय।
सिद्धालंबी चेतना, गुण साधक थाय ।।श्री समे०।।७।।
साधकता करतां थकां, थाये निज सिद्धि।
देवचंद पद अनुभवै, तत्वानंद समृद्धि ।।श्री समे०।।८।।

इति श्री सम्मेत शिखर वीस जिन स्तवनम् संपूर्णम्

१—वर्या। २—जिनवरा। ३—ए। ४—एक। ५—पणु।
❀ अघाती कर्मो को खपाकर। + आकाश प्रदेशों को न छूते हुए।

नवानगर आदि जिन स्तवन

नवानगर मां भेटीइ, जिनवर जयकारी।
परमानद महारसी, मुरति मनोहारी ।।नवा०।।१।।
घणा दिवस नी हूंसडी, हुती मन माहे।
ते सवि आज सफल थई, प्रणमी जग नाहे ।।नवा०।।२।।
दरसण दीठि देव नु, दुख जाइ दूरि।
चिदानद रस ऊपजि, समता रस पूरि ।।नवा०।।३।।
जिनमुद्रा जिनवर समी, सिव साधन भाखी।
श्री अरिहंत[1] अवलंब नि, पूरणता दाखी ।।नवा०।।४।।
पणि संवर[2] जिन भक्ति नो, फल सिरखूं तोल्यूं।
हित सुख निश्रेयस पणे, आगम मे बोल्यूं ।।नवा०।।५।।
तुंगीया नगरी ने श्रावके, जिन पूजा कीधी।
भगवई[3] मे सख पुष्कली, पूजन विधि लीधी ।।नवा०।।६।।
ऋषभदत्त अधिकार मे, **उववाई** उवागें।
नेंहरत जिन पुष्फ पूजता, अधिकार प्रसगे ।।नवा०।।७।।
भगवई अगे साधु जी, जिन प्रतिमा वदि।
आवसक[4] मि पूजता, अनुमोदि आनदि ।।नवा०।।८।।

१–अरिहंत प्रभु का अवलंबन लेने से मोक्ष मिलता है। २–सवर का और जिनभक्ति का समान फल है। ३–भगवती सूत्र में, शंख श्रावक और पुष्कली श्रावक ने। ४–आवश्यक सूत्र।

भतपयन्ना[1] सूत्र मा, नव थोत्र वखाण्या।
महानिशीथे पूजता, फल अद्भूत जाण्या ॥नवा०॥९॥
भगवई अनुयोगद्वार मो, निरयुक्ति प्रमाणी।
ते माहे पूजा चैत्य नी, विधिसर्व वखाणी ॥नवा०॥१०॥
संपाविओ[2] कामे कहिओ, जिन आगलि नमंता।
संपताणु उचरचु, प्रतिमा सस्तवता॥नवा०॥११॥
आवसक पंचागीनु, पोस्तक थयु पहित्नु।
जे अधिकार तिहां लिख्या, विधि पूर्वक वहित्नु ॥नवा०॥१२॥
अन्यसूत्र लखता थकां, न लिखु ते विगते।
ते माटे सका किसी, जिन पूजो भगते ॥नवा०॥१३॥
पुस्तकारूढ जेणे करया, तस वचन कालोला।
चूर्णिमइं पूजा कही, सी[3] संका भोला॥नवा०॥१४॥
नाम निखेपो उचरि, नमता आणं दै।
नाम थापना दुगभणी, स्या माटे न वदे ॥नवा०॥१५॥
विनय[4] वेयावच दान मे, हिसा नवि लेखइ।
अछती हिस्या दाखवी, का पूजा उवेखइ ॥नवा०॥१६॥

१—भक्त प्रत्याख्यान नामक सूत्र। २—नमस्कार करते हुए वहां जिसके सारे कार्य सिद्ध हो गये हैं। ऐसा कहा है, यह भगवान् के सिवाय दूसरो के आगे नही कहा जा सकता। इससे सिद्ध है कि वह जिनप्रतिमा का ही अधिकार है।
३—हे भोले-फिर क्या शंका है। ४—विनय-सेवा-दानादि में तो हिंसा नही मानते है, और प्रभु-दर्शन, पूजन मे हिंसा मानते है, यह कैसा अज्ञान।

आगम अरथ लह्या विना, आगम ऊथापि ।
ते तप खप करता थका, नवि भव भय कापि ।।नवा०।।१७।।
इम आलोची चित्त मा, जिनपड़िया वंदो ।
जिन सासण उद्दीपणा, करता आनंदो ।।१८।।
'सेठ विहार' सोहामणा, आदेसर स्वामी ।
वंदो पूजो भविजनां, पूरण सुख कांमी ।।नवा०।।१८।।

।।कलश।।

इम मोक्ष कारण विघन वारण तरण (तारण) गुण करो।
जिनराज वंदन नमन पूजन सूत्र साखै आदरो ।।
सुच ध्यांनि वाधि सिद्ध साद्धि करम कलेश सहू हरी ।
श्रीदीपचंद पसाय भाखी देवचंद्र हितधरी ।।१६।।

इति श्री नवानगर आदि जिन स्तवनम्

श्री अजितनाथ (ध्रांगध्रा) स्तवन

अजितनाथ चरण तेरे आयौ, बहुत सुख पायौ च०
तूं मनमोहन नाथ हमारौ, त्रिभुवन जन कुं सुखकारौ ।।च०।।१।।
तृष्णा ताप निवार निवारो, बावन चंदन सुं अति प्यारो ।।च०।।२।।
महा मोह गिरि तुंग करारो, नसु भेदेन कुं वज्र अटारौ ।।च०।।३।।
ध्रागदरापुर में मनुहारौ, अजितप्रसाद वण्यौ अतिसारौ ।।च०।।४।।
समता रस वर्षन घन धारौ, समकित बीज उपावन व्यारौ ।।च०।।५।।
देवचंद्र गुण गण सभारौ, एही अशरण शरण उदारौ ।।च०।।६।।

चूड़ा नगर मंडन श्री सुविधिनाथ स्तवन

(ढाल—नांनो नाहलो रे—ए देशी)

सुविधि जिनेश्वर ! वीनती रे, दासतरणी अवधार, साहेब सामलो रे।
त्रिभुवन[1] जाणग आगले रे, कहेवो ने उपचार ॥सा०॥१॥
प्रभु छो परम दया निधि रे, सेवक दीन अनाथ ।सा०।
उवट[2] भव भमता भरणी रे, तुझ शासन वर साथ ॥सा०॥२॥
मै पुग्दल रस रीझ थी रे, विसरचो निज भाव ।सा०।
आपा[3] पर न पिछाणीओ रे, पोष्यो विषय विभाव ॥सा०॥३॥
पुष्य धर्म करी थापीयी रे, विषय पोष सतोष ।सा०।
कारण कारज न ओलख्यो रे, कीधो राग[4] ने रोष ॥सा०॥४॥
प्रभु आणा चित्त नवि रमी रे, सेव्यो पाप स्थान ।सा०।
ममता मद मातो थको रे, चित्त चिते दुर्ध्यान ॥सा०॥५॥
रामा नंदन प्रभु मिल्यो रे, सुग्रीव भूप कुल चद ।सा०।
श्वेत वर्ण ध्वज[5] मीन[6] नो रे, समता रस मकरंद ॥सा०॥६॥
चूडापुरे चूडामरिण रे, मन मोहन जिनराय ।सा०।
देवचंद्र पद सेवता रे, परमानंद सुख पाय ॥सा०॥७॥

१—तीनो-भुवनो के स्वरूप को जानने वालो के सामने कुछ भी कहना एक औपचारिकता है। २—भव मे भ्रमण करने वालो के लिये आपका शासन अत्यन्त ही कल्याणकारी है। ३—स्व-पर को ४—राग-द्वेप ५—चिन्ह ६—मछली

फलोधी मण्डन श्री शीतलनाथ स्तवनम्

श्री शीतल जिन सेवियै रे लो, मन धरि भाव अपार रे बालेसर ।
हीसे हरखे हीयडो रे लो, देखण तुझ दीदार रे वा० ॥श्री०॥१॥
सेवक जाणी आपणो रे लो, जो धरसो नाहि नेह रे वा० ।
भगतवच्छल नो विरुद्ध तो रे लो, केम पालसो एह रे वा० ॥श्री०॥२॥
आश धरी आवे जिके रे लो, आसणायत[1] दास रे वा० ।
आशापूरण सुरमणि रे लो, करी तुझ पर विश्वास रे वा० ॥श्री०॥३॥
चोल मजीठ तणी परे रे लो, राखे जे मन रंग रे वा० ।
तेहने वंछित आपिये रे लो, कर अपणायत[2] अंग रे वा० ॥श्री०॥४॥
वयण[3] निवाहू मुझ मिल्यो रे लो अंतरजामी स्वाम रे वा० ।
क्षण बोले पलटे क्षणे रे लो, नांहि तेह सुं काम रे वा० ॥श्री०॥५॥
आश धरुं एक ताहरी रे लो, अवर नहि विश्वास रे वा० ।
नाम सुणी ने ताहरो रे लो, मन मे धरुं उल्लास रे वा० ॥श्री०॥६॥
तुं हीज मुझ मन हंसलो रे लो, तुं हीज मुझ उर हार रे वा० ।
आणधरु शिर ताहरी रे लो, ए माहरी एक तार रे वा० ॥श्री०॥७॥
तु तर[4] साहिब सेवता रे लो, सेवक ना गुण जाय रे वा० ।
गिरुआ निरवाहू गुणी रे लो; तेकीये तास सहाय रे वा० ॥श्री०॥८॥
क्षण राचे विरचे क्षणे रे लो, जे स्वारथीआ मीत[5] रे वा० ।
प्रारथीआ पहिडे[6] जिके रे लो, तेह सुँ केहवी प्रीत रे वा० ॥श्री०॥९॥

१–शरण मे आया हुआ २–आत्मीयता, अपनापन ३–वचन को निभाने वाले
४–आपमे अन्य किसी दूसरे की सेवा करने पर । ५–प्रिय स्वजन ६–निराश करना

जे मनना (संशय हरणे) रे लो, उपगारी थिर टेक रे वा० ।
जे गुण अवगुण ओलखे रे लो, मलीये तसु सुविवेक रे वा० ॥श्री०॥१०॥
जे चाहे आपण भणी रे लो, नित नित नवले हेज रे वा० ।
तेहने वंछित आपतां रे लो, किण विध कीजे जेज[1] रे वा० ॥श्री०॥११॥
सेवक नित सेवा करे रे लो, पण न लहे बक्षीस रे वा० ।
पार[2] पखी एम प्रीतडी रे लो, केम चाले जगदीश रे वा० ॥श्री०॥१२॥
सेवक ने जो आपीये रे लो, वार एक शाबास रे वा० ।
तो हरखे सेवक रहे रे लो, जां जीवे तां पास रे वा० ॥श्री०॥१३॥
ज्यां लगी भव में हुं भमुँ रे लो, त्यां लगी तु महाराज रे वा० ।
सेवक जाणी निवाजिये[3] रे लो, नाथ गरीब निवाज रे वा० ॥श्री०॥१४॥
तुँ सुखदायक नाथ तुँ रे लो, तुँ हीज मुझ शिर साह रे वा० ।
अवर रक कुण आसरे रे लो, लही साहिब गजगाह[4] रे वा० ॥श्री०॥१५॥
जिन मुख दीठां ही थकां रे लो, अलगा गया उद्वेग रे वा० ।
सुख संपति मन कामना रे लो, आयमली मुझ वेग रे वा० ॥श्री०॥१६॥

॥ **कलश** ॥

इम सयल सुखकर दशम जिनवर नाम शीतल शीतलो ।
भेट्यो **फलौदीपुर** मनोहर ज्ञान चारित गुण निलो ॥
उवझायवर श्री **राजसार** वाचक **ज्ञानधर्म** मुणिंद ए ।
गणि **राजहंस** सुशीस **देवचंद्र** लह्यो सुख आणंद ए ॥१७॥

१–देरी २–एक पक्षीय ३–दया करिये ४–हाथी को जल मे ग्राह ने पकडा तव कृष्ण ने ही आकर उगारा,

श्री लींबड़ी शान्ति जिन स्तवनम्

आवो सज्जन जन जिनवर वंदन श्री शांतिनाथ गुण वृंदा रे।
जस गुण रागे निज गुण प्रगटे, भांजे भव भय फंदा रे ॥१॥आ०॥

विश्वसेन अचिरानो नंदन, पूरण पुण्ये लहीये रे।
ध्यान एक तत्वे तत्त्व विबुद्धे, शुद्धातम पद ग्रहीये रे ॥२॥आ०॥

संवत अढारसे साते (१८०७)वरसे, फागुन सुदि बीज दिवसे रे।
श्रीशांति जिनेसर हरषे थाप्या,अति बहुमाने शिवसुख वरसे रे ॥३॥आ०॥

लींबड़ी नयरी मंडण मनोहर, शांति चैत प्रसिद्धो रे।
वृद्ध शाख पोरवाड़ प्रगट जस, वोहरे डोसे कीधो रे ॥४॥आ०॥

जिन भगते जे धन आरोपे, धन धन तुसी मतधारो रे।
गुणी राग थी तनमय चीत्ते, पुद्गल राग उतारो रे ॥५॥आ०॥

तीर्थंकर गुण रागी बुद्धे, रत्नत्रयी प्रगटावो रे।
देवचंद्र गुण रंगे रमतां, भव भय पूर्ण मिटावो रे ॥६॥आ०॥

इति स्तवन सम्पूर्ण

(पूर्वोक्त स्तवन आनंद जी कल्याण जी पेढी भडार लीबडी पत्र १ मे मे उद्धृत।

श्री फलवर्द्धि पार्श्वनाथ-स्तवन●

(ढाल—सखी री प्यारउ प्यारउ करती, एहनी)

सखी री वामा राणी नंदा, **अश्वसेन** पिता सुख कंदा।
प्रभावती राणी इंदा, दीजै मुझ परमाणंदा हो लाल ॥१॥
वीनती ए मुझ धरियइ, पातिक सगला हरियइ।
मुझ ऊपर महिरज करीयइ, तिम केवल कमला वरियइ हो लाल ॥२॥
सखी री तुझ सेवन पाइ दुहली[1], योनि गई सहु अहिली।
हिव सेवा कीजइ सहिली, मुझ इच्छा पूरउ वहिली हो लाल ॥३॥
सखी री ते सहु पातक रोकइ, ते जय पामइ इण लोकइ।
रिद्धि लहइ बहु थोकइ, जे तुझ पद पंकज धोकइ हो लाल ॥४॥
श्री **फलवर्धिपुर** राया, जब तुझ दरसण मई पाया।
दुख दोहग दूर गमाया, हिव आणंद थया सवाया हो लाल ॥५॥
मइं[2] योनि सहु अवगाही, तुझ सेवा कबहि न साही।
हिव मइ तुझ आण आराही, मुझ[3] लीजइ बाह समाही हो लाल ॥६॥
जब तुझ मुख दरिसण दीसइ, तब मुझ मन अधिक उहीसइ।
गणि **राजहंस** सुसीसइ, कहै **देवचंद** सुजगीसइ हो लाल ॥७॥वी०॥

इति श्री पार्श्वनाथ गीत

● यह स्तवन श्रीमद् द्वारा स्वयं लिखित पत्र २ की प्रति से उद्धृत

१—प्रभु की सेवा से दुर्गति सारी दूर हो गई २—मै अनेक योनियो मे जन्मा किन्तु आपकी सेवा कभी न की। ३—अब मैंने तुम्हारी आज्ञा की आराधना की है अतः अब मेरी बांह पकड़ लो।

सिद्धाचल स्तुति

विमलाचल मंडण जिनवर आदि जिणंद ।
निरमम निरमोही केवल ज्ञान दिगंद ॥
जे पूर्व नवाणु वार धरी आणंद ।
सेत्रुंज ने शिखरे समवसरया मुख कंद ॥१॥
इण चोविसी मां ऋषभादिक जिनराय ।
वलि (काल) अतीतें अनंत चौवीसी थाय ॥
ते सवि इण गिरि वर आवी फरसी जाय ।
एम भावी काले आवसइ सवि मुनिराय ॥२॥
श्री ऋषभ ना गणधर पुंडरीक गुणवंत ।
द्वादश अग रचना कीधी जेण महंत। ॥
सवि आगम मांहे सेत्रुंज महिमा वंत ।
भाखी जिन गणधर सेवो करी थिर चित्त ॥३॥
चक्केसरि गोमुह कवड पमुह सुर सार ।
जमु सेवा कारण थापइ इंद्र उदार ॥
देवचंद्र गणि भाषइ भविजन नें आधार ।
सवि तीरथ माहि सिद्धाचल सिरदार ॥४॥

इति सिद्धाचल स्तुति संपूर्ण

गिरनार नेमि स्तुति

यादव कुल मडरण नेमिनाथ जगनाथ ।
त्रिभुवन जन मोहन शोभन शिवपुर साथ ।।
गिरिनार शिखर सिर दिक्ख[1] नारण[2] निव्वांरण ।
सोरीपुर नयरे चवरण जनम सुख खारिण ।।१।।
इम भरते पचइ ऐरवते वलि सार ।
चौवीसी जिन नी थायै जन आधार ।।
सुचि[4] पंच कल्यारणक वंदे पूजे जेह ।
निरुपम सुख संपति निश्चै पांमें तेह ।।२।।
जिन मुख लहि त्रिपदी गरणधर गुंथ्या जेह ।
वर अंग इग्यारह दृष्टिवाद गुरण गेह ।।
तिरिणकाल जिरणेसर कल्यारणक विधि तेह ।
समकिति थिर काररणे सेवो धरी सनेह ।।३।।
श्री नेमी जिरणेसर सासन विनयै रत्त ।
जिनवर कल्यारणक आराधक भवि चित्त ।।
देवचंद्र नै सासन सनिधिकर नित मेव ।
समरीजै अहनिशि श्री अबाइ देवी ।।४।।

इति श्री गिरनार स्तुति

१–गिरनार पर्वत पर प्रभु की दीक्षा २–केवल ज्ञान ३–निर्वाण हुए ४–पवित्र

गिरनार नेमि स्तुति

यादव कुल मंडण नेमिनाथ जगनाथ ।
त्रिभुवन जन मोहन शोभन शिवपुर साथ ।।
गिरिनार शिखर सिर दिक्ख[1] नांण[2] निव्वाण[3] ।
सोरीपुर नयरे चवण जनम सुख खांणि ।।१।।
इम भरते पंचइ ऐरवते वलि सार ।
चौवीसी जिन नी थायैं जन आधार ।।
सुचि[4] पंच कल्याणक वंदे पूजे जेह ।
निरुपम सुख संपति निश्चै पांमे तेह ।।२।।
जिन मुख लहि त्रिपदी गणधर गुंथ्या जेह ।
वर अंग इग्यारह दृष्टिवाद गुण गेह ।।
तिणिकाल जिणेसर कल्याणक विधि तेह ।
समकिति थिर कारणे सेवो धरी सनेह ।।३।।
श्री नेमी जिणेसर सासन विनयैं रत्त ।
जिनवर कल्याणक आराधक भवि चित्त ।।
देवचंद्र नै सासन सनिधिकर नित मेव ।
समरीजै अहनिशि श्री अंबाइ देवी ।।४।।

इति श्री गिरनार स्तुति

१–गिरनार पर्वत पर प्रभु की दीक्षा २–केवल ज्ञान ३–निर्वाण हुए ४–पवित्र

तृतीय खण्ड

तप, पर्व एवं महोत्सव स्तवन-स्तुति

क्या विषय सूची	कहाँ पृष्ठ संख्या

ज्ञान पंचमी नमस्कार

सकल वस्तु प्रतिभास भानु, निरमल सुख कारण ।
सम्यग् दर्शन पुष्टि हेतु, भव जल निधि तारण ॥
संयम तप आनद कद, अन्नाण[1] निवारण ।
मार[2] विकार प्रचार ताप, तापित जन ठारण ॥१॥
स्यादवाद परिणाम, धर्म परणति पडिबोहण ।
साहु साहुणी सघ सर्व, आराधन सोहण ॥
मोह तिमिर विध्वंस सूर[3] मिथ्यात्व पणासण ।
आतम शक्ति अनत शुद्ध, प्रभुता परगासण ॥२॥
मति श्रुत अवधि विशुद्ध नाण, मण पज्जव केवल ।
भेद पचाश[4] क्षयोपशमिक, इक[5] क्षायिक निरमल ॥
दोय परोक्ष प्रथम तिहा, दुग परत्तक्ष देशत ।
सकल प्रतक्ष प्रकाश भास, ध्रुव केवल अपरिमित ॥३॥
धर्म सकल नो मूल, शुद्ध त्रिपदी जिन भासै ।
बारह अंग प्रधान खंध, गणधर सुप्रकासै ॥
साखा श्री निरयुक्ति भाष्य पडिसाखा दीपै ।
चूरण टिका पत्र पुष्प, संशय सवि जीवै ॥४॥

१—अज्ञान २—काम—विकार जन्य ताप से तप्त जनो को ठारने वाले ।
३—सूर्य ४—ज्ञान के पच्चास भेद क्षायोपशमिक भाव वर्ती है ।
५—केवल ज्ञान क्षायिक भाववर्ती है ।

ए पचागी सार बोध, कह्यो जिन पञ्चम अगै ।
नंदी अनुयोगद्वार साखि, मोना मन रंगै ।।
वीर परंपर जीत[1] शुद्ध, अनुभव उपगारी ।
अभ्यासो आगम अगम, निरुपम सुख कारी ।।५।।
मोह पकहर नीर सम, सिद्धांत अवाध ।
देवचंद्र आणा सहित, नय भंग अगाध ।।
ए श्रुत ज्ञान सुहामणो, सकल मोक्ष सुख कंद ।
भगतै सेवो भविक जन, पामो परमानंद ।।६।।

मौनेकादशी नमस्कार

तिहुअण[2] जण आणद कद जय जिणवर सुख कर ।
कल्याणक तिथि मांहि जेह परमोत्तम मुंदर ।।
मिगसर सुदि एका दशी वसी सुगुण मन मांहि ।
आराधो पोसह करी तो पामो सुख लाहि ।।१।।
श्री अर जिन दीक्षा प्रदान नमि केवल भासन ।
मल्लिनाथ जिनराज जनम दीक्षा शुचि वासन ।।
केवल नाण कल्याण पच श्री जंबू भरते ।
इम दश क्षेत्रे एक काल जिन महिमा वरते ।।२।।

१–आचार　　२–त्रिभुवन के जनो के लिये आनद के अकुर

अतीत अनागत वर्त्तमान, कल्याणक संतति ।
आराधो पचास अहिय, इग सय शुभ परिणति ॥
काल अनंते रीत एह, गुण जेह मनोहर ।
परमातम सेवन नमन, परमारथ सुख कर ॥३॥
दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य, तप गुण आराधन ।
अक्षय अव्यय शुद्ध सिद्धि समता पद साधन ॥
कल्याणक आणंद कंद, सुरतरु जे भक्त ।
आराधै तसु आतम भाव थायै सवि व्यक्त ॥४॥
तीर्थ तीर्थंकर साधु संघ आराधन निर्मल ।
जनम महोच्छव प्रमुख भक्ति करता हुवै शिवफल ॥
देवचंद्र जिनराय पाय प्रणमो अति रीझै ।
परम महोदय ऋद्धि सिद्धि मन वंछित सीझै ॥५॥

छप्पन दिश कुमरी का महोच्छव

सुरनर असुर तती[1] नम्यो, प्रणमी श्री जिन चंदो जी ।
नाण चरण गुण करण थी, जीतो मोह महिंदो जी ॥
जीतीयो मार[2] अपार दुरजय जेण समता अनुसरी ।
तसु भगति करतां भवि अनेकै सुगति सुगती आदरी ॥

१–पंक्ति २–काम

जे गर्भ आव्यै सर्व इंद्रै शक्रस्तव स्तवना करी ।
गुण राग रमता शुद्ध ममता भावना हीयै धरी ॥१॥
तीरथपति जनम्या यदा, नारक पिण सुख पामै ।
दश दिश निर्मलता लहै, देव देवी शिर नामै जी ॥
तब चल्यै आसन दिशा कुमरी, हरखनी भमरी[1] रमै ।
जिन जनम नगरी सनमुख थई वार वार श्री जिन नमै ॥
गज दंत हेठलि आठ अमरी अधोलोक निवासनी ।
गज दंत ऊपरि आठ कुमरी उर्द्ध लोक विलासनी ॥२॥
आठ ते पूर्व रुचकनी, दक्षण पच्छिम तेती जी ।
आठ ए उत्तर रुचकथी, सुर भव लाहो लेती जी ॥
लेती ज लाहो कूण वासी च्यार च्यार सुरी मिली ।
वर देव देवी सहित भगते भरी आवी नै मिली ॥
जिनराज गुण गण गावती मन भावती धरती रली ।
जिन जननि चरण[2] सरोज नमती जनम घर आवी मिली ॥३॥
धन धन तु जग तारका, जग जननी हितकारी जी ।
त्रिभुवन तारक सुत जण्यो, तुम्ह सम कुण उपगारी जी ॥
ताहरी सेवा इंद्र चाहे, इन्द्राणी ले उवारणा ।
तुज वदन दीठे दुक्ख नीठै तु हिज हित सुख कारणा ॥
मोह नडीया[3] जगत जंतु ने तरण तारणभवि तणो ।
आनंद कंद सुरिंद वंदित जिणे जिनवर सुत जण्यो ॥४॥

१–गरबा २–चरण–कमल ३–मोह मे फसे हुए ।

आठ प्रथम मुइ गृह करैं तुतीय कुसम जल वरसी जी ।
तीजी आरीसो धरैं नह्वगावै वलि हरसी जी ।।
हरख धरती कलस हाथे गाय जिन गुण मंगली ।
पच्छिम रुचक नी दिसा कुमरी वाय वाजे मन रली ।।
उत्तर रुचक नी आठ कुमरी वींजैं चामर मडली ।
रुचक कूण नी च्यार कुमरी हाथ दीवी ले वली ।।५।।
रुचक ईसान चउ सुदरी गावै जिन गुण रगे जी ।
नाल वधारे प्रेम सुं करे मणि पीठ अगे जी ।।
उच्छाह भरते रमक झमके चमकती जिम वीजली ।
त्रिहुं लोक तारक चरण वदे करे वलि वलि अंजली ।।
अम्ह देव शकति थई लेखैं जेह तुझ भगते मिली ।
करि केलि मदिर चिरंजीवो कही बांधे पोटली ।।६।।
अज्ञान निवारण तु धणी, मिथ्या[1] तिमर निवारी जी ।
तृसना[2] ताप समाइबा, प्रभु समता समधारी ।।
तुह झाण रगी मुनी असगी शुद्ध समता आदरै ।
इद्र चद्र नरेन्द्र पमुहा सेवना ईहा करैं ।।
तुझ भगति रागी सुमति जागी पाय लागी जय करैं ।
देवचंद्र श्री जिनचंद्र सेवा करत लीला विस्तरैं ।।७।।

[नित्य मणि विनय जीवन जैन लायब्रेरी नं. ८१४ म० से उद्धृत]

१–मिथ्यात्वरूपी अंधकार २–तृष्णा के ताप को शान्त करने के लिये

दीवाली स्तवन

आज म्हारे दीवाली थइ सार, जिन मुख दीठा थी ।।आंकणी।।
अनादि विभाव तिमिर रयणी में, प्रभु दर्शन आधार रे ।
सम्यग् दर्शन दीप प्रकाश्यो, ज्ञान ज्योति विस्तार ।।जिन०।।१।।
आतम गुण अविराधन करुणा, गुण आनद प्रमोद रे ।
परभावे अरक्त द्विष्टता, मध्यस्थता सुविनोद ।।जी०।।२।।
निज गुण साधन रसिय मैत्री, साध्यालबी रीति रे ।
सम्यक् मुखडी रस आस्वादी, घृत तबोल प्रतीति ।।जि०।।३।।
जिन मुख दीठे ध्यान आरोहण, एह कल्याणक वात रे ।
आतम धर्म प्रकाश चेतना, देवचंद्र अवदात ।।जि०।।४।।

नव पद स्तवन

तीरथ पति अरिहा नमी, धरम धुरंधर धीरो जी
देसना अमृत वरसता, निज वीरज वड वीरो जी
वर अखय निर्मल ज्ञान भासन, सर्व भाव प्रकासता
निज शुद्ध श्रद्धा आत्म भावे, चरण थिरता वासता
निज नाम कर्म प्रभाव अतिसय प्रातिहारज शोभता
जग जंतु करुणा वत भगवंत भविक जन नै थोभता ।।१।।
सकल करम मल क्षय करी, पूरण सुद्ध सरूपो जी
अव्याबाध प्रभुतामयी, आतम सपत्ति भूपो जी

जे भूप आतम महज सपति शक्ति व्यक्ति पणै करी
स्व द्रव्य क्षेत्र स्वकाल भावे गुण अनता आदरी
स्व स्वभाव गुण पर्याय परणति सिद्ध साधन पर भणी
मुनिराज मनमर[1] हंस समवड़ नमो सिद्ध महागुणी ॥२॥

आचारज मुनि पति गणि, गुण छत्तीसी धामो जी
चिदानद रस स्वादता, परभावे नि कामो जी
निःकाम निर्मल शुद्ध चिदघन साध्य निज निरधार थी
निज ज्ञान दरसण चरण वीरज साधना व्यापार थी
भवि जीव बोधक तत्व सोधक सयल गणि संपतिधरा
सवर समाधी गत उपाधी दुविध तप गुण आगरा ॥३॥

खंतियूआ[2] मुत्ति युआ अज्जव मदव जुत्ता जी
सच्च सोय अकिंचणा तब संजम गुण रत्ता जी
जे रम्या ब्रह्म सुगुत्ति गुत्ता, समिति सुमित्ता श्रुतधरा
स्याद्वाद वादे तत्व वादक आत्म पर विभजन करा ॥
भव भीरु साधन धीर सासन वहन धोरी मुनिवरा ।
सिद्धात वायग दान समरथ नमो पाठक पद धरा ॥४॥
सकल विषय विष वारि नै निक्कामी निसंगी जी
भव दव ताप समावता आतम साधन रंगी जी

१–मुनियों के मनरुपी सरोवर में हंस-समाज २–क्षमा, निसगता, सरलता, कोमलता, सत्य, शौच, आकिंचन्य, तप, संयम आदि गुणों से युक्त

जे रम्या सुध सरुप रमणै देह निर्मम निर्मदा
काउसग्ग मुद्रा धीर आसन ध्यान अभ्यासी सदा
तप तेज दीपइ कर्म जीपइ नैव छीपइ[1] पर भणी
मुनिराज करुणा सिधु त्रिभुवन बंधु प्रणमु हितभणी ॥५॥

सम्यग् दर्शन गुण नमो तत्त्व प्रतीति सरूपो जी
जसु निर्धार सभाव छै, चेतन गुण जे अरूपो जी
जे अनूप श्रद्धा धर्म प्रगटै सयल परि ईहा टलै
निज सुध सत्ता प्रगट अनुभव करण रुचिता उछलै
बहु मान परणति वस्तु तत्वै अहव तसु कारण पणै
निज साध्य दृष्टै सरव करणी तत्वता संपत्ति गणै ॥६॥

भव्य नमो गुण ज्ञान नै, स्व पर प्रकासक भावे जी
पर्यय धर्म अनन्तता, भेदा भेद सभावै जी
जे मुख्य परणति सकल ज्ञायक बोध भास[2] विलच्छना
मति आदि पंच प्रकार निर्मल सिद्ध साधन लच्छना
स्याद्वाद सगी तत्त्व रंगी प्रथम भेद अभेदता
सविकल्प नै अविकल्प वस्तु सकल संसय छेदता ॥७॥

चारित्त गुण वलि वलि[3] नमो, तत्त्व रमण जसु मूलो जी
पर रमणीय पणो टलै, सकल सिद्ध अनुकूलो जी

१—दूसरो से प्रभावित नही होते हैं। २—भाव ३—परि

प्रतिकूल आश्रव त्याग संयम तत्त्व थिरता दम मयी
शुचि परम खंती मुक्ति दस पद पंच संवर उपचयी
सामायिकादिक भेद धर्मे यथा ख्यात पूर्णता
अकषाय अकुलस अमल उज्वल कर्म[1] कसमल चूर्णता ॥८॥

इच्छा रोधन तप नमो, बाह्य अभितर भेदे जी
आतम सत्ता एकता, पर परिणति उच्छेदे जी
उच्छेद कर्म अनादि संतति जेह सिद्ध पणो वरै
योग संग आहार टाली भाव आक्रियता करै
अंतरमहूर्त्ते तत्त्व साधे सर्व संवरता करी
निज आतम सत्ता प्रगट भावै करो तप गुण आदरी ॥९॥

इम नवपद गुण मडलं चो निक्षेप प्रमाणै जी
सात नये जे आदरै सम्यग् ज्ञाने जाणै जी
निर्धार सेती गुणी[2] गुणनो करै जे बहुमान ए
नमु करण ईहा तत्त्व रमणै थाय निर्मल ध्यान ए
इम सुद्ध सत्ता भिल्यो चेतन सकल सिद्धी अनुसरै
अक्षय अनंत महंत चिदघन परम आणंदता वरै ॥१०॥

॥कलश॥ इअ[3] सकल सुखकर गुण पुरंदर सिद्धचक्र पदावली
सविलद्धि विज्जा[4] सिधि मंदिर भविक पूजो मन रली
उवझाय वर श्री **राजसारह ज्ञानधरम** सुराजता
गुरु **दीपचंद** सुचरण सेवक **देवचंद्र** सुशोभता ॥११॥

१—काम २—गुण गुणी नो ३—इम सयल ४—विद्या सिद्ध

समवशरण स्तवन (जिनागम स्तुति)

आज गइ थी हु समवसरण मा, जिन वचनामृत पीवा रे।
श्री परमेश्वर वदन कमल छबि, हरखि हरखि निरखेवा रे ।।आ०।।१।।

तीन भुवन नायक मुद्धातम, तत्व अमृत रस वूठु[1] रे।
सकल[2] भविक वसुधा नीलाणी,[3] माहरु मन पण तूठु रे ।।आ०।।२।।

मन मोहन जिनवर जी मुझ ने, अनुभव प्यालु दीधो रे।
सम्यग् ज्ञान सहज रस अनूपम, भक्ति पवित्र थई पीधो रे ।।आ०।।३।।

ज्ञान[4] सुधा लीलानी लहरे, अनादि विभाव विसार्यो रे।
पूर्णानंद अक्षय अविचल रस, सुचि निज भोग समारयो रे ।।आ०।।४।।

भोली सखीये आम स्यु जोवो, मोह मगन मत राचो रे।
देवचंद्र प्रभु सु इकतानें,[5] मिलवु ते सुख साचो रे ।।आ०।।५।।

१–बरसना २–भव्यात्मा रूपी पृथ्वी ३–हरी-भरी होना ४–ज्ञानामृत की जो लीला, उस लीला की लहरों से, आत्मा का अनादि का जो विभाव था वह विभाव दूर हो गया है तथा पूर्णानन्द का रसास्वाद स्मरण होने लगा है। ५–प्रभु से एकमेक हो जाना।

वीस स्थानक स्तुति

अरिहंत १ सिद्ध२ पवयण ३ आचारिज ४ थिवराग ५
उवझाय ६ साहु ७ श्रुत ८ दंसण ९ विनय १० पहाण
चारित ११ ब्रह्म १२ किरिया १३ तप १४ गोयम १५ जिनभाण १६
संयम १७ नाण १८ श्रुत १९ संघ २० सेवो वीसे ठाण ।।१।।
उत्कृष्टे जिनवर एक सो सत्तरि धीर ।
वलि काल जघन्ये जिनवर वीस गंभीर ।।
जिन थाय अनंता अतीत अनागत काल ।
ए वीसे थानक आराधो गुण माल ।।२।।
आवश्यक[7] बे वेला जिन वंदन त्रिण काल ।
थानक पद गुणवा सहस्स दोय सुकपाल ।।
काउसग गुण स्तवना पूजा प्रभावना सार ।
इम सासन वच्छल करतां भव नो पार ।।३।।
समरीजै अहनिशि गुण रागी सुर साथ ।
जक्ख जक्खणी सुर पति वेयावच्च कर नाथ ।।
थानक तप विधि सुं जे सेवे मन रंग ।
देवचंद्र आणाये सानिधि करै तसु चंग ।।४।।

१—जिन शासन-संघ २—आचार्य ३—स्थविर, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, पर्यायवृद्ध आदि
४—उपाध्याय ५—साधु ६—तीर्थंकर ७—दोनों टाईम प्रतिक्रमण
८—संघ-शासन का वात्सल्य-प्रभावना, करना स्वधर्मी वात्सल्य करना इत्यादि ।



चतुर्थ खंड

धार्मिक वर्णन

क्रम

विषय

कहाँ

पृष्ठ संख्या

जिन भाल वर्णन पद

राग—नायकी

जिनजी तेरा भाल विशाला ।
सित[1] अष्टमी शशि सम सुप्रकाशा, शीतल ने अणियाला[2] ।।जि०।।१।।
उत्तम जनको सिद्धशिला का, अनुभव हेतु उराला ।
समकित बीज अकूर वृद्धि का, एह अमल आल[3] वाला ।।जि०।।२।।
साधक को सजम तरु रोपण, एहीज अनुभव थाला ।
वली रेखा नरपति सुरपति को, हित उपदेश प्रणाला ।।जि०।।३।।
उर्ध्व तिलक रेखा युग सोहे, उपशम जलधि उछाला ।
देवचंद्र प्रभुभाल अनुपम, समता सरोवर पाला ।।जि०।।४।।

जिन भ्रू वर्णन पद

राग—सारंग

अति नीके भ्रू जिनराज के (२)
अक रत्न द्युति सब हारो, श्याम सुकोमल नाजुके ।।अति०।।१।।
मोह[4] मदन अरि विजय करन को, मानु कृपाण सुसाज के।।अति०।।२।।
कर्म[5] कटक निवारन को घन, धनुष विवेक सुराज के ।।अति०।।३।।
भ्रमर[6] पंक्ति मुख कज रस लीनी, अकूरे गुण[7] राज के ।।अति०।।४।।
देवचंद्र भव जलधि[8] तरन को, सढ ए श्याम जहाज के ।।अति०।।५।।

१—शुक्ल पक्ष की अष्टमी के चन्द्र के समान २—मन मोहक ३—क्यारी ४—प्रभु आपकी भौए कामरूपी शत्रु को जीतने के लिये, कृपाण तुल्य है ५—कर्म-शत्रु को जीतने के लिये धनुष-तुल्य है । ६—मुख-कमल पर भवर समुह है ७—गुण के

जिन नयन वर्णन पद

राग–कनड़ो

नीके नयन तुमारे, हो जिनजी (२)
सकल विशेष सामान्य विलोकने, मानुं द्वय गुण सारे हो जिनजी० ॥१॥
नि स्पृहना प्रभुता के भाजन, भविकु लागत प्यारे हो जिनजी० ॥२॥
समता मोहन खोहन ममता, अति तीखे अणियारे हो जिनजी० ॥३॥
याकी स्थिरता जे जन लीने, तिण निज काज समारे हो जिनजी० ॥४॥
देवचंद्र दृग छबि अति अद्भुत, च्यो दृग मे अवतारे हो जिनजी० ॥५॥

जिन नासिका वर्णन पद

राग–कहरवा

अति अद्भुत प्रभु की नासिका (२)
तीन भुवन में उपमा नाहि, अविनाशी सुख वासिका ॥अति०॥१॥
मोह महारिपु कद निकदन, विजय पताका आसिका ॥अति०॥२॥
निर्विकार पद रसिक भविक कु, भक्ति प्रमोद उल्लासिका ॥अति०॥३॥
निश्चय रत्नत्रयी आराधन, साधन मार्ग विकाशिका ॥अति०॥४॥
देवचंद्र मुखकज प्रतिबोधन, चद्रकला सप्रकाशिका ॥अति०॥५॥

जिन श्रवण वर्णन पद

राग—केदारो

सुंदर श्रवण[1] को आकार, जिन ! तेरे श्रवण को आकार,
भवसमुद्र[2] जल पार उतारन, पोत के अनुहार ।।सु०।।१।।
अनादि[3] विभाव कांकर निकासन, पाकृपात्र सम सार ।सु०।।२।।
महा[4] मोहको जहर हरणकु, गरुड पक्ष अविकार ।सु०।।३।।
विशद[5] बोध मुक्ताफल प्रगटन, अवधि मडुकी चार ।सुं०।।४।।
देवचंद्र प्रभु श्रवण स्तवन से, परम सौख्य विस्तार ।सु०।।५।।

जिन मुख वर्णन पद

राग—मल्हार

हु तो प्रभु ! वारी छु तुम मुखनी, हु तो जिन बलिहारी तुम मुखनी ।
समता अमृतमय सुप्रसन्न नित, रेख नहि राग रुखनी ।हु तो०।।१।।

१—कान २—भव-समुद्र को पार करने में आपके कान, जहाज-समान है । ३—अनादि कालीन विभावरूपी ककरों को दूर करने में पवित्र भाजन—तुल्य है । ४—मोह विष को हरण करने के लिये गरूड़ की पाखे समान है । ५—बोधरूपी उज्जवल मोतियों को प्रकट करने मे सीपी तुल्य है ।

भ्रमर[1] अर्धशशि[2] धनुह[3] कमल दल,[4] कीर[5] हीर[6] पुनम[7] शशि नी।
शोभा तुच्छ थई प्रभु देखत, कायर हाथ जेम असिनी[8] ॥हूं तो०॥२॥

मनमोहन तुम सन्मुख निरखत, आँख न तृपति असची।
मोह तिमिर रवि हर्ष चद्र छबि, मूरति ए उपशम ची ॥हुं तो०॥३॥

मन[9] नी चितमिटी प्रभु ध्यावत, मुख[10] देखंतां तनु नी।
इंद्रिय[11] तृषा गई सेवता, गुण[12] गांवंता वचन नी ॥हुं तो०॥४॥

मीन चकोर मोर मतंगज,[13] जल शशि घन वन निज थी।
तिम मुझ प्रीति साहिब मुरत थी, और न चाहू मन थी ॥हुं तो०॥५॥

ज्ञातानंदन जग आनंदन, आश दास नी इतनी।
देवचंद्र सेवन मे अहनिशि, रमजो परिणति चित्तनी ॥हुं तो०॥६॥

१–केश कलाप द्वारा भवरो का। २–भाल से अर्धचन्द्र की ३–भौंओ से धनुष की। ४–नेत्र द्वारा कमल दल की। ५–नाक मे तोते की। ६–दांतो से हीरे की शोभा तुच्छ लगती है। ७–मुख से पूर्णिमा का चाद फीका है। ८–तलवार ९–मन की चिता प्रभु के ध्यान से मिट गई है। १०–दर्शन से तनकी ११–सेवन करने मे इन्द्रियो की और १२–गुण-गाने मे वचन की। १३–हाथी।

पंचम खण्ड सज्झाय व गहूँली

अनुक्रमणिका

❀ यह स्तवन द्वितीय खण्ड (तीर्थ स्थल सम्बन्धी स्तवनो) में देना था पर न दे सकने के कारण अन्त में दिया गया है।

पांच पांडवों की सज्झाय:

जीहो **पांच पांडव मुनिराय** आरोहे सेत्रुज गिरे हो लाल ।
पूरव सिद्ध अनत तेहना गुण मन धरे हो लाल ॥१॥
धन्य श्रमण निग्रथ जिण निज आतम तारीयो हो लाल ।
दरसण ज्ञान चरित्र आतम धरम सभारियो हो लाल ॥२॥
पामी गिरवर एह सूधु अणसण आदरी हो लाल ।
कर्म[1] कदर्थन भाजि निज असगता[2] अनुसरी हो लाल ॥३॥
प्रणमी आदि जिणद आणदे वदन करे हो लाल ।
ते मन चिंते एम आतम वले भव भय हरे हो लाल ॥४॥
गिरि उपर एकात पुढवि मिलापट पुजि ने हो लाल ।
धरमाचारज नेमि वदे निरमल हेज मे हो लाल ॥५॥
सिद्ध सकल प्रणमेवि आचारज पमुहा गणी हो लाल ।
जीव सकल खामेव वस्तु धरम सम्यग् सुणी हो लाल ॥६॥
पाप स्थान अढार द्रव्य भाव थी वोसिरी हो लाल ।
पूर्व व्रत परमाण बलि त्रिकरण थी उच्चरी हो लाल ॥७॥
इष्ठ कत अभिराम धीर सरीर ने वोसरे हो लाल ।
पचख्या चारे आहार पादप[3] परि अणसण करे हो लाल ॥८॥

१–कर्मो की कदर्थना को नाशकर २–अपने आत्मस्वभाव को प्राप्त किया
३–पादोपगमन

भेदरत्नत्रय रीत साधन जे मुनि ने हतो हो लाल ।
तेह अभेद स्वभाव ध्यान बले कीधो छतो हो लाल ॥९॥
तत्त्व रमण एकत्त्व रमता समाता तन्मयी हो लाल ।
पंच[1] अपूरव योग करम थिती भागी गई हो लाल ॥१०॥
अश्व समी करणेण कर्म प्रदेसे अनुभव्या हो लाल ।
कीटी[2] करणे मोह चूरण करि निरमल ठव्या हो लाल ॥११॥
क्षीणमोह परणाम ध्यान शुकल बीजोधरे हो लाल ।
घाती क्षय लयलीन केवल ज्ञान दशा वरे हो लाल ॥१२॥
थया अयोगि असग सैलेसी घनता लही हो लाल ।
अव्याबाध अरूप सकल पूरण पद सग्रही हो लाल ॥१३॥
सिद्ध थया मुनिराज काज सपूरण नीपनो हो लाल ।
सुद्धातम गुण भोग अक्षय अव्यय सपनो हो लाल ॥१४॥
नाण दसण सपन्न असरीरी अविनश्वरू हो लाल ।
चिदानद भगवान सादि अनत दशा धरू हो लाल ॥१५॥
वीस कोडि[3] मुनिराय, सिद्ध थया शत्रुजय गिरे हो लाल ।
ते काले **जयसाधु**, कोडि तीन थी शिव वरे हो लाल ॥१६॥
नारद[4] मुनि लही सिद्ध साधु **एकाणु लाख थी** हो लाल ।

१–स्थितिघात, रसघात - गुणश्रेणि, गुणसक्रम एव अपूर्वस्थितिबधरूप पाच योग
२–मोहनीय कर्म के भेदरूप अतिसूक्ष्म लाभ को रसकस हीन बनाकर क्षय करना।
३–पाच पाण्डवमुनि २० क्रोड मुनियो के साथ सिद्धाचल पर मोक्ष गये है।
४–नारदमुनि एक लाख मुनियो के साथ मोक्ष गये।

भाख्यो ए अधिकार '**सेत्रुज महातम**' माहि थी हो लाल ॥१७॥
एहवा सजमधार पार लह्यो ससार नो हो लाल ।
वदो सवि नर नारि समरण सुगुरण भडार नो हो लाल ॥१८॥
पाटक श्री **दीपचंद** सीस गरणी इम मगले हो लाल ।
वदे मुनि **देवचद** सिद्धा जे सिद्धाचले हो लाल ॥१९॥

द्राविड़ वारिखिल्ल मुनि सज्झाय

धन धन मुनिवर जे सजम वर्या जी परिहर्या पाप अढार रे ।
समता आदरी मुनि ममता तजी जी, सम्यक् क्षमा दया भंडार रे॥ध०॥१॥
ऋषभ वश द्रविड़ नृप पुत्र बे जी, **द्राविड़** अने बीजो वारि **खिल्ल** रे।
भूमि निमित्ते रण[1] रसीया थका जी तापस सयोगे काढ्यो सल्ल रे॥ध ॥२॥
सजम लीधो भट[2] दश कोडि थी जी, पहुँता **सिद्धाचल** गिरि शृंग रे ।
अरणशरण करी निज तत्त्वे परिरणम्या जी
त्रिविध त्रिविध वोसिरावी सग रे ॥ ध० ॥३॥
रत्नत्रयी रमी आतम सवगीजी, ओलखी छंड्यो सर्व विभाव रे ।
प्रत्याहार करी धरी धाररणाजी, वलग्या निर्मल ध्यान स्वभाव रे॥ध ॥४॥
मैत्री भाव भजी सवि जीवथी जी, करूरणा भाव दुखी थी तेम रे ।
पच गुरणी नी नित्य प्रमोदता जी, शुभा शुभ विपाके मध्य प्रेम रे ॥ध.॥५॥

१–राज्य के लिये युद्ध करते हुए २–दशक्रोड मुनियो के साथ द्राविड और वारिखिल्ल ने दीक्षा ग्रहरण की और मोक्ष गये ।

पिण्डस्थे श्री अरिहंतादिक तणीजी, मुद्रा आसन सुभगाकार रे ।
ध्याता अतिशय उपगारी पणु ंजी, ध्यान पदस्थ थयो सुविचार रे ।।ध.।।६।।
निर्मल सिद्ध स्वभावे तन्मयी जी, ज्ञानादिक गुण थी थिर भाव रे ।
सिद्ध शुद्ध गुणी गुण गावता जी, अवलम्ब्यो रूपस्थ स्वभाव रे ।।ध.।।७।।
(स्व)सत्तागत[1]आतम गुण एकताजी, ध्याता निज गुण(द्रव्य)पर्याय रे।
भेद स्वभावे थइ अभेदता जी, तन्मय तत्त्वे मोह विलाय रे ।।ध ।।८।।
मोह क्षये घाती दल क्षय गया जी, पाम्या निर्मल केवल ज्ञान रे ।
सिद्ध थया दस कोडी मुनीसरू जी, कार्तिकसुदि पूनम दिन मान रे।।ध.।।९।।
कार्तिक सुद्धि पूनम जे सिद्धाचले जी, वदे पूजे धन नर तेह रे ।
उत्तम गति पामी शिव सुख लहेजी, थाये ते अनुपम सुख गेह रे।।ध.।।१०।।
सिद्धाचल सिद्धा मुनि रायने जी, गावो ध्यावो धरी आणद रे ।
सद्गुरु पाठक श्री **दीपचद्र** नो जी, शिष्य गणि भाखे **देवचंद्र** रे ।।ध ।।११।।

श्री ढंढण ऋषि सज्झाय

(वनिता विहसी नइ वीनवइ, ए देशी)

धन धन ढढण मुनिवरु, **कृष्ण**[2] नरेसर पुत्तो रे ।
गुण मणि लवणिम[3] सोभतो, लखमी लीला युत्तो रे ।।ध०।।१।।

१–अपने आत्म गुणो के साथ प्रभु के गुणोकी एकता का चिन्तन करते हुए, प्रभु के साथ अभेदता होने लगती है तथा उस तन्मयता मे मोह का नाश होता है ।
२–कृष्ण राजा ३–लावण्य

कोमल कमला कामिनी, मूंकी एक हजारो रे ।
नेमि वचन वैरागीयो, लीधो सयम भारो रे ॥ध०॥२॥
ग्रहणा[1] ने आसेवना,[2] सीखी शिक्षा सारो रे ।
विचरता आव्याजी द्वारिका, नेमि साथे मुखकारो रे ॥ध०॥३॥
इक दिन गोचरी संचरया, करता गवेषणा सुद्धि रे ।
आहार कांइ मिल्यो नही, मुनि मन समता वुद्धि रे ॥ध०॥४॥
मुनि चिंते पुद्‌गल वले, स्यो निज गुण अभ्यासो रे ।
उछरंगे आतम वलै, कीजै शिव पद वासो रे ॥ध०॥५॥
शकति अथा मै आदरै, अपवादि अनेको रे ।
सहजै जो संवर वधे, तो न ग्रहे पर टेको रे ॥ध०॥६॥
नित प्रति गोचरी संचरे, न मिले अन्न ने पानो रे ।
प्रभु चरणे आवी नमी पूछे तजि अभिमानो रे ॥ध०॥७॥
स्यूं कारण कहो नाथजी, इवडो ए अंतरायो रे ।
जिन भाषै कृत कर्म नो, एहवौ छै व्यवसायो रे ॥ध०॥८॥
पूरव भव धन लोभ थी, कीधूं क्रूर अपायो रे ।
तीव्र रसे जे बाधीया, जेह नो फल दुख दायो रे ॥ध०॥९॥
नृप आदेसै पाचसै, हल खेडवा अधिकारो रे ।
चास[3] एक निज क्षेत्र नी, खेडावी धरि प्यारो रे ॥ध०॥१०

पाठान्तर—१ उत्सर्गे

१—नयेगुणो का ग्रहण करना २—ग्रहण किये हुए ज्ञानादि गुणो का पुन. २ आसेवन करना ३—पूरा खेत

भात[1] चारि नो सर्व ने, तुम्हे कीधो अंतरायो रे।
तीव्र रसे जे बाधीयो, तसु विपाक[2] ए आयो रे ॥ध०॥११॥
मुनिवर अभिग्रह[3] आदरयो, एह करम क्षय कीधे रे।
लेम्यु हवे आहार नै, धीरज कारज सीधै रे ॥ध०॥१२॥
मास गया पट ईण परै, पिण मुनि समता लीनो रे।
अगा पाम्यै अति निर्जरा, जाणै तिण नवि दीनो रे ॥ध०॥१३॥
वासुदेव[4] जिन वदि नै, पूछे धरि आणदो रे।
साधक साधु मे निरमलो, कवण कहो जिणचदो रे ॥ध०॥१४॥
नेमि कहै ढढण मुनि, सवर निरजरा धारी रे।
सहू साधु थकी अधिक छे, समता सुद्ध विहारी रे ॥ध०॥१५॥
निज घर आवता नरपते, वद्यो मुनि गम कदो रे।
दीठो तब इक गृहपति, पाम्यो हरख आनंदो + रे ॥ध०॥१६॥
मुनि आव्या तसु अगणै, पडिलाभ्या मन रागे रे।
मोदक सूभता मुनि गही, चढते मन वैरागे रे ॥ध०॥१७॥
जिन वदी ने पूछीयो, तूटो ते अतरायो रे।
नाथ[5] कहे यदुनाथ[6] ने, कारण थी तुम्हे पायो रे ॥ध०॥१८॥

पाठान्तर— + अमदोरे

१—चारा-पानी का अन्तराय करने मे। २—फल ३—अन्तराय कर्म क्षय होने पर ही आहार ग्रहण करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा ग्रहण करी ४—श्रीकृष्ण। ५—नेमिनाथ ६—श्रीकृष्ण

साभली मुनि अति हरखीयो, धन धन ए गुरु-राजो रे ।
वीतराग उपगारीया, कृपा करी मुझ आजो रे ॥ध०॥१६॥
साध्य अधूरे कुरण करै, ए आहार असारो रे ।
पुद्गल जग* नी अयठ ए,** किम ले मुनि सुविचारो रे। ध०॥२०॥
साधन वधते आदरे, ए साधक विवहारो रे ।
निकारण[1] पर वस्तु ने, छीपे नही अणगारो रे ॥ध०॥२१॥
इम चीतवि मुद्ध थडिले, परठवता ते पिडो रे ।
पुद्गल सग नी निदना, निज गुण रमण प्रचडो रे ॥ध०॥२२॥
पर परणति विछेदता, निज परणति प्राग्भावो रे ।
क्षपक श्रेणि ध्याने रम्या, पाम्यो आतम स्वभावो रे ॥ध०॥२३॥
आतम तत्त्व एकाग्रता, तन्मय वीरज धारो रे ।
घन घाती सवि खेरव्या, रतनत्रयी विमतारो रे ॥ध०॥२४॥
क्षीण मोह करि चरण नी, क्षायकता करि पूरी रे ।
केवल ज्ञान दसण वर्या, अतगय सवि चूरी रे ॥ध०॥२५॥
परमदान लाभ नीपनो,[2] कीधो कारज सूधो रे ।
समवशरण में आवीया, साध्य सपूरण सीधो रे ॥ध०॥२६॥
एहवा मुनि नें गाईये, ध्याईये धरि आणदो रे ।
देवचंद्र पद पाईये, लहीयें परमानदो रे ॥ध०॥२७॥

पाठान्तर— * जड **ऐठ

१–साधु बिना कारण पर वस्तु को छुए तक नही । २–प्राप्त हुआ ।

ध्यानी निर्ग्रंथ सज्झाय

॥ दोहा ॥

परमारथ निश्चय करी, वधते मन वैराग ।
इंद्रिय सुख निष्पृह थका, साधु इसा वड भाग[1] ॥ १ ॥
भाव शुद्धि भव भ्रमण थी, छूटा जे जोगीश ।
काम भोग थी उभग्या,[2] तननी स्पृहा न रीश ॥ २ ॥
प्राण त्याग पण ध्यान थी, छूटे नही लगार ।
पर त्यागी मुनिवर तिके, ध्यान तणा आधार ॥ ३ ॥
महा-परिसह साप थी, जन निंदा थी जास ।
क्षोभ न पामे मन तनक,[3] वसता निज गुण वास ॥ ४ ॥
राग द्वेष राक्षस थकी, भयनवि पामे जेह ।
नारी थी मन नवि चले, अक्षय निज रस गेह ॥ ५ ॥
तप दीपक नी ज्योति थी, बाल्या कर्म पतंग ।
ज्ञान राज्य त्रय लोक नो, विलसे जेह नि संग ॥ ६ ॥
तप थी तन ने पीड़वे, उपशम रस भंडार ।
लोक सर्व सुखकार जे, मोह अग्नि जलधार ॥ ७ ॥
निज स्वभाव आनंदमय, शांत सुधारस ठाम ।
योग[4] महागज जीप ने, व्रत धारी शम धाम ॥ ८ ॥

१-भाग्यशाली २-जो काम भोग से दूर हो गये है। ३-जरा भी ४-मन-वचन और काया इन योग रूपी हाथी को जीतकर।

१ ढाल–(तार मुझ तार संसार सागर थकी, ए देशी)

महा शमधार सुखकार मुनिराय जे,
ध्यान ध्यावा भणी जोग थावे ।
देह आधार ससार सुख निस्पृही,
तेह जोगीश निज देह पावे ॥म०॥१॥
शुद्ध विज्ञान रस पानथी शात मन,
थावर जगम दया धारी ।
मेरु जिम अचल आकाश जिम निर्मला,
पवन जिम संग विण लोभ वारी ॥२॥म०॥
भव्य सारग सुखकार उपदेश थी,
देह शोभा तजी मोक्ष साधे ।
ज्ञान शक्ति करी आत्म निज ओलखे,
शुद्ध निज ध्यान ते मुनि आराधे ॥म०॥३॥
एम निज देह ने मोक्ष गृह चढण ने,
कही सोपान सम साधु सेवा ।
ध्यान ते साधुने मोक्ष कारण कह्यो,
विमल विख्यात निजगुण वहेवा ॥म०॥४॥
दात मन विहग इंद्रिय भणी जे दमे,
ज्ञान ना गेह पातक विदारे ।
कर्म दल गज ने चित्त निरमल थका,
एम जोगीश शिव मग सुधारे ॥५॥म०॥

गिरि नगर कंदरा गेह शय्या शिला,
चद्र कर दीप मृग सग चारी ।
ज्ञान जल तप अदीन शांत आतमा थका,
धन्य निर्ग्रंथ सुविहित बिहारी ॥म०॥६॥
प्राण इद्रिय वली देह संवर करी,
रोकी सकल्प मन मोह भजी ।
धन्य निज ध्यान आनद आलब धरी,
शुद्ध पद आत्मनी ज्योति रंजी ॥म०॥७॥
हेय आदेय त्रिभुवन गणे साधु जे,
क्षय करे पुण्य ने पाप केरो ।
आत्म आनद स्याद्वाद थी विपय ने,
विष गणी भजता कर्म घेरो ॥म०॥८॥
कार्य संसार ना सावता ज्ञानविण,
जगत मे एहवा बहुत दीसे ।
कापी भव दुःख वली ज्ञान जल झीलता,
एहवा साध दोय तीन दीसे ॥म०॥९॥
वडे प्रासाद मे नरम पल्यंक पर,
गात जे पौढता नारी सगे ।
तेह गिरि कंदरा कठिन शिला परे,
रहे नित जागता ध्यान रंगे ॥म०॥१०॥
चित्त थिर राग ने द्वेप नो क्षय करी,
जीप इद्रिय आरभ छोडी ।

ज्ञान उद्दीपना थकी आनंद मय,
देखी निज देव ने कर्म मोडी ॥म०॥११॥
छोडी परसंग आत्मा भणी सिद्ध सम,
ध्यावता सुमति सुं मोह वारे ।
आत्म स्वभाव गत जगत सहु अन्य गणी,
ज्ञान निधि मोक्ष लक्ष्मी सुधारे ॥म०॥१२॥
तत्त्व चिंता करे विषय ने परि हरे,
स्वहित निज ज्ञान आनद दरीओ ।
सुमति संयुक्त तप ध्यान सयम सहित,
एहवो साध चारित्र भरीयो ॥म०॥१३॥
एहवा पडितो वचन रचना थकी,
नित थुणे आत्म ने बहुत ऐसा ।
शुद्ध अनुभूति आनंद सुं राचीया;
कटे भव पास दुरलभ तेसा ॥म०॥१४
एहवा योगधारी जिके मुनिवरु,
ध्यान निश्चल ते केईज राखे ।
ध्यान ने योग अणयोग नी ए कथा,
ग्रंथ अनुसार देवचंद्र× भाखे ॥म०॥१५॥

(ध्यान दीपिका में से)

पाठान्तर—× मुनि

श्री पार्श्वनाथ गणधर सज्झाय

पास जिनेश्वर देवना जी, गणधर दस गुण खाण ।
कल्पसूत्र मे अड[1] कह्या जी, ते कारण वसे जाण ।
चतुर नर. वदो गणधर स्वाम ॥१॥
पहेलो गणधर पासनो जी, 'शुभ' नामे शुभ धार ।
'**आर्यघोष**' वीजो स्तवु जी, तीय[2] '**वशिष्ट**' उदार ॥चतु०॥२॥
'**ब्रह्मचारी**' चोथो नमु जी, पचम '**सोम**' सनूर ।
छट्ठो 'श्री हरि' सातमो जी, '**वीरभद्र**' गुण भूर ॥चतु०॥३॥
सूरि शिरोमणि आठमो जी, '**जस**' नामे परधान ।
'आवश्यक निर्युक्ति' थी जी, **जय** तेम **विजय** निधान ॥चतु०॥४॥
द्वादश अगधरू सहू जी, सहू पहोता निरवाण ।
देवचंद्र' गुरु तत्त्वनाजी, सेवो चतुर सुजाण ॥चतु०॥५॥

द्वादशांगी सज्झाय

(अजित जिन तारजो रे, ए देशी)

हवे नवि तजजो रे. वीर चरण अरविंद,
सदा तुमे भजजो रे जिनवर गुण मकरद ॥आकणी॥
श्री **इन्द्रभूति** गणधर इम भाखे, साभलजो तुमे भाई ।
वाद मिसे[3] पण इण दिशि आव्या, पाम्य मोक्ष सजाई ॥हवे०॥१॥

१—आठ २—तीसरा ३—वाद विवाद के बहाने

भ्राति टली मुझ मन नी सघली, अनुभव अमृत पीधो ।
वीतराग[1] पण करुणा रीते, मुझ ने तेडी लीधो ॥हवे०॥२॥
वारु कर्युं[2]-जे तुम इहां आव्या, त्रिभुवन पति गुरु दीठो ।
चउगति भ्रमण तणो भय वार्यो, पाप ताप सवि नीठो ॥हवे०॥३॥
अग्निभूति पमुहा इम चिंते, भाव चिंतामणि लाधो ।
एहनी सेव करी उल्लासे, निज[3] परमारथ साधो ॥हवे०॥४॥
कर जोड़ी वंदी इम भाखे, प्रभु सामायिक आपो ।
सर्व असंयम दूर निवारी, अमने सेवक थापो ॥हवे०॥५॥
सामायिक प्रभु मुख थी पामी, संयत भावे आया ।
इंद्रादिक अनुमोदन करता, इंद्राणी गुण गाया ॥हवे०॥६॥
तत्त्व प्रकाश करो जगनायक, कर जोडी सवि मागे ।
तत्त्व प्रकाशक त्रिपदी आपी, करुणा निधि वीतरागे ॥हवे०॥७॥
वीर[4] वचन दिनकर कर फरसे, ज्ञान कमल विकसाणो ।
जीव अजीवादिक नो सघलो, वक्तव्य[5] भाव जणाणो ॥हवे०॥८॥
द्वादश अग रच्या तिण अवसर, वासक्षेप **प्रभु** कीधो ।
चउविह संघ तणो अधिकारी, श्री गणधर पद दीधो ॥हवे०॥९॥
त्रिशलानदन सेवन करतां, निज रत्नत्रयी गहीये ।
आतम स्वभाव सकल शुचि[6] करवा, **देवचंद्र** पद लहीये ॥हवे०॥१०॥

१–प्रभु ने भी करुणा करके, मेरा नाम लेकर बुलाया २–अच्छा हुआ
३–अपना काम ४–वीर जिनेश्वर के वचनरूपी सूर्य की किरणें
५–कहने योग्य ६–पवित्र

द्वादशांग एवं १४ पूर्व-सज्झाय

(ढाल—पंचमी तप तुम करो रे प्राणी, ए देशी)

वीर जिणेसर जग उपगारी, भाखी त्रिपदी सार रे।
गणधर बोध वच्यो अति निर्मल, पसर्योश्रुत विस्तार रे ॥वीर०॥१॥

दृष्टिवाद अध्ययन प्रकाश्या, परिकर्म सूत्र अनुयोग रे।
पूर्व अनुयोग पूर्वगत पंचम, चूलिका शुद्ध उपयोग रे ॥वीर०॥२॥

वस्तु सत्कार सुविधि नो देशन, कारण कार्य प्रपंच रे।
पूर्वगत नामे विस्तार्यो चोथों बहु गुण संच रे ॥वीर०॥३॥

प्रथम पूर्व उत्पाद[1] प्ररूप्यो, अग्रायणी[2] द्वितीय रे।
वीर्य-प्रवाद[3] ने अस्तिप्रवाद[4] ए, ज्ञान प्रवाद[5] अमेय रे ॥वीर०॥४॥

सत्यप्रवाद ने आत्मप्रवाद नो, कर्मप्रवाद[8] पडूर रे।
प्रत्याख्यान[9] विद्या[10] सुप्रवादन, कल्याण[11] नाम सनूर रे ॥वीर०॥५॥

प्राणावाया[12] क्रिया[13] सुविशालह, सुगुण लोक[14] विंदुसार रे।
प्रथम कह्या गणधर तिण पूरव, नाम थयो सुखकार रे ॥वीर०॥६॥

१—गणधरों ने जिनके पहले रचना की वे पूर्व कहलाये वे १४ है। १ उत्पाद पूर्व, २—अग्रायणीपूर्व ३—वीर्यप्रवाद ४—अस्तिप्रवाद ५—ज्ञानप्रवाद ६—सत्यप्रवाद ७—आत्मप्रवाद ८—कर्मप्रवाद ९—प्रत्याख्यानपूर्व १०—विद्यापूर्व ११—कल्याणपूर्व १२—प्राणवादपूर्व १३—क्रियापूर्व १४—लोकविंदुपूर्व।

गहन अर्थ भाषा अति संस्कृत, समझे अति मतिवंत रे ।
तिण श्री संघे विनव्या गणधर, सुगम प्रकाशो सत रे ।।वीर०।।७।।

जगत दयाल आचारज बोल्या, अंग इग्यार निधान रे ।
आचारांगे आतार मोक्ष नो, द्रव्य भाव सुप्रधान रे ।।वीर०।।८।।

सूयगडांगे तत्व नो शोधन, ठाणांगे दश ठाण रे ।
समबायागे बोल विविध छै, आगम नो भंडाण रे ।।वीर०।।९।।

विवाह पन्नती नाम भगवती, अति गंभीर उदार रे ।
ज्ञाता धर्म कथा मुनिचर्या, उपाशक दशा विचार रे ।।वीर०।।१०।।

अंतगड दशा अनुत्तरोववाइ, –दशा प्रश्न व्याकरण रे ।
सूत्र विपाक ए अग इग्यारह, गूंथ्या अर्थ सुवरण रे ।वीर०।।११।।

अर्द्धमागधी भाषा मनोहर, सवि जन ने हितकार रे ।
गणधर वचन ते 'अंग' कहीजे, शेष पयन्ना सार रे ।।वीर०।।१२।।

ए जिन आगम अति उपगारी, केवल ज्ञान निदान रे ।
अभ्यासो मुनि आतम हेते, निर्मल समता धान रे ।।वीर०।।१३।।

श्रुत सज्झाये जिन पद लहीये, थाये तत्व नी शोध रे ।
देवचंद्र आणाये सेवो, जिम लहो शुद्ध प्रबोध रे ।।वीर०।।१४।।

श्री भगवती सूत्र सज्झाय

(ढाल—सांभलजो मुनि संजम रागे, ए देशी)

श्री सोहम जंबू ने भाखे, सांभलजो भवि प्राणी रे।
गौतम पूछे वीर प्रकाशो, मधुरी सुखकर वाणी रे ॥श्री॥१॥
सूत्र भगवती प्रश्न अनुपम, सहस छत्तीस वखाण्या + रे।
दश हजार उद्देशा मंडित, शतक एकताल ❀ प्रमाण्या रे॥श्री०॥२॥
खंदक आदिक मुनिवर सुविहित श्रावक प्रश्न अनेक रे।
धर्म यथारथ भाव प्ररूप्या, श्री गणधर सुविवेक रे॥श्री०॥३॥
संवेगी सद्गुरु कृत योगी, गीतारथ श्रुत धार रे।
तसु मुख शुद्ध परंपर सुणता, थावे भव निस्तार रे॥श्री०॥४॥
गौतम नामे पूजन वंदन, करता × सुणतां भव्य रे।
श्रुत बहुमाने पातक छीजे, लहिये शिव सुख नव्य रे॥श्री०॥५॥
मन वच काय एकांते हरखे, सुणिये सूत्र उल्लास रे।
गारुड मंत्रे जेम विष नाशे, तेम तूटे भव पास रे॥श्री०॥६॥
जयकुंजर ए श्री जिनवर नो, ज्ञान रत्न भंडार रे।
आतम तत्व प्रकाशन रवि ए, ए मुनिजन आधार रे॥श्री०॥७॥
सांभलशे मनरंग ● सूत्र जे, भणशे गुणशे जेह रे।
'देवचंद्र' आणाथी लहेशे, परमानंद सुख तेह रे॥श्री०॥८॥

पाठान्तर—+ बखाण रे ❀ इकतालीस प्रमाण रे × गहूली गीत सुभव्य रे
● विधि थी

साधु सज्झाय

साधक साधजो रे, निज सत्ता एक चित्त ।
निज गुण प्रगट पणे जे परिणामें रे, एहिज आतम वित्त ।।सा०।।१।।

पर्याय अनंता निज कारिज पणें रे, वरते ते गुण शुद्ध ।
पर्याय गुण परिणामैं कर्तृता रे, ते निज धर्म प्रसिद्ध ।।सा०।।२।।

परभावानुग[1] तवीरज चेतना रे, तेह वक्रता चाल ।
करता भोक्तादिक सवि शक्ति मां रे, व्याप्यो उलटो ख्याल ।।सा०।।३।।

क्षयोपशमिक ऋजुता ने ऊपने रे, तेहिज शक्ति अनेक ।
निज स्वभाव अनुगतता अनुसरे रे, आर्जव भाव विवेक ।।सा०।।४।।

अपवादे पर वचकतादिका रे, ए माया परिणाम ।
उत्सरगे निज गुण नी वंचना रे, परभावे विश्राम ।।सा०।।५।।

साते वरजी अपवादै आर्जवी रे, न करे कपट कषाय ।
आतम गुण निज निज गति फोरवे रे, ए उत्सर्ग अमाय ।।सा०।।६।।

सत्ता रोध भ्रमण गतिचार में रे, पर आधीने वृत्ति ।
वक्र चाल थी आतम दुख लहे रे, जिम[2]नृपनीति विरत्ति ।।सा०।।७।।

ते माटे मुनि ऋजुतायै रमे रे, वमे अनादि उपाधि ।
समता रंगी संगी तत्व ना रे, साधे आत्म समाधि ।।सा०।।८।।

१–आत्मवीर्य का परभावों की ओर लगना, यह उसकी चाल का टेढ़ापन है ।
२–नीति रहित राजा जैसे दुखी होता है ।

माया क्षये आर्जव नी पूर्णता रे, सवि गुण ऋजुतावंत[1] ।
पूर्व प्रयोगे[2] परसगी पणो रे, नही तसु करतावत ।।सा०।।९।।
साधक भाव प्रथम थी नीपजे रे, तेहिज थायै सिद्ध ।
द्रव्यत साधन[3] विघन निवारणा रे, नैमित्तिक सुप्रसिद्ध ।।सा०।।१०।।
भावे साधन जे इक चित्त थी रे, भाव साधन निज भाव ।
भाव सिद्ध सामग्री हेतु ते रे, निस्संगी मुनि भाव ।।सा०।।११।।
हेय त्याग थी ग्रहण स्वधर्म नो रे, करे भोगवे साध्य ।
स्व स्वभाव रसीया ते अनुभवे रे, निज सुख अव्याबाध ।।सा०।।१२।।
निस्पृह निर्भय निर्मम निर्मला रे, करता निज साम्राज ।
देवचंद्र आणाये विचरता रे, नमिये ते मुनिराज ।।सा०।।१३।।

सदा सुखी मुनिराज सज्झाय

जगत मे सदा सुखी मुनिराज ।
पर विभाव परिणति के त्यागी, जागे आत्म समाज ।।जगत०।।
निज गुण अनुभव के उपयोगी, योगी ध्यान जहाज ।।जगत०।।१।।
हिसा मोस अदत्त निवारी, नही मैथुन के पास ।
द्रव्य भाव परिग्रह के त्यागी, लीने तत्व विलास ।।जगत०।।२।।
निर्भय निर्मल चित्र निराकुल, विलगे ध्यान अभ्यास।
देहादिक ममता सवि वारी, विचरे सदा उदास ।जगत०।।३।।
ग्रहे आहार वृत्ति पात्रादिक, सयम साधन काज ।
देवचद्र आणानुयायो, निज सम्पति महाराज ।।जगत०।।४।।

१–सरल व्यक्ति मे सभी गुण रहते है। २–पूर्वाभ्यास के कारण ही जीव का परकर्तृता है, वस्तुतः नही है। ३–द्रव्य कारण कार्य सिद्धि मे आनेवाले विघ्नो को दूर कर देते है।

चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मनिवर सज्झाय

पर गुण से न्यारे रहै, निज गुण के आधीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।।१।।
इह निज इह पर वस्तु की, जिने परीख्या कीन ।
चक्रवर्ति तै अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ।।२।।
जिण हुँ निजनिज ज्ञान सूं ग्रहे परिख तत्व लीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ।।३।।
दस विध धरम धरइ सदा शुद्ध ज्ञान परी कीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनीवर चारित लीन ।।४।।
समता सागर में सदा, झील रहे ज्यु मीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ।।५।।
आशा न धरै काहू की, न कवहूं पराधीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ।।६।।
तप संयम पावस वसै, देह प्रमाद दुख झीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ।।७।।
पुद्गल जीव की शक्ति सब जात सप्त भय हीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ।।८।।
सप्तम गुणथानक रहै कीयो मोह मसकीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ।।९।।
क्षयकोपशम पयडी चढै आतम रस सुधीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ।।१०।।

तूर्थ ध्यान ध्यावत समैं कियैं करम सब छीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ॥११॥
देवचंद्र वावै सदा, यह मुनिवर गुनबीन ।
चक्रवर्ति ते अधिक सुखी मुनिवर चारित लीन ॥१२॥

मोह परिवार सज्झाय

वाणी ए जिनवर तणी साची करी सदीव । सुज्ञानी जीव
माया ममता वसि भम, भव मांहि अनंता जीव ॥सु०॥१॥
तजो तजो रे महीपति मोह नें, साथे जसु परिवार॥सु०॥आं०॥
मोह महीपति आकरौ, मन मंत्री वुद्धि निधान ॥सु०॥
मन नारी प्यारी खरी, पर वृत्ति आरभ निदान ॥सु०॥त०॥२॥
नगर[2] अविद्या नाम छें, गढ[3] विषम अभग अज्ञान ॥सु०॥
दरवाजा चौगति तणां, तृष्णा[5] खाँहि परधान ॥सु०॥त०॥३॥
यौवन वर तरु वर जिहां, नारि सुख भोग विलास ॥सु०॥
क्रीडा गिरज गजावतां, दोय लोक विरुद्ध आचार ॥सु०॥त०॥४॥
मोह नृपति वलि आतमा,[6] आवास कुवासन गेह ॥सु०॥
चोरासी लख जोनि में, भमतां धरीया बहु देह ॥सु०॥त०॥५॥

१—मन मोहराजा का मन्त्री है और परभाव में रमणता मन मन्त्री की स्त्री है ।
२—अविद्या नगरी है ३—अज्ञानरूपी किला है । ४—चारगतिरूप, किले के चार दरवाजे हैं । ५—तृष्णारूप खाई है ६—कुवासनाओं से भरपूर आत्मा उसका घर है ।

मूरख[1] संगति परषदा, मतिभ्रंश[2] सिंहासन सार ॥सु०॥
अविरति[3] छत्र विराजतो, रति अरति[4] चामर सुखकार।सु०।त०।६।
आयुध हिंसा हाथ में, नास्तिक मत मित्र सुप्रीत ॥सु०॥
राग द्वेष सूत सूरमा, विसतारे जेह अतीत ॥सु०॥त०॥७॥
च्यार कषाय ते पोतरा, वलि काम कपट लघु पुत्र ॥सु०॥
आश्या विकथा पुत्रिका, मिथ्या मंत्रि सुपवित्र ॥सु०॥त०॥८॥
अशुभ योग सामंत छै, सेनानी दुष्ट प्रमाद ॥सु०॥
वेद तीन अधिकारिया, सुभट महा उनमाद ॥सु०॥त०॥६॥
नगर सेठ चित चपलता, प्रोहित[5] पाखंडी वास ॥सु०॥
कोटवाल चित-चंडता,[6] आलस मित्र अंग खवास ॥सु०॥१०॥
हेरु[7] कुश्रुत धडवी, आरति अति रुद्र कुध्यान ॥सु०॥
चोर चपलते काठिया, लूटे सहु नो धन ग्यान ॥सु०॥त०॥११॥
हर्ष शोक गज गाजता, इंद्रिय ना विषय तुरंग ॥सु०॥
आगा मिथ्या उपदेशनी, अविरति जग मांहि अभंग॥सु०।त०॥१२
चौरासी लख देश में, अड करम उदें नें साथ ॥सु०॥
बंध हेत नृपनि कथा, सहु जीव कीया निज हाथ ॥सु०॥त०॥१३॥
भव भय भमर भम्यो बहु, इण सत्रु से तूं दीन ॥सु०॥
देवचंद्र तजि मोह नें,हुइ निज आतम रस लीन ॥सु०॥त०॥१४॥

१—मुर्ख संगतिरूप सभा है। २—मतिभ्रष्टतारूप सिंहासन हैं। ३—असंयम-छत्र है ४—रूचि अरूचि चामर है। ५—पुरोहित। ६—क्रूरता। ७—उठाइगिरे—चोर।

श्री विवेक परिवार सज्झाय

(ढाल–चतुर विहारी रे आतमा, एहनी देशी)

शुद्ध विवेक महिपति[1] से वीये, लहीये जिम्ह भव पार ।।सु।।
मोह वसे दुख सहता वने, एह छोडावन हार ।।सु०।।१।।
प्रवचन नगर सु चारित घर भला इद्री[2] दम वर वाग ।
क्रीडा मदिर शुभ परिणाम छे, तरु छाया धर्म राग ।।सु०।।२।।
जिनवर वचन सुनिर्मल जल भर्यो, वन रक्षक उदेस ।।सु०।।
ध्यान[3] धरम च्यारे नयरी तणी, दरवाजा सुल हेस ।।सु०।।३।।
निर्वृत्ति[4] सुबुद्धि नारी चेतन तणी, अगज तसु सुविवेक ।।सु०।।
स्त्री तसु तत्त्व रूचि नामा जाणीये, संजम स्त्री वली एक ।।सु।।४।।
भव वैराग सवेग निर्वेद ए तीने पुत्र उछाह ।।सु०।।
उपसर्ग[5] अने परिसह चढत छे, निश्चय नाम सन्नाह ।।सु०।।५।।
समकित मत्री सम दम सूर छै, ज्ञान जिहा कोटवाल ।।सु०।।
सामायक आदिक आवश्यक, वर सामत[6] विसाल ।।सु०।।६।।
शुद्ध धरम प्रोहित[7] नय आगलो, पाच दान गजराज[8] ।।सु०।।
महम अढारइ रह सीलागना, तप विध्र तरल सुवाज[8] ।।सु०।।७।।

१–विवेकरूपी राजा २–इन्द्रिय दमनरूप वगीचा ३–धर्मध्यान के ४ प्रकार नगरी के चार दरवाजे है। ४–निर्वृत्ति और सुबुद्धि नामक पत्निया है। ५–उपसर्ग और परिषहो को जीतते हुए, निश्चयनय कवच है ६–सामायिकादि छ आवश्यक मन्त्री-मण्डल है। ७–शुद्ध धर्म रूपी पुरोहित है। ८–सुपात्रादि पांच दान गजराज है। ८–घोडे

गुद्ध परगति भट विकट पराक्रमी सेनानी उच्छाह[1] ।।सु०।।
प्रायश्चित्त पागीवर चतुर छै, मित्र विचार अथाह ।।सु०।।८।।
क्षमा[2] नम्रता धृतिवर भावना, मार्गगता सु प्रमत्ति ।।सु०।।
पुत्रीपिण रिण चालै मोह ना, दल भल टालै भत्ति ।।सु०।।६।।
आसति[3] मत दंड नायक नीन नौ, सत्य वचन धन धार ।।सु०।।
गुरु उपदेस नगारा वाजता, शुकल ध्यान हथीयार ।।सु०।।१०।।
नय गम भंग प्रमाण निक्षेप थी, जे जीपे अरि वृंद ।।सु०।।
ध्यान सकति प्रथता गुण आदरै, काटै भव ना फंद ।।सु०।।११।।
सुमति विवेक विनाए आतमा, भम्यो अनतो काल ।।सु०।।
जिन धरम ल्यो हिव निरमलो, सरणागत रख पाल ।।सु०।।१२।।
क्षायक समकित वीरज सक तथी, क्षपक श्रेणि रिण[4] थान।।सु०।।
पच[5] अपूरव करण प्रहार थी, मरद्या अपरि बल मान।।सु०।१३।।
अश्व समी वलि कीधी करण सुडाय स्थिति आ गाल ।।सु०।।
एक श्वसू पिध्यान उद्योत थीं, नाख्यो मोह उद्दाल ।।सु०।।१४।।
ममता मोह गया समता मयी, आतम नृप सुविवेक ।।सु०।।
जीत नगारो वाग्यो ज्ञान नो, लही अविचल कर टेक ।।सु०।।१५।।
देवचंद्र सुविवेक सहाय थी, भागा अरिदल वाह[6] ।।सु०।।
चेतन आनद अतिसय वाधीयो, मगल माल प्रवाह ।।सु०।।१६।।

१—उत्साह २—क्षमा, नम्रता, धृति, भावना, विचारणा एव शुभमार्गादि पुत्रिया है। ३—धर्मश्रद्धा न्यायाधीश है। ४—युद्ध का मैदान ५—स्थितिघात, स्थितिबध, रसघात, गुणश्रेणि, गुणसक्रम ये पाँच अपूव बाते—शस्त्रप्रहारतुल्य है, जिनसे अपरिमित मोह बल नाश होता है। ६—शत्रु सेना—घोडे आदि

इति श्री विवेक परिवार सभाय संपूर्ण ॥
लेखक पाठकयो श्री भूयात् ॥
सं. १८१७ ना वर्षे द्वितीय श्रावण वदि ११ शुक्रे ॥
भणशाली श्री पानाचंद्र कपूरचंद पठनार्थं ॥

आगम अमृत

आगम अमृत पीजिये, बहु श्रुत श्री गुरु पासें रे ।
श्रोता गुण अगें धरी, विनय करी उल्लासे रे ॥आ०॥१॥
शुद्ध भापक समताधारी, पंचम कालें थोड़ा रे ।
दीसे बहु आडंबरी, जेहवा उद्धत घोड़ा रे ॥आ०॥२॥
वस्तु धरम नी देशना, जे दीइ हित राखी रे ।
कीजे तेहनी सेवना, उपगारी गुण दाखी रे ॥आ०॥३॥
आतम तत्त्व प्रकाश में, जे भवियण नित झीले रे ।
अनुभव रस आस्वाद थी, थुणीइ तेह रसीले रे ॥आ०॥४॥
नय निक्षेप प्रमाण थी, स्यादनु[1] बंध सुरीते रे ।
तत्वा[2] तत्व गवेषणा, लहीइ परम प्रतीते रे ॥आ०॥५॥
तत्वारथ श्रद्धान जे, समकित कहे जिनराया रे ।
भासन रमण पणे लही, भेद रहित मति पाया रे ॥आ०॥६॥
स्वस्तिक पूजन भावना, करतां भक्ति रसाला रे ।
पुण्य महोदय पामीइं, केवल ऋद्धि विशाला रे ॥आ०॥७॥

१—स्याद्वाद शैलीमयो २—तत्त्व-अतत्त्व का विवेक

आठ रुचि सज्झाय

सुरपति नत देव अमित गुणि, श्री भाव प्रकाशक दिन मणी ।
शासनपति वीर जिनेश ना, गणधर वर सोहम[1] शुचि मना ।।१।।

शुचिमना सोहम सीस जंबू, भणी सीख कही भली ।
सुणो आतम तत्व रोचक, करी निज मति निरमली ।।
ए आठ कारण मोक्ष साधक, परम संवर पद तणो ।
करो आदर अतिहि उद्यम, यतन साधन अति घणो ।।
अभिनवा गुण नी वृद्धि थास्ये, दोष क्षय जास्ये सर्वे ।
ते माटे सेवो सूत्र आणा, सुख लहो जिम भव भवे ।।२।।

(अनुभव रंगीले आतमा ए ढाल)

पहिलु कारण सेवियै, भाखे वीर जिणंद रे ।
नित नित्त नवु नवु साभलो, शुद्ध धरम सुख कंद रे ।।
थास्ये परम आणंद रे, ऊगे ज्ञान दिणंद रे,
झलके अनुभव चंद रे ।। १ ।।
आणा रंगी रे आतमा, तजी तु सर्व प्रमाद रे ।
करि आगम आस्वाद रे, वसि निज तत्त्व प्रासाद रे ।।आकणी।।
गीतारथ श्रुतधर मिली, आणी अति बहुमान रे ।
नय निक्षेप प्रमाण थी, अभ्यासो श्रुत ज्ञान रे ।।

१–भगवान् के गणधर सुधर्मा स्वामीजी

भजि तू जिनवर आण रे, पामे सुख निरवाण रे,
परम महोदय ठाण रे ॥आण०॥ २ ॥
बीजे थानक श्रुत तणो, लाधो तत्त्व विचार रे।
स्व पर समय निर्धार थी, चउ अनुयोग प्रकार रे ॥
ज्ञेय पणे सवि भाव रे, रहज्यो आतम स्वभाव रे,
तजि पर समय विभाव रे ॥ आण० ॥ ३ ॥
आगम अर्थ नी धारणा, थिर राखो भवि जीव रे।
ज्ञान ते आत्तम धर्म छे, मोह तिमिर हर दीव[1] रे ॥
श्रुत अमृत रस पीव रे, साधन एह अतीव रे,
सवर ठाण सदीव रे ॥ आण० ॥ ४॥
पूरव सचित कर्म नी, निर्जरा थाये जेम रे।
तिम तप संयम सेवजो, साध्य धर्म करि प्रेम रे ॥
चिंतवजो मति एम रे, कर्म रहे हवे केम रे।
मुझ पद निर्मल क्षेम रे ॥ आण० ॥ ५ ॥
पंचक थानक आश्रयो, धर्म रुचि जीव जेह रे।
तेहनी करवी रक्षणा, वाधइ धर्म सनेह रे ॥
जिम करसण[2] जल तेह रे, धरमावष्टभ देह रे,
तो लहस्यो निज ध्रुव गेह रे ॥ आण० ॥ ६ ॥

१—दीपक २—जैसे किसान जल को पाली बाधकर रोकता है, वैसे धर्म रुचि वाले जीवों को धर्म का अवलबन देकर स्थिर करना।

छट्ठे चौविह संघने, सीखावो आचार रे।
क्रिया करता रे गुण वधे, सधे क्षमादि प्रकार रे॥
नासे दोष विकार रे, थाये ध्यान विस्तार रे,
आलय शुद्ध विहार रे॥ आणा०॥ ७॥

गुणवत रोगी ग्लान नो, वेयावच्च करो रंग रे।
अनुकपा सवि दीन नी, उत्तम भक्ति प्रसंग रे॥
वाधे विनय तरंग रे, शासन राग उमग रे।
सहज सुभाव उत्तंग रे॥ आणा०॥ ८॥

साधर्मिक जन सर्व में, कहवी थाय कसाय रे।
तजि सवि दोष अनुष्ठान नो, क्षमा कर्या सम थाय रे॥
इम जपे जिनराय रे, समता शिव सुख दाय रे।
सम निधि मुनि गुण गाय रे, सुरपति सेवे तसु पाय रे।आणा०।९।

तीजे **अंग** रे उपदिश्यो, ए उपदेश उदार रे।
जिण आणा ए जे वर्त्तस्ये, ते गुणनिधि निरधार रे॥
ज्ञान सुधा जल धार ते, वरसे श्री गणधार रे।
पामे तसु सुख सार रे॥ आणा०॥ १०॥

रयण सिहासण वेसी ने, दाखे जगत दयाल रे।
देवचंद्र आणा रुचि, होइज्यो बाल गोपाल रे॥
आतम तत्त्व संभाल रे, करज्यो जिन पत्ति बाल रे।
थास्यो परम निहाल रे॥ आणा०॥ ११॥

समकित सज्झाय

समकित नवि लह्यो रे, ए तो रुल्यो चतुर्गति माहि ।
त्रस थावर की करुणा कीनी, जीव न एक विराध्यो ।।
तीन काल सामाइक करता, शुद्ध उपयाग न साध्यो ।।स०।।१।।
झूठ बोलवा को व्रत लीनो, चोरी को पण त्यागी ।
व्यवहारादिक निपुण भयो पण, अतरदृष्टि न जागी ।।स०।।२।।
ऊर्ध्व भुजा कर उधो लटके, भस्म लगाइ धूम घट के ।
जटा जूट शिर मुंडे जूठो, विण श्रद्धा भव भटके ।।स०।।३।।
निज पर नारी त्याग ज करके, ब्रह्मचय व्रत लीधो[1] ।
स्वर्गादिक याको फल पाइ, निज कारज नवि सीधो[2] ।।स०।।४।।
बाह्य क्रिया सब त्याग परिग्रह, द्रव्य लिग धर लीनो ।
देवचद्र कहे या विध तो हम, बहुत वार कर लीनो ।।स०।।५।।

उपदेश-पद

(राग-धन्याश्री)

मेरे जीव क्या मन मे तू चिंते ।
इक आवत इक जात निरतर, इण ससार अनते ।।मे०।।१।।
करम कठोर करे जिउ[3] भारी, पर त्रिय[4] धन निरखते ।
जनम मरण दुख देखइ बहूले, चउगइ माहि भमते ।।मे०।।२।।

१—लीनो   २—सीनो   ३—जीव   ४—परस्त्री

काम भोग क्रीड़ा मन करता, जे बाधई हरखते ।
वेर वेर ते हिज भोगवतां, नवि छूटे विलव तैं ॥मे०॥३॥
क्रोध कपट माया मद भूले, भूरि मिथ्यात भमते ।
कहे देवचन्द्र सदा सुख दाई, जिन धर्म एक एकांते ॥मे०॥४॥

उपदेश-पद

(राग—धन्या श्री)

मेरे पीउ[1] क्यु न आप विचारो ।
कैसें हो कैसे गुन धारक, क्या तुम्ह लागत प्यारो ॥मे०॥१॥
तजि कुसंग कुलटा ममता को, मानो वैण[2] हमारो ।
जो कछु झूठ कहूं इनमें तो, मो कु सूस[3] तुहारो ॥२॥१॥
इह कुनारि जगत की चेरी, याको संग निवारो ।
निरमल रूप अनूप अबाधित, आतम गुण सभारो ॥मे०॥३॥
मेटि अज्ञान क्रोध दशम गुण, द्वादश[4] गुण भी टारो ।
अक्षय अबाध अनत अनाश्रित, **राजविमल**[5] पद सारो॥मे०॥४॥

द्रूपद

आतम भाव रमो हो चेतन ! आतम भाव रमो ।
परभावे रमत्ता हो चेतन ! काल अनत गमो ॥ हो चेतन ॥१॥

१—प्रीतम जीव २—वचन ३—अज्ञान क्रोधादि को दशवे गुणस्थान में टालकर
४—१२वां गुणस्थान भी टालकर । ५—राजविमल श्रीमद् का ही दीक्षा—नाम है ।

रागादिक सु मली ने चेतन ! पुद्गल संग भमो ।
चउगति माहे गमन करता, निज आतमने दमो ।। हो चेतन ।।२।।
ज्ञानादिक गुण रंग धरीने, कर्म को संग वमो ।
आतम अनुभव ध्यान धरता, शिवरमणी सु रमो ।। हो चेतन ।।३।।
परमातम नुँ ध्यान करंता, भवस्थितिमा न भमो ।
देवचंद्र परमातम साहिब, स्वामी करीने नमो ।हो चेतन०।।४।।

पंचेन्द्रिय विषय त्याग-पद

चेतन ! छोड दे, विषयन को परसंग,
गिरोइ[1] फिरत विलोल[2] फरस[3] वश, बंधोइ[4] फिरत मातंग[5] ।।चे०।।१।।
कंठ छेदायो[6] मीन आपनो, रसना[7] के परसंग ।
नेत्र विषय कर दीप शिखा पै, जल जल मरत पतंग ।।चे०।।२।।
षट्पद[8] जल माहे फस मूरख, खोयो अपनो अंग ।
वीणा शब्द सुन श्रवण ततखिन, मोही मर्यो रे कुरंग[9] ।।चे०।।३।।
एक एक इंद्रिय चलत बहु दुःख, पायो है सरभंग ।
पाँचों इन्द्रिय चलत महादुःख, भाषत + देवचंद चंग ।। चे० ।।४।।

पाठान्तर—+इम भाषत देवचंद

१—गिलारी २—चचल ३—स्पर्श के लिये ४—बधा हुआ ५—हाथी
६—मछली ७—जिह्वा ८—भौंरा ९—हरिण

हीयाली

(ढाल—१ राय कुयरि वर वाई भलो भर तार ए देशी)

इक नारि रूपे रूवडी, जनमी ज साते[2] तात ।
मलपती मानव भूलरे, सगला चित्त सुहात ।।१।।
कह्यो रे चतुर नर एह हीयाली सार, जो तुम्ह सुगुण विचार।आंकणी।
भरतार पासे नित रहे, बोले न भरता संग ।
अवर पुरुष आवी मिल्या, वात करे मन रग ।।क०।।२।।
दोइ नेत्र पति साम्हा सदा, देखे न पति नो अंग ।
वाताल जीहा[3] विना, मोटा कान अभंग ।।क०।।३।।
विचि २ उज्जल नर मनोहर, भरि साख द्ये हुंकार ।
पर खधइ न चढइ कदे, चरण विना चले सार ।।क०।।४।।
इक नारि सुं जस वैर छे, वे वै न शीतल ताप ।
देवचंद्र भाषे तेहनो, मोटा सुं मेलाप ।।क०।।५।।

झूठ त्याग सज्झाय

मोह वशे श्रवणे मुण्या रे, बोल्या दु.ख नो धाम ।
ध्वज[4] कोलक इण संगथी रे, इण भव साधे काम ।।चतुर० नर।।
परिहर वचन अलीक,[5] ए तो दुःख दायक तहकीक ।।च० परि०।।१।।

१—गूड़ार्थक—काव्य २—सात पिता से जन्म हुआ । ३—जीभ
४—नामविशेष ५—झूठ

झूठ[1] कथकनो मुख कह्यो रे, नगर नी छार समान ।
तिरिय नरय गति से भमे रे, पामे दु:ख विण ज्ञान।।चतुर०।।२।।
शीतल चदन चद्रथी रे, मीठी वाणी सुहाय ।
दव दाह वली पालवे रे, वचन दाह न खमाय ।।चतुर०।।३।।
मधुर वचन जग प्रिय छे रे, कटुक सत्य पण छोड ।
मधुर सत्य भाषी तणे रे, दरिसण थी सुख कोड ।।चतुर०।।४।।
शुचि वादि नर जे अछे रे, सफल जन्म तसु धार ।
झूठा बोला मानवी रे, किम उतरे भव पार ।।चतुर०।।५।।
व्रत श्रुत सजम भार नो रे, सत्य वचन छे कोष ।
देव दानव न करी सके रे, ते उपर तिल दोष ।।चतुर०।।६।।
आनद कारी ए चद्रज्यु रे, पाय नमे जसु देव ।
रूप जाति धन हीन ज्यु रे, तेहने एहीज टेव ।।चतुर०।।७।।
तापस योगी मूंडीया रे, नागा चीवर धार ।
कूड वचन कहेता थका रे, ते छे पातक कार ।।चतुर०।।८।।
बाधे धन परिवार जो रे, तोय न बोले अलीक ।
अन्य पुण्य सहु तोलता रे, तो ही न ए सम ठीक ।।चतुर०।।९।।
बहिरो शठ ने बोबड़ो रे, ज्ञान हीन मुख रोग ।
योनि वली खर श्वाननी रे, पामे कूडने योग ।।चतुर०।।१०।।
सातादिक गुण गण तणा रे, कूड़ करे छे हाण ।
सुहणे[2] सग न कीजिए रे, झूठ वचन दुःख खाण ।।चतुर०।।११।।

१—झूठ बोलने वाले के मुख को नगर खालकी उपमा दी है। २—स्वप्न मे भी

वंदनीक त्रय जगत मे रे, वधे द्रव्य परिवार ।
सत्य वचन थी सुख लहे रे, शुचि वादी अणगार ।।चतुर०।।१२।।
पर कारण वच झूठ ना रे, बोल्यां दे दुख लक्ष ।
असत्य वचन थी दुःख लह्यो रे, **वसु राजा** परतक्ष ।।चतुर०।।१३।।
मानव दानव सुरपति रे, ग्रह खेचर जन पाल ।
वंदे जिन ते पण कहे रे, सत्य वचन व्रत पाल ।।चतुर०।।१४।।
सत्य वचन थी सुख लहे रे, सत्य वचन सुख खाण ।
सत्य वचन कहो प्राणीया रे, देवचंद्रनी वाण ।।चतुर०।।१५।।

चोरी त्याग सज्झाय

पर धन आमिष[1] सारिखो रे, दुःख दे पन्नग[2] जेम ।
तसु विश्वास न को करे रे, तो आदरिये केम ।।चतुर नर।।
परिहर चोरी संग, चोरी थी दुख ऊपजे रे ।
वलि होय तन नो भंग, चतुरनर ।।परि।।१।।
भ्रात पिता सुत मित्र थी रे, तूटे तेह नो नेह ।
मानव थी डरतो रहे रे, मृग जेम भय नो गेह ।।चतुर०।।२।।
क्षण एक नींद करे नही रे, मरण थकी भय भ्रांत ।
जो को मुझ ने जाणशे रे, तो करशे मुझ अंत ।।चतुर०।।३।।
विद्या गुरुवाइ[3] गमे रे, निज रक्षण नवि थाय ।
सज्जन पण निंदा लहे रे, तस्कर संग पसाय ।।चतुर०।।४।।

१–मांस २–सर्प ३–गौरव

घात करे तृरण नी परे, रे चोर भरणी सहु लोक ।
पडित परण मूरख हुवे रे, मुनि परण पामे शोक ।।चतुर०।।५।।
घोर नरक दुख दे सही रे, चोरी केरी वुद्धि ।
एहनी संगति ते तजे रे, जे चाहे निज शुद्धि ।।चतुर०।।६।।
गिरि गुफा रण मे पड्या रे, पर धन लीजे नांहि ।
तृण सम परण पर वस्तुनी रे, मत मन धरने चाहि।।ततु०र।७।।
शिव सुखनी जो चाह छे रे, राखरण चाहे धर्म ।
सुख चाहे इण पर भवे रे. तो तज एह कुकर्म ।।चतुर०।।८।।
विरति[1] मूल यम साख छे रे संयम दल सम फूल ।
पंडित जन पखी अछे रे, फल ते ज्ञान अमूल ।।चतु०।।९।।
धर्म वृक्ष एहवो दहे रे, चोरी मत मन आरिण ।
पर उपगारी आदरो रे, **देवचंद्र** नी वारिण ।।चतुर०।।१०।।

ब्रह्मचर्य सज्झाय

(बंधव गज थी उतरो–ए देशी)

कूड़ कपट घर ए त्रिया, तिन को सग निवार रे भाई ।
मैथुन दुख दायक तजी, आतम गुरण संभार रे भाई ।।१।।
नारी सग तजो तुमे, नारी दुःखनी खारण रे भाई ।
नारी सगे दुःख हुवे, ए श्री जिनवर वारण रे भाई ।।नारी०।।२।।

१–धर्मरुपी वृक्ष का मूल–विरति, अहिंसादि व्रत–शाखा है, संयम–फूल पंडितजन–पक्षी, ज्ञान–फल है ।

पू[1](य)त वहे जसु देह थी, काचो व्रण वहे जेम रे भाई ।
तिम स्त्री योनि अशुचि धरे, तिण पर राचो केम रे भाई।।नारी०।।३।।

मूत्र गेह दुरगंध छे, नारी भग[2] दु ख खाणी रे भाई ।
मूरख रंग धरे तिहां, नवि राचे इसुं नाणी रे भाई ।।नारी०।।४।।

श्वान रुधिर जिम निज पीये, सुख माने मन मांह रे भाई ।
कामी तिम स्त्री संग थी, चित्त धरे उत्साह रे भाई ।।नारी०।।५।।

नारी योनि अशुचि अछे, नारी दुर्गति मार्ग रे भाई ।
आदर न दे को वृद्ध ने, तो तरुण उपर क्यो राग रे भाई।।नारी०।।६।।

सहू थी जोरावर अछे, नारी अबला नाम रे भाई ।
योनि द्वार दु:ख द्वार छे, पडित तजजो काम रे भाई ।।नारी०।।

भोगवतां तनु नारी नां, लागे छे सुकुमाल रे भाई ।
मूली थी करडी अछे, उदयागत ए काल रे भाई ।।नारी०।।७।।

मैथुन सेवंता थका, जीव मरे लख कोडी रे भाई ।
महानिशीथे दाखीया, योनि लिंग ने जोडी रे भाई ।।नारी०।।६।।

दुरगध मलधर भय करू, मडूकी आकार रे भाई ।
चरम रंध्र नारी तणे, राग किसो ? विण सार रे भाई ।।नारी०।।१०।

सर्व अशुचि मय निंद्य ए, दुरगध नारी एह रे भाई ।
राचे मूरख मानवी, पडित विरमे जेह रे भाई ।।नारी०।।११।।

१–दुर्गन्ध २–योनि

कुथित[1] मृतक गंध योनि छे, कृमि[2] कुल पूरण एह रे भाई।
क्षर मूत्र झरती रहे, तिण उपर श्यो नेह रे भाई ॥नारी०॥१२॥
एह स्वरुप जाणी तजे, पंडित स्त्री नो सग रे भाई।
मदन[3] मोह जीपी लहे, देवचंद्र पद रग रे भाई ॥नारी०॥१३॥

मनो निग्रह सज्झाय

कुशल[4] लाभ मन रोध थी रे लाल, आतम तत्व सन्नाह रे ॥सुगुण नर॥
आपा पर वचे जिके रे लाल, निज मन थिरता साह रे ॥सु०॥१॥
मन गज वश कर ज्ञान सु रे लाल, मन वश विण शिव नाह रे॥सु०॥
ध्यान सिद्ध मन शुद्ध थी रे लाल, भाजे भव दुख दाह रे ॥सु०।मन०।२॥
तीन भुवन तसु दास छे रे लाल, जसु वशी मन मातग रे ॥सु०॥
मुक्ति गेह ते जन लहे रे लाल, जसु मन छे नि सग रे ॥सु०॥मन०॥३॥
जिम मन नी शुद्धि हुवे रे लाल, तिम तिम वाधे विवेक रे ॥सु०॥
शिव चाहे मन वश विना रे लाल, मृग तृष्णा सम भेक[5] रे ॥सु०।मन०।४।
ज्ञान ध्यान तप जप सहु रे लाल, मन थिर कीधा साच रे ॥सु०॥
जग दुःख दायक मन अछे रे लाल, विषय ग्राम मे राच रे ॥सु०॥मन।५॥
ज्ञान पराक्रम फोरवी रे लाल, वश करी मन गज राज रे ॥सु०॥
नव वन मन कपि जिण दम्यो रे लाल, तसु सिद्धा सवि काज रे।सु०।मन०।६।

१—दुर्गन्धयुक्त २—कीड़ो से आकुल ३—काम और मोह को जीतकर। ४—शुभ-भावो का लाभ ५—मेढक

मन गज वश न करी सके रे लाल, तसु ध्यानादिक खेह[1] रे ।।सु०।।
जे न सधे श्रुत तप थकी रे लाल, मन थिर साधे तेह रे सु०।।मन०।७।।
अनत कर्म चउ भेद ना रे लाल, मन थिर कीधा जाय रे ।।सु०।।
जसु मन थिर ते शिव लहे रे लाल, दंडो शाने काय रे ।।सु०।।मन०।।८।।
श्रुत[2] तप यम मन वश विना रे लाल, तुस खडन सम जाण र ।।सु०।।
मन वश विणु शिव नवि लहेरे लाल मन वशे शिव सुख ठाण रे।सु०।मन०।६
मन वशे निगुंण गुण लहे रे लाल, जिण विण सहु गुण जाय रे।।सु०।।
तीन भुवन जीत्या मने रे लाल, मन जयकार को थाय रे ।।सु०।।मन०।।१०।
श्रुतधर पण मन वश विना रे लाल, नवि जाणे निज रूप रे ।।सु०।।
शांत विषय वश मनकरी रे लाल, मुनि थाये शिव भूप रे।सु०।मन०।११।
स्वर्ग मृत्यु पाताल में रे लाल, द्वीप उदधि[3] गिरि[4]सीस रे ।।सु०।।
तीन लोक में नवि भमे रे लाल, देवचंद्र गत रीस रे ।।सु०।।मन०।।१२।।

अष्ट प्रवचन माता सज्झाय

।। दोहा ।।

सुकृत कल्पतरु श्रेणिनी, वर उत्तरकुरु[5] भौमि ।
अध्यातम रस ससिकला,[6] श्री जिन वाणी नौमि[7]।।१।।

१–निरर्थक २–मन को वश किये बिना, ज्ञान, तप, अहिंसादि का पालन आदि सब तुसों को खांडने के समान है । ३–समुद्र ४–पर्वत-शिखर पर ५–उत्तर कुरुक्षेत्र ६–चन्द्रकला ७–नमस्कार करता हूँ

दीपचंद पाठक प्रवर, पय[1] वंदी अव दात[2] ।
सार श्रमण गुण भावना, गाईश **प्रवचन मात** ॥२॥
जननी पुत्र सुभकरी,[3] तिम ए पवयण[4] माय ।
चारित्र गुण गण वर्द्धनी, निरमल शिव सुखदाय ॥३॥
भाव अयोगी करण रुचि, मुनिवर गुप्ति धरंत ।
जो गुप्ते न रही सके, तो समिते विचरंत ॥४॥
गुप्ति एक[5] संवर मयी, उत्सर्गे[6] परिणाम ।
संवर निर्जरा समितिथी, अपवादे[7] गुण धाम ॥५॥
द्रव्ये द्रव्यत: चरणता, भावे भाव चरित्त ।
भाव[8] दृष्टि द्रव्यत. क्रिया, करतां शिव संपत्त ॥६॥
आतम गुण प्राग्भाव[9] थी, जे साधक परिणाम ।
समिति गुप्ति से जिन कहे, साध्य सिद्धि शिवठाम॥७॥
निश्चय करण रुचि थई, समिति गुप्तिघर साध ।
परम अहिंसक भाव थी, आराधे निरुपाधि ॥८॥
परम महोदय साधवा, जेह थया उजमाल ।
श्रमण भिक्षु माहण यती, गावुं तसु गुण माल ॥९॥

१—चरण २—उज्ज्वल-पवित्र ३—भला करने वाली ४—प्रवचनमाता-५ समिति और तीन गुप्ति । जैसे माता पुत्र का हित करने वाली होती है वैसे ही यह प्रवचन माता चारित्र रूपी पुत्र-रत्न की जननी, हितकारिणी, गुणों को बढाने वाली और मोक्ष देने वाली है । ५—एकांत से ६—निश्चयमार्ग ७—व्यावहार मे ८—आत्मस्वरुप की ओर लक्ष्य रखते हुए समिति गुप्ति आदि का पालन करने से मोक्ष प्राप्त होता है । ९—प्रगट होना

प्रथम ईर्या समिति सज्झाय

(ढाल–प्रथम गोवाल तणे भवें जी)

प्रथम अहिंसक व्रत तणी जी, उत्तम भावना एह ।
संवर कारण उपदिसी जी, समता रस गुण गेह ।।

मुनीसर ईर्या समिति संभार आश्रव[1] कर तनु योग[2] नी जी ।
दुष्ट चपलता वार मुनीसर! ईर्या समिति संभार ।।ए आंकणी।। १।।

काय गुप्ति उत्सर्ग नो जी, प्रथम समिति अपवाद ।
ईर्या ते जे चालवो जी, धरि आगम विधिवाद ।।मु०।।२।।

ज्ञान ध्यान सज्झाय मे जी, थिर बैठा मुनिराज ।
शाने चपल पणो करे जी, अनुभव रस सुखराज ।।मु०।।३।।

मुनि उठे वस[3] ही थकी जी, पांमी कारण चार ।
जिन वंदन गामंतरे जी, के आहार निहार ।।मु०।।४।।

परम चरण संवर धरु जी, सर्व जाण जिन[4] दिट्ठ ।
सूचि समता रुचि उपजे जी, तिण मुनि ने ए इट्ठ[5] ।।मु०।।५।।

राग वधे थिर भाव थी जी, ज्ञान विना परमाद ।
वीतरागता ईहता[6] जी, विचरे मुनि साल्हाद ।।मु०।।६।।

१–पुण्य-पाप का बंध कराने वाला २–काय योग ३–अपने स्थान से बाहर जाने के मुनि के लिये ४ कारण हैं–१ जिनवंदन २ विहार ३ गोचरी पानी ४ शौचादि । ४–जिनेश्वर देव का दर्शन करने से ५–प्रियकारी ६–चाहते हुए

ए शरीर भव मूल छे जी, तसु पोषक आहार।
जाव अयोगी नवि हुवें जी, तां अनादि आहार ॥मु०॥७॥
कवल आहारें नीहार छे जी, एह अग[1] व्यवहार।
धन्य अतनु परमातमा जी, जिहां निश्चलता सार ॥मु०॥८॥
पर परिणति कृत चपलता जी, किम छूटसे एह।
ऐम विचारी कारणे जी, करें गोचरी तेह ॥मु०॥९॥
क्षमा दयालु पालुआ जी, निस्पृही तन नीराग।
निर्विषयी गज गति परें जी, विचरें मुनि महाभाग॥मु०॥१०॥
परमानंद रस अनुभवे जी, निज गुण रमता धीर।
'देवचंद' मुनि' वंदतां जी, लहीये भव जल तीर ॥मु०॥११॥

द्वितीय भाषा समिति सज्झाय

(भावना मालती चुसीइं, ए देशो)

साधु जी समिति बोजी धरो, वचन निर्दोष परकास रे।
गुप्ति उत्सर्ग नो समिति ते, मार्ग अपवाद सुविलास रे ॥सा०॥१॥
भावना बीय[2] महाव्रत तणी, जिन भणी[3] सत्यता मूल रे।
भावग्रहि सकता वधें, सर्व संवर अनुकूल रे ॥सा०॥२॥
मौन धारी मुनि नवि वदें, वचन जे आश्रव गेह रे।
आचरण ज्ञान ने ध्यान नों, साधक उपदिसे तेह रे ॥सा०॥३॥

१–शरीर की रीति २–दूसरा ३–जिनेश्वरों ने कहा है

उदित पर्याप्ति जे वचन नी, ते करी श्रुत अनुसार रे।
बोध प्रागभाव सिज्झाय थी, वली करें जगत उपगार रे ।।सा०।।४।।

साधु निज वीर्य थी पर तणो, नवि करें ग्रहण ने त्याग रे।
ते भणी वचन गुप्ति रहें, एह उत्सर्ग मुनि मार्ग रे ।।सा०।।५।।

योग[1] जे आश्रव पद हतो, ते करयो निर्जरा रूप रे।
लोह थी कंचन मुनि करे, साधता साध्य चिद्रूप रे ।।सा०।।६।।

आत्महित परहित कारणे, आदरें पंच[2] सिज्झाय रे।
तेह भणी असन वसनादिका, आश्रये सर्व अपवाय रे ।।सा०।।७।।

जिन गुण स्तवन निज[3]तत्व नी, जोईवा[4]करे अविरोध रे।
देशना भव्य प्रति बोधवा, वायणा[5] करण निज बोध रे।।सा०।।८।।

नय गम भंग निक्षेप थी, सहित स्याद्वाद युत वाण रे।
सोलह[6]दस[7] चार[8]गुण सु मिली, कहै अनुयोग सुपहाण रे।।सा०।९।

१–जैसे पारसमणि के सग से लोहा स्वर्ण वन जाता है, वैसे मोक्ष की साधना करते हुए मुनियों ने आश्रवरुप योगों (कर्मबंध के हेतु रूप) को भी निर्जरा का कारण बना लिया है।

२–पाच प्रकार की स्वाध्याय–१ वाचना २ पृच्छा ३ परावर्तना ४ अनुप्रेक्षा ५ धर्मकथा

३–आत्मस्वरुप को ४–देखने के लिये ५–वाचन ६–तीनलिंग + तीन काल + तीन वचन (एक द्वि और बहुवचन) + दो प्रमाण (प्रत्यक्ष और परोक्ष) + स्तुतिमय + निन्दात्मक + स्तुति-निन्दात्मक + निन्दास्तुतियुक्त + एवं अध्यात्मम वचन–१६ गुण।

७–दस गुण–१ जनपद सत्य २ सम्मत सत्य ३ स्थापना सत्य ४ नाम सत्य ५ रूप सत्य ६ प्रतीतिसत्य ७ व्यवहार सत्य ८ भावसत्य ९ योगसत्य १० उपमासत्य।

८–चार गुण–आक्षेपणी, विक्षेपणी, उत्सर्गमार्ग है, एषणासमिति उसका अपवाद है।

सूत्र नें अर्थ अनुयोग ए, बीय निर्युक्ति संयुक्त रे।
तीय भाष्ये नये भावियो, मुनि वदे[1] वचन एम तंत[2] रे ।।सा०।।१०।।
ज्ञान समुद्र समता भरया, संवर दया भंडार रे।
तत्त्व आनंद आस्वादता, वदीये चरण गुण धार रे ।।सा०।।११।।
मोह उदये अमोही जिस्या, शुद्ध निज साध्य लयलीन रे।
'देवचंद्र' ते मुनि वदीये, ज्ञान अमृत रस पीन रे ।।सा०।।१२।।

तृतीय एषणा समिति सज्झाय

(ढाल—झांझरीया मुनिवर, ए देसी)

समिति त्रीजी एषणा जी, पंच महाव्रत मूल।
अनाहारी[3] उत्सर्ग नो जी, ए अपवाद अमूल ।।
मन मोहन मुनिवर, समिति सदा चित्त धार ।।ए आंकणी।।१।।
चेतनता चेतन तणी जी, नवि पर संगी तेह।
तिण पर सनमुख नवि करे जी, आतम रती व्रती जेह ।।म०।।२।।
काय योग पुद्गल ग्रहे जी, एह न आतम धर्म।
जाणग करता भोगता जी, हुं माहरो ए मर्म ।।म०।।३।।
अनभिसंधि[4] चल वीर्य नी जी, रोधक शक्ति अभाव।
पिण अभिसंधिज[5] वीर्य थी जी, केम ग्रहें पर भाव ।।म०।।४।।
इम पर त्यागी संवरी जी, न गहे पुद्गल खंध।
साधक[6] कारण राखवा जी, असनादिक संबंध ।।म०।।५।।

१—बोलो　२—सार　३—सर्वथा आहाररहित रहना　४—इन्द्रियजन्म प्रवृत्ति
५—आत्म शक्ति　६—मोक्ष साधक शरीर

आतम तत्त्व अनंतता जी, ज्ञान विना न जणाय ।
तेह प्रगट करवा भणी जी, श्रुत सिझाय उपाय ॥म०॥६॥

तेह देह थी देह रहे जी, आहारे बलवान ।
साध्य अधूरे हेतु ने जी, कर्म तजे गुणवान ॥म०॥७॥

तनु अनुयायी वीर्य नो जी, वरतन असन संयोग ।
वृद्ध[1] यष्टि सम जाणि ने जी, असनादिक उपभोग ॥म०॥८॥

जां साधकता नवि अडे जी, ता न ग्रहे आहार ।
बाधक परिणति वारवा जी, असनादिक उपचार ॥म०॥९॥

सडतालीसे द्रव्यना जी, दोष तजी नीराग ।
असंभ्रांति मूर्छा विना जी, भ्रमर परें वड भाग ॥म०॥१०॥

तत्व रुची तत्वाश्रयी जी, तत्वरसी निग्रंथ ।
कर्म उदे आहारता जी, मुनि माने पलि मथ[2] ॥म०॥११॥

लाभ थकी पिण अणलहे जी, अति निर्जरा करत ।
पाम्ये अण व्यापक पणे जी, निरमम संत महंत ॥म०॥१२॥

अनाहारता साधता जी, समता अमृत कद ।
भिक्षु श्रमण वाचयमी[3] जी, ते वंदे देवचंद ॥म०॥१३॥

१—जैसे वुड्ढे को लकडी का सहारा है, वैसे—साध्यसिद्धि मे कारणभूत शरीर के लिये आहारादि आवश्यक है । २—दोष ३—मुनि

चतुर्थ आदाननिक्षेपणा समिति सज्झाय

(ओलीडा हंसा रे विषय न राचीइं-ए देसी)

समिति चोथी रे चोगति वारणी, भाखी श्री जिन राज ।
राखी-परम अहिंसक मुनिवरे चाखी ज्ञान समाज ।।सहज०।।१।।

सहज सवेगी रे समिति परिणामों, साधन आतम काज ।
आराधन ए सवर भाव नों, भव जल तरण जहाज ।।स०।।२।।

अभिलाषी निज आतम तत्त्व ना, साख[1] धरे सिद्धांत ।
नाखी सर्व परिग्रह संग नें, ध्यानाकांक्षी रे संत ।।स०।।३।।

संवर पंच तणी ए भावना, निरुपाधिक अप्रमाद ।
सर्व परिग्रह त्याग असंगता तेहनो ए अपवाद ।।स०।।४।।

स्याने मुनिवर उपधि सग्रहे, जे परभाव विरत्त ।
देह[2] अमोही नवि लोही[3] कदा, रत्नत्रयी संपत्त ।।स०।।५।।

भाव अहिंसकता कारण भणी, द्रव्य अहिंसक साधु ।
रजोहरण मुख वस्त्रीका धरे, धरवा योग समाधि ।।स०।।६।।

शिव साधन नू मूल ते ज्ञान छे तेहनो हेतु सिज्झाय ।
ते आहार रे ते वलि पात्र थी, जयणाइं ग्रहवाय ।।स०।।७।।

बाल तरुण नर नारी जंतु नें, नग्न दुगछा[4] हेतु ।
तेणे चोलपट ग्रही मुनि उपदेसें, सुद्ध धर्म्म संकेत ।।स०।।८।।

१—आतमतत्त्व के अभिलासी आगमों की साक्षी मे आचरण करते है । २—शरीर पर भी जिनका मोह न हो ३—लोभी ४—नग्नता घृणा का कारण है

दंस मसक सीतादि परीसहे, न रहें ध्यान समाधि ।
कलपक[1] आदिक निरमोही पणे, धारें मुनि निराबाध ।।स०।।९।।
लेप[2] अलेप[3] नदी ना ज्ञान नों, कारण दंड ग्रहंत ।
दसवैकालिक भगवइ साख थी, तनु थिरता ने सत ।।स०।।१०।।
लघु त्रस जीव सचित्त रजादि नो, वारण दुख संघट्ट ।
देखी पुंजीरे मुनिवर वावरे, ए पूरव मुनि वट्ट ।।स०।।११।।
पुद्गल[4] खंध ग्रहण नीखेवणा, द्रव्ये जयणा तास ।
भावें आतम परिणति नव नवी, ग्रहतां समिति प्रकास।।स०।१२।।
बाधक[5] भाव अद्वेष पणें तजे, साधक ले गतराग ।
पूरव[6] गुण रक्षक पोषक पणे, नीपजते सिव माग ।।म०।।१३।।
संयम श्रेणिए संचरता मुनी, हरता करम कलंक ।
धरता स्मरता रस एकत्त्वता तत्व रमण निसक ।।स०।।१४।।
जग उपगारी रे तारक भव्य ना, लायक पूरणानंद ।
'देवचंद' एहवा मुनी राज ना, वंदे पद[7] अरविंद ।।स०।।१५।।

पंचम पारिष्ठापनिका समिति सज्झाय

(चेतन चेतज्यो रे, ए देसी)

१–ओढने के वस्त्र २–जघाप्रमाण जल ३–जंघा से कम जल ४–वस्तु को जयणा-पूर्वक उठाना रखना द्रव्यजयणा है, आत्मा में कोई बुरी भावना न आवे इसका ख्याल रखना, भाव जयणा है। ५–प्रतिकूल भावों के प्रति द्वेष न रखना एवं अनुकूल के प्रति राग न रखना। ६–पूर्वप्राप्त सम्यकत्वादि गुण ७–पद कमल

पंचम समिति कही अति सुंदरु रे, पारिठावणी नाम ।
परम अहिंसक धर्म वधारणी रे, मृदु करुणा परिणाम ॥१॥

मुनिवर सेवज्यो रे समिति सदा सुखदाय ।ए आंकणी।
थिरता भावे संयम सोहियें रे, निरमल संवर थाय ॥मु०॥२॥

देह नेह थी चंचलता वधे रे, विकसे दुष्ट कषाय ।
तिण तनुराग तजी ध्याने रमें रे, ज्ञान चरण सुपसाय ॥मु०॥३॥

जिहां शरीर तिहां मल उपजे रे, तेह तणो परिहार ।
करें[1] जंतु चर थिर अण दूहव्यें रे, सकल दुगंछा वार ॥मु०॥४॥

संयम बाधक आतम विराधना रे, आणा घातक जांणि।
उपधि अशन शिष्यादिक परठवें रे, आयति[2] लाभ पिछांणि॥मु०॥५॥

वधें आहारें तपीया परठवें रे, निज कोठे अप्रमाद ।
देह अरागी भात अव्यापता रे, धीर नो ए अपवाद ॥मु०॥६॥

संलोकादिक[3] दूषण परिहरी रे, वरजी राग नें द्वेष ।
आगम रीते परिठवणा करें रें, लाघव हेतु विशेष ॥मु०॥७॥

कल्पातीत अहा लंदी क्षमी रे, जिनकलपादि मुनीस ।
तेहनें परिठवणा इक मल तणी रे, तेह अलपवलि दीस ॥मु०॥८॥

१–त्रस और स्थावर जीवो की विराधना टालते हुए। २–भावी लाभ
३–जहां किसी का आना जाना न हो, न किसी की दृष्टि पड़ती हो ऐसी स्थण्डिलभूमि में, राग-द्वेष रहित हो, आहारादि का परठे ।

रात्रें परिश्रवणादिक[1] परिठवे रे, विधि कृत मंडल ठाम ।
थिवर कल्पी नो विधि अपवाद छे रे, ग्लानादिक ने काम ।।मु०।।६।।
एह द्रव्य थी भावें परठवे रे, बाधक जे परणाम ।
द्वेष निवारी मादकता विना रे, सर्व विभाव विरांम ।।मु०।।१०।।
आतम परिणति तत्व मयी करे रे, परिहरता पर भाव ।
द्रव्य समिति पिण भावभणी धरें रे, मुनि नो एह स्वभाव।मु०।११।
पंच समिती समिता परणाम थी रे, क्षमा कोष गत रोस ।
भावन पावन संयम साधता रे, करता गुण गण पोस।।मु०।।१२।।
साध्य रसी निज तत्वें तन्मयी रे, उत्सर्गी निर माय ।
योग क्रिया फल भाव अवंचता रे, सुचि अनुभव सुखराय।मु०।१३।।
आणा युत नाणी वली दर्शनी रे, निश्चय निग्रह वंत ।
'देवचंद्र' एहवा निग्रंथ जे रे, ते माहारा गुरु महत ।।मु०।।१३।।

षष्ठ मनोगुप्ति सज्झाय

(वैरागी थयो–ए देशी)

दुष्ट[2] तुरंग चित ने कह्यो रे, मोह नृपति परधांन ।
आर्त्त[3] रोद्रनु खेत्र ए रे, रोकि तू ज्ञान निधा न रे ।मु०।१।।
मुनि मन वसि करो, मन ए आश्रव गेह रे ।
मन ममता रसी, मन थिर यतिवर तेह रे ।।मु०।।२।।

१–मात्रादि २–दुष्टघोड़ा ३–मन कई पीड़ाओ का क्षेत्र है ।

गुप्ति प्रथम ए साधु नें रे, धरम सुल्क नो कंद ।
वस्तु धरम चिंतन मा रम्या रे, साधें पूर्णानंद रे ।।मु०।।३।।
योग ते पुद्गल योगवे रे, खींचे अभिनय कर्म ।
योग वरतना कंपना रे, नवि ए आतम धर्म रे ।।मु०।।४।।
वीर्य चपल पर संगमी रे, एह्न सावक पक्ष ।
ज्ञान चरण सह कारता रे, वरतावे मुनि दक्ष रे।।मु०।५।।
सविकल्प गुण साधना रे, ध्यानी नें न सुहाय ।
निर्विकल्प अनुभव रसी रे, आत्मानंदी थाय रे ।।मु१।।६।।
रत्नत्रयी[1] नी भेदता रे, एह समल विवहार ।
त्रिगुण वीर्य एकत्वता रे, निर्मल आत्माचार रे।।मु०।।७।।
शुक्ल ध्यान श्रुता लंबना रे, ए पिण साधन दाव ।
वस्तु धरम उत्सर्ग मा रे, गुण गुणी एक स्वभाव रे ।।मु०।।८।।
पर सहाय गुण वर्त्तना रे, वस्तु धरम न कहाय ।
साध्य रसी तो किम ग्रहें रे, साधु चित्त सहाय रे।।मु०।९।।
आत्म रसी आत्मालयी रे, ध्याता तत्व अनंत ।
स्याद्वाद ज्ञानी मुनी रे, तत्व रमण उपशांत रे ।।मु०।।१०।
नवि अपवाद रुचि कदा रे, शिव रसीया अणगार ।
शक्ति यथा[2] गम तेसेवता रे, निंदें कर्म प्रचार रे ।।मु०।११।।

१—ज्ञानादि का भेद, व्यवहार से है, तीनो की एकता निर्मल आत्मरमणता है ।
२—वीर्योल्लास से सेवन करते हुए ।

शुद्ध सिद्ध निज तत्वता रे, पूर्णानंद समाज ।
देवचंद्र पद साधता रे, नमीइ ते मुनीराज रे ।।मु०।।१२।।

सप्तम वचनगुप्ति सज्झाय

(ढाल–सुमति सदा दिल मां धरो)

अचन गुप्ति सुधी धरो, वचन ते करम[1] सहाय सलूणे ।
उदयाश्रित जे चेतना, निश्चय तेह अपाय सलूणे ।।व०।।१।।
वचन अगोचर आतमा, सिद्ध ते वचनातीत सलूणे ।
सत्ता अस्ति स्वभाव में, भाषक भाव अनीत सलूणे ।।व०।।२।।
अनुभव रस आस्वादता, करता आतम ध्यान सलूणे ।
वचन ते बाधक भाव छें, न वदें मुनिय निदान सलूणे।।व०।।३।।
वचनाश्रव[2] पलटाववा, मुनि साधे स्वाध्याय सलूणे ।
तेह सर्वथा गोपवे, परम महारस थाय सलूणे ।।व०।।४।।
भाषा पुद्गल वरगणा, ग्रहण निसर्ग उपाधि ।।स०।।
करवा आतम विरज ने, स्याने प्रेरे साधु स० ।।व०।।५।।
यावत[3] वीरज चेतना, आतम गुण सपत्त स०
तावत संवर निर्जरा, आश्रव पर आयत्त स० ।।व०।।६।।

१–कर्म बंधन के कारण २–वचनरूपी आश्रव को रोकने के लिये स्वाध्याय पूर्ण उपाय है। यदि वचनाश्रव को सर्वथा रोकले तो आत्मानंद प्राप्त हो जाय। १–जवतक चेतना आतम गुणों को प्रेरणा देती, तब तक सवर और निर्जरा है ।

इम जाणी थिर संयमी, न करे चपल पलिमंथ स०
आतमानंद आराधता, अज्झत्थी[1] निर्ग्रंथ स० ॥व०॥७॥

साध्य सुद्ध परमातमा, तस साधन उत्सर्ग स०
बारे भेदे तप विषे, सकल श्रेष्ट व्युत्सर्ग स० ॥व०॥८॥

समकित गुण ठाणे करचो, साध्य अजोगी भाव स०
उपादानता तेहनी, गुप्ति रूप थिर भाव स० ॥व०॥९॥

गुप्ति रुचि गुप्ते रम्या, कारण समिति प्रपच स०
करता थिरता ईहता, ग्रहे तत्व गुण संच स० ॥व०॥१०॥

अपवादे[2] उत्सर्गनी, दृष्टि न चूके जेह ।स०।
प्रणमे नित प्रति भावस्युं, 'देवचंद्र' मुनि तेह स० ॥व०॥११॥

अष्टम कायगुप्ति सज्झाय

(ढाल—फूल ना चोसर प्रभुजी नें सिर चढें—ए देशी)

गुप्ति संभारो रे त्रीजी मुनिवरू, जेहथी परम आनंदो जी ।
मोह टलें घन घाती परिगले,[3] प्रगटें ज्ञान असंदो जी ॥गु०॥१॥

किरिया शुभ असुभ भव[4] बीज छें, तिण तजी व्यापारो जी।
चंचल भाव ते आश्रव मूल छे, जीव अचल अविकारो जी ॥गु०॥२॥

१—आतमार्थी २—अपवाद का सेवन करते हुए उत्सर्ग की ओर लक्ष्य न चूके ।
३—गलजाय ४-ससार का कारण

इंद्री विषय सकल नो द्वार ए, बध हेतु दृढ़ एहो जी ।
अभिनव[1] कर्म ग्रहें तनु योग थी, तिण थिर करीइं देहो जी।।गु०।।३।।
आतम वीर्य स्फुरे पर संग जे, ते कहीयें तनु योगो जी ।
चेतन सत्ता रे परम अयोगी छे, निरमल थिर उपयोगो जी।।गु०।४।।
जावत कंपन तावत बंध छे, भाष्युं भगवई अंग्रे जी ।
ते माटें ध्रुव[2] तत्व रसे रमइं, माहण[3] ध्यान प्रसंगें जी ।।गु०।।५।।
वीर्य सहाई रे आतम धर्म नो, अचल सहज अप्रयासो जी ।
ते प्रभाव सहायी किम करइं, मुनिवर गुण आवासो जी।।गु०।।६।।
खंती मुत्ति युत्त अकिंचनी, शौच ब्रह्मधर धीरो जी ।
विषम परिसह सेन्य विदारिवा, वीर परम सौडीरो[4] जी ।।गु०।।७।।
कर्म पटल दल क्षय करवा रसी, आतम ऋद्धि समृद्धो जी ।
'देवचंद्र' जिन आणा पालता, वंदो गुरु गुण वृद्धो जी ।।गु०।।८।।

नवम साधु स्वरुप वर्णन सज्झाय

(ढाल—रसीया नी देसी)

धरम धुरंधर मुनिवर सेवीए,[5] नाण चरण संपन्न सुगुण नर
इंद्री भोग तजी निज सुख भजी, भव[6]चारक उदविन्न सु० ।।ध०।।१।।

१—शरीर के कारण ही नये कर्मबंध होते हैं । २—निश्चल ३—मुनि
१—शूरवीर २—प्रशसा करनी चाहिये ३—संसार रुपी कैद से उद्विग्न

द्रव्य भाव साची सरधा धरी, परिहरि सकादि दोष सु०
कारण कारज साधन आदरी, साधे साध्य सतोष सु० ।।ध०।।२।।

गुण पर्याय वस्तु परखता, सीख उभय भंडार सु०
परिणति शक्ति स्वरुपे परिणामी, करता तसु व्यवहार सु० ।।ध०।।३।।

लोकसन्न[1] वितिगिच्छा वारता, करता संयम वृद्धि सु०
मूल उत्तर गुण सर्व संभारता, धरता आतम शुद्धि सु० ।।ध०।।४।।

श्रुतधारी श्रुतधर निश्रारसी, वशी कर्यात्रिक योग सु०
अभ्यासी अभिनव श्रुत सार ना, अविनाशी उपयोग सु० ।।ध०।।५।।

द्रव्य भाव आश्रव मल टालता, पालता सयम सार सु०
साची जैन क्रिया सभारतां, गालता कर्म विकार सु० ।।ध०।।६।।

सामायिक आदिक गुण श्रेणी में, रमता चढते रे भाव सु०
तीन लोक थी भिन्न त्रिलोक में, पूजनीक जसु पाव ।।सु०।।ध०।।७।।

अधिक गुणी निज तुल्य गुणी थकी, मिलता जे मुनिराज सु०
परम समाधि निधि भव जलधि ना, तारण तरण जहाज सु०।ध०।८।

समकित वंत संयम गुण ईहता, धरवा असमर्थ सु०
संवेगपक्षी भावे शोधता, कहेता साचो रे अर्थ सु० ।।ध०।।९।।

आप प्रशंसाये नवि माचता, राचता मुनि गुण रंग ।।सु०।।
अप्रमत्त मुनि श्रुत[2] तत्व पूछवा, सेवे जासु अभंग सु० ।।ध०।।१०।।

१—लोक संज्ञा २—ज्ञान का तत्त्व

सद्दहणा[1] आगम अनुमोदता, गुण कर संयम चालि सु०
व्यवहारे साचो ते साचवे, आयति लाभ सभालि सु० ।।ध०।।११।।
दुष्कर कार थकी अधिका कहे, वृहत्कल्प विवहार ।।सु०।।
उपदेश माला भगवई अग मे, गीनारथ अधिकार सु० ।।ध०।।१२।।
भाव चरण थानिक फरस्या, विना न हुवे संयम धर्म ।।सु०।।
तो स्यानें भूठुं ते उचरें, जे जाणे प्रवचन मर्म ।।सु०।।ध०।।१३।।
यश लोभे निज सम्मति थापना, परजन रंजन काज सु०
ज्ञान क्रिया द्रव्य थी साचवे, तेह नहीं मुनिराज सु० ।।ध०।।१४।।
बाह्य दया एकांते उपदिसे, श्रुत आम्नाय[2] विहीन ।सु०।
बग[3] परि ठगता मूरख लोके, बहु भमशे ते दीन सु० ।।ध०।।१५।।
अध्यातम परिणति साधन ग्रही, उचित वहे आचार ।सु०।
जिन आणा अविराधक पुरुष जे, धन्य तेह नो अवतार सु०।।ध०।१६।
द्रव्य क्रिया नैमित्तिक हेतु छे, भाव धर्म लयलीन सु०
निरुपाधिकता जे निज अंस नी, माने लाभ नवीन सु० ।।ध०।।१७।।
परिणति[4] दोष भणी जे निंदता, कहता परिणति[5] धर्म सु०
योग ग्रथना भाव प्रकाशता, तेह विदारे कर्म सु० ।।ध०।।१८।।
अल्प क्रिया पिण उपगारी पणे, ग्यानी साधे हो सिद्धि सु०
देवचंद्र सुविहित मुनि वृंद ने, प्रणम्या सयल समृद्धि सु० ।।ध०।।१६।

१—आगमों के प्रति पूर्ण श्रद्धा, आगमोक्त आचरण करने वाले की अनुमोदन ये दो गुणकारी हे। २—ज्ञान की परंपरा ३—बगुल के समान ४—विभावदशा ५—स्वभावदशा

कलश–प्रशस्ति

(ढाल राग–धनाश्री)

ते तरीया रे भाइ ते तरिया, जे जिन शासन अनुसरीया जी ।
जेह करे सुविहित मुनि किरिया, ज्ञानामृत रस दरीया[1] जी ।।ते०।।१।।
विषय कषाय सहु परिहरिया, उत्तम समता वरिया जी ।
सील सन्नाह[2] थकी पाखरिया, भव समुद्र जल तरीया जी ।।ते०।।२।।
समिति गुपति मां जे परिवरिया, आत्मानदे भरिया जी ।
आश्रव द्वार सकल आवरीया,[3] वर संवर संवरीया जी ।।ते०।।३।।
खरतर मुनि आचरणा चरिया,[4] **राजसार** गुण गिरिया[5] जी ।
ज्ञान धर्म तप ध्याने वसिया, श्रुत रहस्य ना रसिया जी ।।ते०।।४।।
दीपचंद पाठक पद धरीया, विनय रयण सागरीया जी ।
देवचंद मुनि गुण उचरीया, कर्म अरी निर्जरीया जी ।।ते०।।५।।
सुरगिरि[6] सुंदर जिनवर मदिर, सोभित नगर सवाई जी ।
नवानगर[7] चोमासु करी ने, मुनिवर गुण स्तुति गाई जी ।।ते०।।६।।
ते मुनि गुण माला गुणे विसाला, गावो ढाल रसाला जी ।
चोविह सघ समण गुण थुणतां, थास्यो लील भुवाला जी ।।ते०।।७।।

१–समुद्र २–शील रुप कवच ३–बन्द करदिये ४–पालन करने वाले ५–गुणो मे महान ६–सुमेरु के समान सुन्दर और उच्च जिन चैत्य से शोभित ७–जामनगर ।

॥कलश॥

इम द्रव्य भावे समिति समिता, गुप्ति गुप्ता मुविवरा
निर्मोह निर्मल शुद्ध चिदघन, तत्व साधन तप्परा
देवचंद्र अरिहा आण विचरे विस्तरे जस सपदा
निर्ग्रंथ वदन स्तवन करतां, परम मंगल सुख सदा ॥८॥

पंच भावना सज्झायः

स्वस्ति **श्रीमन्दिर** परम, धरम धाम सुख ठाम ।
स्यादवाद परिणाम धर, प्रणमुं चेतन राम ॥१॥
महावीर जिनवर नमी, भद्रबाहुसूरीश ।
वंदी श्री **जिन भद्र** गणि, श्री **क्षेमेंद्र** मुनीश ॥२॥
सद् गुरु सासन देव नमि, **वृहत्कल्प** अनुसार ।
सुद्ध **भावना** साधु नी, भाविस **पंच** प्रकार ॥३॥
इंद्री[1] योग कषाय ने, जीपे मुनि निस्संग ।
इण जीते कुध्यान जय, जाये चित्त तरंग[2] ॥४॥
प्रथम भावना श्रुततणी[3], बीजी तप तीय सत्व ।
तुरीय एकता भावता, पचम भाव सुतत्व ॥५॥

१–पांच इन्द्रियां, चार कषाय और तीन योग को जीते । २–मानसिक विकल्प
३–प्रथम श्रुत भावना (२) तप भावना (३) सत्त्व भावना (४) एकत्त्व भावना और (५) तत्त्व भावना है । इनका क्रमश: फल है (१) मनस्थिरता (२) कायदमन, वेदोदय को शान्त करना (३) निर्भयता (४) लघुता (५) आत्म गुणों की सिद्धि ।

श्रुत भावना[1] मन थिर करे, टाले भव नो खेद ।
तप भावन काया दमें. वमे वेद उमेद ॥६॥

सत्व भाव निर्भय दसा, निज लघुता इक भाव ।
तत्व भावना आत्म गुण, सिद्धि साधन दाव ॥७॥

ढाल-१--श्रुत भावना की

(लोक सरूप विचारो आतम हित भणी रे–ए देशी)

श्रुत अभ्यास करी मुनिवर सदा रे, अतीचार सहु टालि ।
हीन अधिक अक्षर मत उच्चरी रे, शब्द अर्थ संभालि ॥१॥श्रु॥

सूक्षम अर्थ अगोचर दृष्टि थी रे, रूपी रूप विहीन ।
जेह अतीत अनागत वरतता रे, जाणै ज्ञानी लीन ॥२॥श्रु०॥

नित्य अनित्य एक अनेकता रे, सद सदभाव स्वरूप ।
छए भाव इक[2] द्रव्ये परणम्या रे, एक समय मां अनूप ॥३॥श्रु०॥

उत्सर्ग अपवाद पदे करी रे. जाणे सहु श्रुत चाल ।
वचन विरोध निवारै युक्ति थी रे, थापै दूषण टाल ॥४॥श्रु०॥

द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक धरे रे, नय गम भग अनेक ।
नय सामान्य विशेष ते ग्रहे रे, लोक अलोक विवेक ॥५॥श्रु०॥

१—हर पदार्थ, में एक ही समय मे छः भाव परिणत होते है —नित्यता, अनित्यता, एकता, अनेकता सत् और असत्-श्रुतज्ञान द्वारा द्रव्यो के इन छ भावो को विचारे ।
२—श्रुतज्ञान की उपकारकता नंदी सूत्र एवं भगवती के नवम शतक के इकत्तीसवें उद्देशक में 'असोच्चा केवली' के अधिकार मे भी बताई गई है ।

नंदी सूत्रइ उपगारी कह्यो रे, वली अशुच्चा ठाम।
द्रव्य श्रुत ने वाद्यो गणधरे रे, भगवई अंगइ नाम ।।श्रु०।।६।।

श्रुत[2] अभ्यासे जिन पद पामी ये रे, छट्ठि+ अंगे साख।
श्रुत नाणी केवल नाणी समो रे, पन्नवणिजे[2] भारव ।।श्रु०।।७।।

श्रुतधारी आराधक सर्वतइं रे, जाणे अर्थ स्वभाव।
निज आतम परमातम सम ग्रहे रे, ध्यावें ते नय दाव ।।श्रु०।।८।।

संयम दर्शन ज्ञाने× ते वधे रे, ध्याने शिव साधंत।
भव सरूप चउगती※नो ते लखे रे, तिण संसार तजंत ।।श्रु०।।९।।

इंद्रीय सुख चंचल जाणी तजे रे, नव नव अर्थ तरंग।
जिम जिम पामे तिम मन उल्लसे रे, वसे न चित्त अनंग[3] ।श्रु०।१०।।

काल असंख्यता ना ते भव लखे रे, उपदेशक पिण तेह।
परभव साथी अवलंबन खरो रे, चरण विना शिव गेह ।।श्रु०।।११।।

पंचम काले श्रुतबल पिण घटचो रे, तो पिण ए आधार।
'देवचंद्र' जिन[4] मत नो तत्व ए रे, श्रुत सुं धरज्यो प्यार ।।श्रु०।।१२।।

पाठान्तर + छठें

पाठान्तर—× ते ज्ञाने वधें रे ※चउगनो लखड़

१—श्रुतअभ्यास से तीर्थंकर नाम कर्म बंधता है। २—पन्नवणासूत्र मे
३—काम वासना ४—जिनेश्वरदेव का मार्ग

ढाल २–तप भावना की—

(कुमर इसौ मन चिंतवैं रे–ए देशी)

रयणावली कनकावली मुक्तावली गुण रयण ।
वज्र卐मध्य ने जव मध्य ए तप कर ने हो जीपो रिपु मयण ॥१॥
भवियण तप गुण आदरो रे, तप तेजे रे छीजे सहु कर्म ।
विषय विकार दूरे टले रे, मन गंजे रे मंजे भव भर्म ॥भ०॥२॥
जोग[1] जय इंद्रीय[2] जय तहा, तव कम्म[3] सूडण सार ।
उवहाण[4] योग दुहा करी, सिव साधे रे सुधा अणगार ॥भ०॥३॥
जिम जिम प्रतिज्ञा दृढ़ थको, वेरागी तप सी मुनि राय ।
तिम तिम अशुभ दल छीजइ, रवि[5] तेजे रे जिम सीत विलाय॥भ०॥४॥
जे भिक्षु पडिमा आदरे, आसण अकंप सुधीर ।
अति लीन समता भाव में, तृण नी पर हो जाणंत सरीर॥भ०॥५॥
जिण[6] साधु तप तरवार थी, सूडीयो मोह गयंद ।
तिण साधु नो हुं दास छुं, नित्य वंदु हो तस पय अरविंद॥भ०॥६॥
आयार सुयगडांग में, तिम कह्यो भगवई अंग ।
उत्तर झयण गुण●तीस में, तप सगे हो सहु कर्म नो भंग॥भ०॥७॥

卐वज्ज ●तीस में

१–योगो को जीतने से २–इन्द्रियां जीती जाती हैं। ३–कर्म सूदन तप ४–उपधान और योगोद्वहन करके ५–सूर्यका तेज ६–जिन मुनियो ने तपरूपी तलवार के द्वारा मोह रूपी हाथी का विनाश कर दिया है, उनका मैं दास हूँ, उनके चरण करण कमल को मैं नित्य वन्दन करता हूं।

जे दुविध[1] दुक्कर तप तपे, भव[2] पास आम विरत्त ।
धन साधु मुनि ढंढण समा, ऋषि खंदग हो तीसग कुरुदत्त।।भ०।८।
निज आतम कंचन भणी, तप अगनी करि सोधंत ।
नव नव लबधि बल छतै, उपसर्गे हो ते संत महंत ।।९।।भ०।।
धन्य तेह जे धन गृह तजी, तन नेह नो करी+ छेह ।
निस्सग वन वासे वसे, तपधारी हो जे अभिग्रह गेह ।।भ०।।१०।।
धन्य तेह गच्छ गुफा तजी, जिन कल्पी[3] भाव अफंद ।
परिहार[4] विशुद्धी तप तपे, ते वंदे हो 'देवचंद' मुनिंद ।।भ०।।११।।

ढाल ३–सत्त्वभावना की

(हिव राणी पदमावती···ए देशी)

रे जीव ! साहस आदरो, मत थावौ दीन ।
सुख दुख संपद आपदा, पूर्व करम आधीन ।।रे०।।१।।
क्रोधादिक वसि रण समे, सह्या दुक्ख अनेक ।
ते जो समतामां सहे, तो तुज खरो विवेक ।।रे०।।२।।
सर्व अनित्य अशास्वतो,[5] जे दीसै एह ।
तन धन सयण[6] सगा सहू, तिणसुं☉ स्यो नेह ।।रे०।।३।।
जिम बालक वेलू[7] तणा, घर करीय रमंत ।
तेह छते अथवा ढहे,[8] निज निज गृह[9] जंत ।।रे०।।४।।

पाठान्तर—+करे ☉स्यूं स्यउ

१–बाह्य आभ्यन्तर तप २–सांसारिक बंधन। ३–जिनकल्पी ४–नेव साधुओ का समूह मिलकर तप विशेष करता है। ५–अनित्य ६–स्वजन ७–रेत ८–गिर जाने पर ९–घर चले जाते हैं।

पथी जेम सराह[1] में, नदी नावनी रीति ।
तिम ए परीयण[2] तो मिल्यो, तिणथी सी प्रीति ॥रे०॥५॥
जां स्वारथ तां सहु सगे, विण स्वारथ दूर ।
परकाजे पापै मिलै, तूं किम हुवे सूर ॥रे०॥६॥
तजि वाहिर मेलावडो, मिलीयो बहु वार ।
जे पूर्वे मिलीयो नही, तिण सुं धरि प्यार ॥रे०॥७॥
चक्री हरि बल प्रति[3] हरी, तसु वैभव अमांन ।
तें पिण काले संहरया, तुझ धन स्ये मान ॥रे०॥८॥
हा हा हूं करतो तू फिरैं, पर परिणति चित ।
नरक पडयां कहि ताहरी, कुण करस्यैं चिंत ॥रे०॥९॥
रोगादिक दुख ऊपने, मन अरति म[4] धरेव ।
पूरव निज कृत कर्म नो, ए अनुभवे हेव ॥रे०॥१०॥
एह सरीर असासतौ[5] खिण मैं छीजंत ।
प्रीति किसी तिण ऊपरै× जे स्यारथवंत ॥रे०॥११॥
जां लगें तुझ इण देह थी, छै पूरव संग ।
तां लगि कोड़ि उपाय थी, नवि थाये भंग ॥रे०॥१२॥
आगलि पाछलि चिहुं दिनै, जे विणसी जाय ।
रोगादिक थी नवि रहै, कीधै कोड़ि उपाय ॥रे०॥१३॥

पाठान्तर—× ऊपरा

१–धर्मशाला-मुसाफिर खाना २–कुटुम्ब ३–प्रति-वासुदेव ४–दु:ख ५–अनित्य

अतइ पिण इण ने तज्या, थायै शिव सुक्ख ।
ते जो[1] छूटे आप थी, तो तुझ स्यौ दुक्ख ।।रे०।।१४।।
ए तन विणस्यै ताहरे, नवि कांई हाण ।
जो ज्ञानादिक गुण तणौ, तुझ आवै झाण[2] ।।रे०।।१५।।
तु अजरामर आतमा, अविचल गुण[3] खाण ।
खिण भंगुर जड़ देह थी, तुझ केही पिछाण ।।रे०।।१६।।
छेदन भेदन ताड़ना, बध* बंधन दाह ।
पुदगल ने पुदगल करे, तूं अमर अगाह ।।रे०।।१७।।
पूरव करम उदे सही, जन वेदना थाय ।
ध्यावे आतम तिण समे, ते ध्यानी राय ।।रे०।।१८।।
ग्यांन ध्यान नी वातड़ी, करणी आसान ।
अतसमे आपद पडया, विरला करे ध्यान ।।रे०।।१९।।
आरति करि दुख भोगवे, पर वसि जिम कीर[4] ।
तो तुझ जाण पणा तणो, गुण केहो धीर ।।रे०।।२०।।
शुद्ध निरजन निरमलो, निज आतम भाव ।
ते विणस्ये कहि दुख किस्यों, जे मिलियो आव ।।रे०।।२१।।
देह[5] गेह भाडा तणो, ए आपणों नांहि ।
तुझ[6] गृह आतम ज्ञान ए, तिण माहि समाहि[7] ।।रे०।।२२।।

पाठान्तर—*बह

१—यदि २—ध्यान ३—गुणों का राजा है। ४—तोता ५—यह शरीर किराये का घर है। ६—तेरा अपना घर आत्मज्ञान है। ७—समाधि

मेतार, सुकोसलो, वलि गज सुकुमाल ।
सनत कुमार चक्री परे, तन ममता टाल ॥रे०॥२३॥
कष्ट[1] पडया समता रमे, निज आतम ध्याय ।
'देवचंद्र' तिण मुनि तणां, नित वंदु● पाय[2] ॥रे०॥२४॥

ढाल--४--चौथी एकत्व भावना

(रे प्राणी धरि संवेग विचार–ए देशी)

ज्ञान ध्यान चारित्र नी रे, जो दृढ करवा चाह्य ।
तो↑ एकाकी विहरतौ रे, जिन कलपादिक साह्य[3] रे प्राणि ।
एकल भावना भाव, शिव मरग[4]❀साधन दाव रे प्राणी ॥आंकणी।१॥
साधु भणि गृह वासनी रे, छुटी ममता तेह ।
तौ पिण गच्छवासी पणौ रे, गण[5] गुरु परि छे नेह[6] रे ॥प्रा०॥१॥
वन मृगनी परि तेहथी रे, छोडि सकल प्रति बध ।
तूं एकाकी अनादि नो रे, किण थी तुझ संबंध रे ॥प्रा०॥३॥
शत्रु मित्रता सर्वथी रे, पामी वार अनंत ।
कउण[7] सयण,[8] दुसमण[9] किसो रे, काले सहु नो अतरे ॥प्रा०॥४॥

पाठान्तर—●वंदौ ↑तउ ❀मार्ग

१—कष्ट पड़ने पर जो समता रखे। २—पैर ३—साधो ४—मार्ग ५—सम्प्रदाय ६—स्नेह ७—कौन ८—स्वजन ९—शत्रु

बंधइ करम जीव एकलौ रे, भोगवै पिण ए एक ।
किण उपर किण वात नी रे, राग द्वेष नी टेक रे ।।प्रा०।।५।।
जो निज एक पणो गृहे रे, छोडि सकल परभाव ।
सुद्धातम ज्ञानादि सुं रे, एक[1] सरुपै भाव रे ।।प्रा०।।६।।
आयौ पिण तूं एकलो रे, जाईस पिण तूं एक ।
तौ ए सकल कुटुंब थी रे, प्रीति किसी अविवेक रे ।।प्रा०।।७।।
वन[2] मांहि गजसिंहादि थी रे, विहरता न टलै जेह ।
जिण आसण रवि आथमे रे, तिण आसन निस छेहरे ।।प्रा०।।८।।
तप पारण आहार ग्रहे रे, करमां[3] लेप[4] विहीन ।
एक वार पाणी पीवने रे, वनचारी चित्त अदीन[5] रे ।।प्रा०।।९।।
एह दोष पर[6] ग्रहण थी रे, परसंगइ गुण हांणि ।
पर धन ग्राही चोरते रे, एक पणे सुख खांणि रे ।।प्रा०।।१०।।
पर संयोग थी बंध छे रे, पर वियोग थी मोख ।
तिण तजि पर मेलावडो रे, एक पणौ निज पोख रे ।।प्रा०।।११।।
जनम न पाम्यौ साथ को रे, साथ न मरसी कोय ।
दुख विह चाउ[7] को नही रे, खिण भंगुर सहु लोय रे ।।प्रा०।।१२।।

१—ज्ञानादिरूप आत्मा की भावना कर २—जिनकल्पी मुनियों का यह आचार है कि—विहार करते समय जंगल में सामने यदि सिंह, गजादि भी आजाय तो भी मार्ग नही बदलते हैं किन्तु सामने जाते हैं । तथा सूर्यास्त के समय, जिस स्थान पर, जिस आसान से बैठे या खड़े हो, वैसे ही सारी रात बिताते है । ३—हाथ में ४—रुखा-सूखा । ५—दीनता रहित ६—पुद्गल का ७—बंटाने वाला

परिजन मरतो देखी ने रे, शोक× करे जन मूढ[१] ।
अवसरे● वारो[२] आंपणो रे, सहु जननी ए रूढ रे ॥प्रा०॥१३॥
सुर[३] पति चक्की[४] हरि[५] हलीरे,[६] एकला परभव जाय ।
तन धन परिजन सहू वली रे, कोई सखाइ[७] न थाय रे ॥प्र०॥१४॥
एक आतमा माहरो रे, ज्ञानदिक गुणवत ।
बाह्य योग सहुअवर छै रे, पाम्या वार अनत रे ॥प्रा०॥१५॥
करकडू, नमि, निग्गइ रे, दुमुह, प्रमुख ऋषिराय ।
मृगा पुत्र, हरिकेश ना रे, वदु हुं नित पाय रे ॥प्रा०॥१६॥
साधु चिलाती सुतभलो रे, वली अनाथी तेम ।
इम मुनि गुण अनुमोदता रे, देवचंद्र सुख क्षेम रे ॥प्रा०॥१७॥

ढाल पंचवीं तत्त्वभावना की

(इण परि चंचल आउखौ जीव जागौरी—ए देशी)

चेतन ए तन कारमो[८] तुम ध्यावो री, शुद्ध निरंजन देव ।
भविक तुम ध्यावो री, सुद्ध सरुप अनूप ॥भ०॥आकणी॥१॥
नरभव श्रावक कुल लह्यो तु० लीधो समकित सार ॥भ०॥
जिन आगम रुचि सु सुणो तु आलस निद निवार ॥भ०॥२॥

पाठान्तर— ×सोग ●अवसर वारइ

१—इन्द्र २—चक्रवर्ती ३—वासुदेव ४—बलदेव ५—सहायक ६—मूर्ख ७—बारी।
८—अनित्य ९ तैजस और कार्मण के बंधन बिना

तीन लोक त्रिहु काल नी तु. परणति तीन प्रकार ।।भ०।।
एक समे जाणे तिणे तु. नाण अनंत अपार ।।भ०।।३।।
समयांतर सह भाव नो तु. दरसण जास अणंत ।।भ०।।
आतम भावे थिर सदा तु. अक्षय चरण मर्हत ।।भ०।।४।।
सकल दोष हर शाश्वतो तु. वीरज परम अदीन ।।भ०।।
सूक्ष्म⊙ तनु बधन बिना तु. अवगाहन स्वाधीन ।।भ०।।५।।
पुद्गल सकल विवेक थी तु. सुद्ध अमूरत रूप ।।भ०।।
इद्री[1] सुख निसपृह थया तु. अकथ्य अबाह सरुप ।।भ०।।६।।
द्रव्य तणे परिणाम थी तु. अगुरु लघुत्व अनित्य ।।भ०।।
सत्य स्वभाव मयी सदा तु. छोडी भाव असत्य ।।भ०।।७।।
निज गुण रमतो राम ए तु. सकल अकल गुण खान卐 ।।भ०।।
परमातम परम ज्योति ए तु. अलख अलेप वखाण ।।भ०।।८।।
पंच[2] पूज्य मां पूज्व ए तु सरव ध्येय थी ध्येय ।।भ०।।
ध्याता ध्यानअरु ध्येय ए तु. निहचै एक अभेय ।।भ।।९।।
अनुभव करतां एहनो तु. थाये परम[3] प्रमोद ।।भ०।।
एक रूप● अभ्यास सु तु. शिव सुख छे तसु गोद ।।भ०।।१०।।

पाठान्तर—+खेम ⊙सूखम 卐खाणि ●सरुप

१—इन्द्रियजन्य सुखो के प्रति निस्पृहता आने पर आत्मा का अकथ्य सुख स्वरुप प्रकट हो जाता है। २—पांच परमेष्ठि। ३—आनन्द प्राप्त होता है।

बंध अबध ए आतमा तु करता अकरता एह ।।भ०।।
एह भोगता अभोगता तु. स्यादवाद गुण गेह ।।भ०।।११।।
एक अनेक सरुप ए तु. नित्य अनित्य अनादि ।।भ०।।
सद सद भावे परणम्यो तु. मुक्त सकल उम्माद ।।भ०।।१२।।
तप जप किरिया खप थको तु. अष्ट करम न विलाय[1] ।।भ०।।
ते सहु आतम ध्यान थी तु खिण मै खेरू[2] थाय ।।भ०।।१३।।
सुद्धातम अनुभव विना तु. बध हेतु सुभ चालि ।।भ०।।
आतम परणामे रह्या तु. एहज आश्रव[3] पालि ।।भ०।।१४।।
इम जाणी निज आतमा तु वरजी सकल उपाधि ।।भ०।।
उपादेय अवलब ने तु. परम महोदय[4] साधि ।।भ०।।१५।।
भरत, इलासुत, तेतली तु इत्यादिक मुनि वृंद ।।भ०।।
आतम ध्यान थी ए तरया तु. प्रणमे ते 'देवचंद्र' ।।भ०।।१६।।

ढाल ६–भावना महात्म्य (प्रशस्ति)

(सेलग शेत्रूंजै सीधा–ए देशी)

भावना सुगति निसांणी[5] जाणी, भावो आसति[6] आंणी रे।
योग, कषाय, कपटनी हांणी, थाये निरमल झाणी[7] जी ।।भा०।।१।।
पंच भावना ए मुनि मन ने, संवर खाणि वखाणी जी।
बृहत्कल्प सूत्र नी बाणी, दीठी तेम कहाणी जी ।।भा०।।२।।

१–क्षय होना २–क्षय ३–आश्रव को रोकने वाला सवररूप ४–मोक्ष
५–नमूना ६–आस्था ७–ध्यानी

करम[1] कतरणी सिव[2] नीसरणी, झाण ठाण अनुसरणी जी।
चेतन राय तणी ए घरणी,[3] भव समुद्र दुख हरणी जी ॥भा०।३॥

जयवता पाठक गुणधारी, **राजसार** सुविचारी जी।
निरमल ज्ञान धरम सभारी, पाठक सहु हितकारी जी ॥भा०॥४॥

राजहंस सहगुरु सुपसावे, **'देवचंद'** गुण गावे जी।
भविक जीव जे भावना भावे, तेह अमित सुख पावे जी ॥भा०॥५॥

जेसलमेरे साह सुत्यागी, **वरधमान** बड़भागी जी।
पुत्र कलत्र सकल सोभागी, साधु गुण ना रागी जी ॥भा०॥६॥

तसु आग्रह थी+ भावना भावी, ढाल बंध में गावी जी।
भणस्ये गुणस्ये जे ए ज्ञाता, लहस्ये ते सुख शाता जी ॥भा०॥७॥

मन शुद्धे पंच भावना भावो, पावन निज गुण पावो जी।
मन-मुनिवर गुण सग वसावो, सुख संपति गृह थावो जी ॥भा०॥८॥

पाठान्तर—+करी सवत १७६१ वर्षे चैत्र वदी ११ सोमे श्रीराज द्रगे
मिलिप्सित पुस्तक जयतु ॥

१—ये पांच भावना कार्मो को नाश करने मे कतरणी समान है २—मोक्ष के सोपान
३—गृहिणी-पत्नी।

५--प्रभंजना--सज्झाय

(ढाल १--नाटकीया नी नंदनी, ए देशी)

गिरि **वैताढ्य** ने उपरे, चक्रांका नयरी[1] रे लो ॥ अहो च० ॥
चक्रायुधराजा तिहा, जीत्या सवि वयरी[2] रे लो ॥अहो जी०॥१॥
मदनलता तसु सुदरी, गुण शील अचंभा रे लो ॥अहो गु०॥
पुत्री तास प्रभजना, रूपे रति रंभा रे लो ॥ अहो रू० ॥२॥
विद्याधर भूचर[3] सुता, बहु मिलि एक पंथे[4] रे लो ॥ अहो व० ॥
राधावेध मडावियो, वर वरवा खते रे लो ॥ अहो व० ॥ ३ ॥
कन्या एक हजार थी, प्रभजना चाले रे लो ॥ अहो प्र० ॥
आर्य खड में आवतां, वनखंड विचाले रे लो ॥ अहो व० ॥ ४ ॥
निर्ग्रंथी[5] **सुप्रतिष्ठिता,** बहु गुरूणी सग रे लो ॥ अहो व० ॥
साधु विहारे विचरता, वदे मन रगे रे लो ॥ अहो वं० ॥ ५ ॥
आर्या पूछे एवडो, उमाहो स्यो छे रे लो ॥अहो उ०॥
विनये कन्या वीनवे, वर वरवा इच्छे रे लो ॥ अहो व० ॥ ६ ॥
ए स्यो हित जाणों तुम्हे, एहथी नवि सिद्धि रे लो ॥ अहो ए० ॥
विषय हला हल विष तिहां, शी अमृत बुद्धि रे लो ॥ अहो शी० ॥ ७ ॥
भोग - सग कारमा[6] कह्या, जिनराज सदाई रे लो ॥ अहो जि० ॥
राग-द्वेष सगे वधे, भव भ्रमण सदाई रे लो ॥ अहो भ० ॥ ८ ॥

१-नगरी २-वैरी-शत्रु ३-राजपुत्री ४-एक मार्ग मे ५-साध्वी जी
६-दुखदायी

राज-सुता[1] कहे साच ए, जे भांखो वाणी रे लो ।। अहो जे० ।।
पण ए भूल अनादिनी, किम जाए छंडाणी रे लो ।। अहो कि० ।।९।।
जेह तजे ते धन्य छे, सेवक जिनजी ना रे लो ।। अहो से० ।।
अमे जड पुद्गल रसे रम्या, मोहे लयलीना रे लो ।। अहो मो० ।। १० ।।
अध्यातम रस पानथी, पीना[2] मुनिराया रे लो ।। अहो पी० ।।
ते पर[3] परिणति-रति तजि, निज तत्वे समाया रे लो ।। अहो नि० ।।११।।
अमने पण करवो घटे, कारण संजोगे रे लो ।। अहो का० ।।
पण चेतनता परिणमे, जड़ पुद्गल भोगे रे लो ।। अहो जड़ ।। १२ ।।
अवर कन्या एम उच्चरे, चित्तित हवे कीजे रे लो ।। अहो चि० ।।
पछी परम पद साधवा, उद्यम साधीजे रे लो ।। अहो उ० ।। १३ ।।
प्रभंजना कहे हे सखी, ए कायर प्राणी रे लो ।। अहो ए० ।।
धर्म प्रथम करवो घटे, 'देवचन्द्र' नी वाणी रे लो ।। अहो देव० ।।१४।।

(ढाल—२—हुं वारी धन्ना, हुँ तुझ जाण न देशी--ए देशी)

कहे साहुणी[4] सुण कन्यका रे धन्या ! ए संसार कलेश ।
एहने जे हितकारी गणे रे धन्या, ते + मिथ्यात्व आवेश रे ।
सुज्ञानी कन्या ! सांभल हित उपदेश ।।१।।

पाठान्तर—+ छे

१—प्रभजना २—पुष्ट ३—परपदार्थो का राग ४—साध्वीजी

जग हितकारी जिनेश छे रे कन्या, कीजे तसु आदेश रे।
सुज्ञानी कन्या ! सांभल हित उपदेश ॥२॥

खरडी ने जे धोयवु रे कन्या, तेह नहि शिष्टाचार।
रत्नत्रयी साधन करो रे कन्या ! मोहाधीनता* वार रे ॥
सुज्ञानी कन्या ! सांभल हित उपदेश ॥३॥

जेह पुरुष वरवा भणी रे कन्या, इच्छे छे ते जीव।
स्यो संबंध पणे भणो रे कन्या, धारी काल सदीव रे ॥
सुज्ञानी कन्या ! सांभल हित उपदेश ॥४॥

तव प्रभंजना चिंतवे रे अप्पा ! तु छे अनादि अनंत।
ते पण मुझ [1]सत्ता समो रे अप्पा[2]! सहज अकृत सुमहंत ॥
सुज्ञानो अप्पा ! सांभल हित उपदेश ॥५॥

भव-भमता सवि जीवथी रे अप्पा, पाम्या सर्व संबंध।
मात, पिता, भ्राता, सुता रे अप्पा, पुत्रवधू प्रतिबंध रे ॥
सुज्ञानी अप्पा ! सांभल हित उपदेश ॥६॥

श्यों संवंध कहुं इहां रे अप्पा, शत्रु मित्र पण थाय।
मित्र शत्रुता वली लहें रे अप्पा, एम संसार स्वभाव रे ॥
सुज्ञानी अप्पा ! सांभल हित उपदेश ॥७॥

पाठान्तर—* पराधीनता

१–आत्मा अ ने निज स्वरुप मे सिद्धो जैसा है। २–हे आत्मा

सत्ता[1] सम सवि जीव छे रे अप्पा, जोतां वस्तु स्वभाव ।
ए माहरो ए पारकों रे अप्पा, सवि आरोपित भाव रे ।।
सुज्ञानी अप्पा ! सांभल हित उपदेश ।।८।।

गुरुणी आगल एहवुं रे अप्पा, जुठु केम कहेवाय ।
स्वपर विवेचन[2] कीजतां रे अप्पा, माहरो कोई न थाय रे ।।
सुज्ञानी अप्पा ! सांभल हित उपदेश ।।९।।

भोगपणुं पण भूलथी रे अप्पा, माने पुद्गल खंध ।
हुं भोगी निज भावनों रे अप्पा, परथी नही प्रतिबंध[3] रे ।।
सुज्ञानी अप्पा ! सांभल हित उपदेश ।।१०।।

सम्यक ज्ञाने वहेचतां[4]× रे अप्पा, हुँ अमूर्त्त चिद्रुप ।
कर्त्ता भोक्ता तत्त्वनो रे अप्पा, अक्षय अक्रिय अनूप रे ।।
सुज्ञानी अप्पा ! सांभल हित उपदेश ।।११।।

सर्व विभाव थकी जुदो रे अप्पा, निश्चय निज अनुभूति ।
पूर्णानदी परमात्मा रे अप्पा, नही पर परिणति रीति रे ।।
सुज्ञानी अप्पा ! सांभल हित उपदेश ।।१२।।

पाठान्तर—× विचारता

१—चेतना रूप से सभी आत्मा एक समान है । २—अपने और पराये का विवेक करने पर । ३—आत्माका पर पदार्थो के साथ वास्तव मे देखा जाय तो कोई सबध नही है । ४—सम्यक ज्ञान से विवेक करने पर ।

सिद्ध[1] समौ ए सग्रेह' रे अप्पा, पर रंगे पलटाय ।
संगागी[2] भावे कह्यो रे अप्पा, अशुद्ध विभाव अपाय रे ॥
सुज्ञानी अप्पा ! साभल हित उपदेश ॥१४॥
शुद्ध निश्चय नये करी रे अप्पा, आतम भाव अनत ।
तेह अशुद्ध नये करी रे अप्पा, दुष्ट विभाव महत रे ॥
सुज्ञानी अप्पा ! साभल हित उपदेश ॥१४॥
द्रव्यकर्म[3] कर्त्ता थयो रे अप्पा, नय अशुद्ध व्यवहार ।
तेह निवारो स्वपदे[4] रे अप्पा, रमता शुद्ध व्यवहार रे ॥
सुज्ञानी अप्पा ! साँभल हित उपदेश ॥१५॥
व्यवहारे समरे थके रे अप्पा, समरे निश्चय तिबार ।
प्रवृत्ति समारे-विकल्पने रे अप्पा; ते स्थिर परिणति सार रे ॥
सुज्ञानी अप्पा ! साभल हित उपदेश ॥१६॥
पुद्गल ने पर जीव थी रे अप्पा, कीधो भेद विज्ञान ।
बाधकता दूरे टली रे अप्पा, हवे कुण रोके ध्यान रे ॥
सुज्ञानी अप्पा ! साभल हित उपदेश ॥१७॥
आलबन[5] भावन वशे रे अप्पा, धरम-ध्यान प्रकटाय ।
'देवचंद'[6] पद साधवा रे अप्पा, एहिज शुद्ध उपाय रे ॥
सुज्ञानी अप्पा ! साभल हित उपदेश ॥१८॥

१—सग्रह नय की अपेक्षा आत्मा सिद्ध समान है। २—शुद्ध आत्मा भी कर्म सयोग से अशुद्ध बनता है। ३—अशुद्ध व्यवहार से यह जीव परभाव का कर्त्ता है। ४—परभाव के कर्तृत्व का निवारण होना और स्वभाव की कर्तृता आना ही शुद्ध व्यवहार है। ५—शुद्ध आलबन और भावना दोनों मिलने से धर्म ध्यान प्रकट होता है। ६—परमात्म-पद की प्राप्ति के लिये शुद्ध आलबन और भावना ही मुख्य उपाय है।

(३ ढाल—तुठो तुठो रे साहब जग नो तूठो—देशी)

आयो आयो रे अनुभव आतम चो आयो ।
शुद्ध निमित्त आलबन भजतां, आत्मालंवन पायो रे ।।अनु०।।१।।
आतम क्षेत्री गुण परयाय विधि, तिहां उपयोग रमायो ।
पर परणति पर री ते जाणी, तास विकल्प गमायो रे ।।अनु०।।२।।
पृथक्त्व[1] वितर्क शुक्ल आरोही, गुण गुणी एक समायो ।
पर्याय द्रव्य[2] वितर्क एकता, दुर्द्धर मोह खपायो रे ।।अनु०।।३।।
अनतानुबंधि सुभट नें काढी, दर्शन मोह गमायो ।
त्रिगति हेतु प्रकृतिक्षय कीधी, थयो आतम रस रायो रे ।।अनु०।।४।।
द्वितीय तृतीय चोकड़ी खपावी, वेद युगल क्षय थायो ।
हास्यादिक सत्ता थी ध्वसी, उदय वेद मिटायो रे ।।अनु०।।५।।
थई अवेदी ने अविकारी हण्यो संजवलन कषायो ।
मार्यो मोह चरण क्षयकारो, पूरण समता समायो रे ।।अनु०।।६।।
घन घाती त्रिक योधा लडीया, ध्यान एकत्व[3] ने ध्यायो ।
ज्ञाना वरणादिक सुभट[4] पडीया जीत निसाण घुरायो रे ।।अनु०।७।
केवल ज्ञान दर्शन गुण प्रगटयो, महाराज पद पायो ।
शेष अघाति कर्म क्षीण दल, उदय अबाध दिखायो रे ।।अनु०।।८।।
सयोगि केवली थया प्रभंजना, लोका लोक जणायो ।
तीन कालनी त्रिविध[5] वर्त्तना, एक समये ओलखायो रे ।।अनु०।।९।।

१—शुक्ल ध्यान का एक पाया २—दूसरा पाया ३—तीसरा पाया ४—योद्धा
५—वस्तु की भूत-भावी और वर्त्तमान परिवर्तन ।

सर्व साधवी ग्रे वदना कीधी, गुणी विनय उपजायो।
देव देवी तव करे गुण स्तुति, जग ¹ जय पडह वजायो रे ।।ग्रनु०।।१०।
सहु ग कन्यकाए दीक्षा लीधी, ग्राश्रव सर्व तजायो।
जग उपगारी देश विहारी, शुद्ध धरम दीपायो रे ।।ग्रनु०।।११।।
कारण योगे कारज साधे, तेह चतुर गाईजे।
ग्रातम साधन निर्मल साध्ये, परमानंद पाईजे रे ।।ग्रनु०।।१२।।
ए ग्रधिकार कह्यो गुण रागे, बैरागे मन लावी।
वसुदेव हिंडि तणे ग्रनुसारे, मुनि गुण भावना भावी रे ।।ग्रन०।१३।
मुनि गुण थुणतां भाव विशुद्धे, भव विच्छेदन थावे।
पूर्णानंद ईहा थी प्रगटे, साधन–शक्ति जमावे रे ।।ग्रनु०।।१४।।
मुनि गुण गावो भावना भावो, ध्यावो सहज समाधि।
रत्नत्रयी एकत्त्वे खेलो, मिटे ग्रनादि उपाधि रे ।।ग्रनु०।।१५।।
राजसागर पाठक उपगारी, ज्ञान **धरम** दातारी।
दीपचंद पाठक खरतर वर, **देवचंद** सुखकारी रे ।।ग्रनु०।।१६।।
नयर **लींबड़ी** मांहि रहीने, वाचंयम स्तुति गाई।
ग्रात्मरसिक श्रोता जन मन ने साधन रुचि उपजाई रे ।।ग्रनु०।१७।
इम उत्तम गुण माला गावो, पावो हरष बधाई।
जैन धरम मारग रुचि करता, मगल लीला सदाई रे ।।ग्रनु०।।१८।।

पाठान्तर— ¹ जय

सवत १८२३ वर्षे कार्तिक वदि १३ शुक्रवासरे श्री सूरत वन्दरे श्राविका फूलबाई पठनार्थम् पाठान्तर प्रति–नित्य मणि जीवन जैन लाइब्रेरी पत्र ३ नं. १४६ सवत् १८ १४ जेठ सुदि १४ भौ। लिपिकृत भणशाली श्री पानाचद कपूरचद पठनार्थम्

श्री गज सुकुमाल मुनिनी ढालो

(ढाल–१-बंगाल–राजा नही नमे ए देशी)

द्वारिका नगरी ऋद्धि समृद्ध, कृष्ण नरेसर भुवन प्रसिद्ध ।चेतन सांभलो।
वसुदेव देवकी अंग[1] सुजात, गज सुकुमाल कुमर विख्यात ।चे०।।१।।
नयरी परिसर श्री जिनराय, समवसर्या निर्मम निर्माय ।।चे०।।
यादव कुल अवतंस मुणिंद, नेमिनाथ केवल गुण वृंद ।चे०।।२।।
त्रिभुवन पति श्री नेम जिणंद, आव्या सुणि हरख्या गोविद[2] ।चे०।।
सज सामहियो वदण काज, हरषे+ वंद्या श्री जिनराज ।।चे०।।३।।

पाठान्तर–+हरस घटी बाधा जिनराज

गृटका

इसी गुटके के पृ. ५६ में प्रशस्ति :–
सं १८ १७ ना वर्षे मिती आश्विन मासे कृष्ण पक्षे अष्टमी तिथौ वार शुक्रे श्री उपाध्याय जी श्री देवचद जी गणिजी तत् शिष्य वा. श्री मनरूपजी गणि तत् शिष्य प. रायचद मुनिनालिखित भणशाली खड़ गोत्रे शाह पानाचद कपूरचंद पठनार्थम् झवेरीवाड़ा मध्ये राजनगर मध्ये स्तुरस्तु ।। कल्याणमस्तु शुभम् भवतु ।। श्री

१–पुत्र २–कृष्णजी

लघु वय पिण श्री गज सुकुमाल, रूप मनोहर लीला विशाल ।चे०।।
वीतराग वदण अति रग, सुविवेकी आवे* उछरग ।।चे०।।४।।
समोसरण देखी विकसत, त्रिकरण जोगे अति हरखंत ।चे०।।
धन धन माने। मन माहि, गया पाप हुँ थयो सनाह[1] ।।चे०।।५।।
कुमरे वद्या※ जिनवर पाय, आणद लहरी अग न माय ।चे०।।
निकामी प्रभु दीठा जाम, वीसर्या वामा[2] ने धन धाम ।चे०।।६।।
जिन मुख अमृत वयण सुणंत, भाग्यो मिथ्या मोह अनंत ।।चे०।।
दरसण ज्ञान चरण सुख खाण, सुद्धातम जिन तत्व पिछाण ।चे०।७।
पर परणिति संयोगी भाव, सर्व विभाव न सुद्ध सुभाव ।चे०।।
द्रव्य करम नोकरम उपाधि, बंध हेतु पमुहा सवि व्याधि ।।चे०।।८।।
तेहथी भिन्न अमूरत रूप, चिन्मय चेतन निज गुण भूप◎ ।चे०।।
श्रद्धा[3] भासन थिरता भाव, करता प्रगटे सुद्ध सुभाव ।।चे०।।९।।
नेमि वचन सुणी वडवीर, धीर वचन भाखे गभीर ।।चे०।।
देहादिक ए मुझ गुण नाहि, तो किम रहिवुं मुझ ए माहि ?।चे०।१०।।
जेह थी बंधाए निज तत्व, तेहथी संग करे कुण सत्व ? ।।चे०।।
प्रभुजी रहवुं करि सुपसाय, हुँ आवुं माता समझाय ।चे०।।११।।

पाठान्तर—*आवै । मान वजन ※वदी ◎रूप

१-सनाथ २-स्त्री ३-श्रद्धा, भासन और स्थिरता करने से आतमा का शुद्ध स्वभाव प्रकट होता है ।

(ढाल २--मोरो मन मोह्यौ इण डूंगरे--ए देशी)

माताजी नेमि देशना सुणी रे, मुझ थयुं आज आणंद ।
मनुज भव आज सफलो थयो रे, आज मुभ उदय दिणद ।मा०॥१२।

देवकी चित्त अति गह गही रे, इम कही मधुर मुख वाणि ।
धन तू धन्य मति ताहरी रे, जिण सुणी नेमि मुख वाणि ।।म०।१३।

माताजी एह संसार मा रे, सुख तणो नही लवलेश ।
वस्तु[1] गत भाव अवलोकता रे, सर्व ससार कलेश ।।मा०।।१४।।

करम थी जनम तनु करम थी रे, कर्म ए सुख दुख मूल ।
आतम धरम नवि ए कदा रे, आज टली मुझ भूल ।।मा०।।१५।।

नेमि चरणे रही आदरु रे, चरण शिव सुख कंद ।
विपय विष मुझ हवे नवि गमे रे, सांभयुं अत्मानंद ।मा०।।१६।।

माताजी अनुमति आपीयै रे, हवे मुझ इम न रहाय ।
एक खिण अविरति दोपनी रे, वातड़ी वचने न कहाय ।मा०।।१७।।

मोह वस बोलती देवकी रे, विलपती[2] इम कहै वात ।
पुत्र ते ए किस्यु भाखीयुं रे, तुझ विरह मुझ न सुहात ।।मा०।।१८।।

१–वस्तु स्वरुप को देखते हुए । २–विलाप करती हुई ।

वच्छ सजम अति दोहिलुँ रे, तोलवो मेरु इक हाथ ।
प्राण जीवन मुझ वालहो रे, माहरे तूहिज आथ ।।मा०।।१९।।
मात तुमे श्राविका नेमि नी रे, तुम्ह थी एम न कहाय ।
मोक्ष सुख हेतु संयम तणो रे, किम करो मात अंतराय ।।मा०।।२०।।
वच्छ मुनिभाव दुःकर घणो रे, जीपवो[1] मोह भूपाल ।
विषय[2] सेना सहु वारवी रे, तुम्हे छो बाल सुकुमाल ।।मा०।।२१।।
माताजी[3] निजधर आंगणै रे, बालक रमै निरबीह ।
तिम मुझ आतम धरम मे रे, रमण करता किसी बीह ।।मा०।।२२।।
मोह विष सहित जे वचनड़ां रे, ते हवै मुझ न छिबंत ।
परम गुरु वचन अमृत थकी रे, हुं थयो उपशम वंत ।।मा०।।२३।।
भव[4] तणो फंदहवे भांजवो रे, जीतवो[5] मोह अरि वृंद ।
आतमानंद आराधवो रे, साधवो मोक्ष सुख कंद ।।मा०।।२४।।
नेमि थकी कोई अधिको जो हुवे रे, तो मानीये तास वचन रे ।
मातजी कांइ नवि भाखीये रे, माहरू संजमें मन ।।मा०।।२५।।

(ढाल ३—धन धन साधु शिरोमणि ढंढणो, ए देशी)

धन धन जे मुनिवर ध्याने रम्यां रे, समता सागर उपशमवंत रे ।
विषय कषाये जे नडीया नही रे, साधक परमारथ सुमहत रे ।ध०।२६।

१—मोहराजा को जीतना २—मोहराजा की विषय रूपी सेना ३—जैसे अपने घर के आंगण में बच्चा निर्भीक खेलता है वैसे ही आत्म धर्म मे रमण करते हुए मुझे क्या डर है । ४—संसार के मूल को नष्ट करना है । ५—मोहरिपु को जीतना है ।

जादव पति परिवारे परिवरयो रे, नेमि चरणे पुहतो गज सुकुमाल रे।
मात पिता प्रिते वहोरावता रे, नंदन बाल मनोहर चाल रे।ध०।२७।

प्रभु मुखे सख[1]-विरति अंगीकरी रे, मूकी सख अनादि उपाधि रे।
पूछे स्वामी कहो किम नीपजे रे, मुझने वहली सिद्ध समाधि रे।ध०।२८।

प्रभु भाखे निज सत्वे एकता रे, उदय अव्यापकता परिणाम रे।
संवर वृद्धे वाधे निर्जरा रे, लघु काले लहिये शिवधामरे।ध०॥२९॥

एक रात्रि[2] पडिमा तुम्हे आदरो रे, धरजो आतम भाव सुधीर रे।
समता सिंधु मुनिवर तिम करे रे, सिवपद साधवा वड वीर रे।ध०।३०।

सिर ऊपर सगडी सोमिले करी रे, समता सीतल गज सुकुमाल रे।
क्षमा नीरे नवराव्यो आतमा रे, स्यु दाझे छे तेहनो नही ख्यालरे।ध.।३१।

दहन[3] धर्म ते दाझे अगणि थी रे, हुं तो परम अदाह्य अग्रह्य रे।
जे दाझे छे तेह महारु नही रे, अक्षय चिनमय तत्व प्रवाह रे।ध०।३२।

क्षपक[4]-सेणि ध्याने आरोहिने रे, पुद्गल आतमनो भिन्न भाव रे।
निज[5] गुण अनुभव वलि एकाग्रता रे, भजतां कीधो कर्म अभाव रे।ध.।३३।

१—सर्वविरति=साधु धर्म। २—एक रात का अभिग्रह धारण करो — ३—जो जलने के स्वभाव वाली है, वह आग मे जलता है, मैं तो आदाह्य हैं। ४—क्षपक श्रेणि द्वारा ध्यान में चढते हुए, आत्मा और शरीर की भिन्नता का अनुभव करते हुए। ५—अपने गुणों की रमणता से कर्मो का अभाव किया।

निर्मल ध्याने तत्व अभेदता रे, निर विकल्प ध्याने तदरुप* रे।
घाती[1] विलये निज गुण उलस्या रे, निर्मल केवल आदि अनूप रे।ध.।३४।
थयो अयोगी शैलेसी[2] करी रे, टाल्यो सर्व संजोगी भाव रे।
आतम आतम रूपे परिणम्यो रे, प्रगटयो पूरण वस्तु स्वभाव रे।ध.।३५।
सहज अकृत्रिम वलि असंगता रे, निरुप (म) चरित वलि निरद्वंद रे।
निरुपम अव्या बाध सुखी थया रे, श्री गज सुकुमाल मुनिद रे।ध.।३६।
नित प्रति एहवा मुनि संभारीये रे, धरीये एहिज मनमाही ध्यान रे।
इच्छा कीजे ए मुनि भावनीरे, जिम लहीये अनुभव परम निधान रे।ध.।३७
खरतर गच्छ पाठक **दीपचंद** नो रे, देवचंद वदे मुनिराय रे।
सकल सघ सुख कारण साधु जी रे, भव भव होजो सुगुरु सहायरे।ध।३८।

गहूली

ढाल–स्वामी सीमंधरा ! वीनति, ए देशी

शासननायक **वीर** नो, गणधर **गौतम** स्वाम रे।
शील शिरोमणी तेहनो, शिष्य **जंबू** अभिराम रे।।शा०।।१।।
वीर जिन वचन त्रिपदी लही, जेणेकर्या द्वादश अंग रे।
दुःषम काल मे जेहनो, विस्तर्यो तीर्थ अति चंग रे।।शा०।।२।।

१–चार घातीकर्म–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय के क्षय से केवलज्ञान प्राप्त किया। २–शैलेशी करण–जिसमें आत्मा मेरु की तरह निश्चल, निष्प्रकंप बन जाता है। स्वरूपस्थ हो जाता है।

प्रथम[1] वायण दिने गुहली, करी इद्राणीए सार रे ।
शासन संघ मगल भणी, इम करे श्राविका सार रे ।।शा०।।३।।
साथियो[2] मगल पूरणो, चूरणो विघन मिथ्यात रे ।
सधवा सहियर सवि मली, मुख थकी मुनि गुण गात रे ।।शा०।।४।।
आगम आगमधर भणी, वधावानी वाधते ढाल रे ।
विच्च विच लेत उवारणा, हर्षती बाल गोपाल रे ।।शा०।।५।।
जे सुणे सूत्र भगते करी, तेहनो जन्म[3] कयत्थ रे ।
माहरे भवोभव नित हजो, देवचन्द्र श्रुत सत्थ रे ।।शा०।।६।।

सम्मेत शिखर स्तवन

श्री सम्मेत गिरीन्द, हर्ष धरी वंदो रे भविका ।
पूरव संचित पाप तुमे निकंदो रे भविका ।
जिन कल्याणक थानक देखी आणंदो रे भविका ।श्री० टेक।
अजितादिक दस जिनवरू रे, विमलादिक नव नाथ ।
पार्श्वनाथ भगवानजी रे इहांलह्या शिवपुर साथ रे ।।भ० श्री।।१।।
कल्याणक प्रभू एकनु रे, थाये ते शुचि ठाम ।
वीस जिनेश्वर शिवलह्या रे तेणे ए गिरि अभिराम रे ।।भ० श्री।।२।।

१—पहली वाचना के दिन। २—मिथ्यात्त्वरुपी विघ्न को चूरनेवाला मागलिक साथिया है। ३—कृतार्थ।

सिद्ध थया इण गिरिवरे रे, गणधर मुनिवर कोडि।
गुण गावे ए तीर्थ ना रे, सुरवर होडा होडि रे ॥भ० श्री॥३॥

परमेश्वर नामे अछे रे, वीसे टूँक उत्तुंग।
चरण कमल जिनराजना रे, सुर पूजे मनरंग रे ॥भ० श्री॥४॥

भाव सहित भेंट्यो जिणे रे, गिरिवर ए गुण गेह।
जिन तन फरसी भूमिका रे, फरसे धन्य नर तेह रे ॥भ० श्री॥५॥

नाम थापना छे सही रे, द्रव्य भावनो हेत।
संशय तजी सेवो तुमे रे, ठवणा तीर्थ सम्मेत रे ॥भ० श्री॥६॥

तीरथ दीठे सांभरे रे, देवचन्द्र जिन वीस।
शुद्धाशय तन्मय थई रे, सेव्या परम जगदीस रे ॥भ० श्री॥७॥

